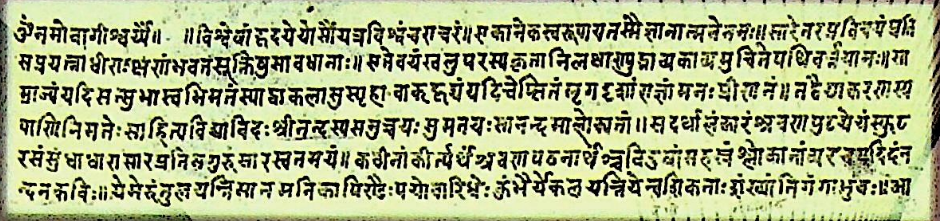


श्रीनन्दसङ्कलितः

नन्दसमुच्चयः

सम्पादकः

प्रो. जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः'

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझापरिसरः
प्रयागः
2015

श्रीनन्दसङ्कलितः

नन्दसमुच्चयः

सम्पादकः

प्रो. जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः'

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानितविश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझापरिसरः
प्रयागः
2015

Ganganatha Jha Campus Text Series No.-72

General Editor
Prof. Shail Kumari Mishra

Nandasamucchaya

Compiled by Shri Nanda

Edited by
Prof. Janardan Prasad Pandey 'Maṇi'

Co-operation by
Awanendra Prasad Pandey
Purnendu Pratap Singh

Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002
2015

Published by : Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2015

Price : Rs. 200/-

Printed At: **Academy Press**
Daragang, Allahabad

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमालाप्रसूनम्–72

प्रधानसम्पादकः

प्रो॰ शैलकुमारीमिश्रः

श्रीनन्दसङ्कलितः

नन्दसमुच्चयः

सम्पादकः

प्रो॰ जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः'

सहयोगिनौ

अवनेन्द्रप्रसादपाण्डेयः

पूर्णेन्दुप्रतापसिंहः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः, आजादोद्यानम्, इलाहाबाद–211002

2015

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानित-विश्वविद्यालयः
गङ्गानाथझा-परिसरः,
आजादोद्यानम्, इलाहाबाद-211002

संस्करणम् : प्रथमम्

प्रकाशनवर्षम् - 2015

मूल्यम् : रु. 200/-

मुद्रणम् : **एकेडमी प्रेस,**
दारागंज, इलाहाबाद

आमुखम्

नवदेहलीस्थितमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयभारतसर्वकाराधीनस्य राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य (मानितविश्वविद्यालयस्य) प्रयागस्थितोऽयं गङ्गानाथझा-परिसरः स्वकीयोत्कृष्टशोधसम्पादनार्थं देशे विदेशे च विख्यातो वर्तते। संस्थानस्यायमेकलः परिसरः यत्र शोधकार्यं सम्पादनकार्यं च भवति। परिसरस्य सङ्ग्रहालये षष्ठिसहस्रसंख्यकाः दुर्लभपाण्डुलिपयः वर्तन्ते येषु यथारुचि विद्वांसः सम्पादनं कुर्वन्ति। काश्चन पाण्डुलिपयः एतादृशाः वर्तन्ते याः निखिलेऽपि विश्वे न कुत्रचिद् लभ्यन्ते। एकस्याः पाण्डुलिप्याः सम्पादने नितान्तं काठिन्यं भवति।

अस्माकं परिसरस्य साहित्यविभागस्य आचार्येण प्रो॰ **जनार्दनप्रसाद-पाण्डेयमणिना** अस्य **'नन्दसमुच्चयस्य'** सम्पादनं कृतम्। पाठभ्रष्ट-पाठलोप-अस्पष्टाक्षर-कारणात् सम्पादने महत् काठिन्यं प्रो. मणिना अनुभूतम्। सतीषु ईद्ग्विधासु समस्यासु प्रो॰ मणिना एतस्याः पाण्डुलिपेः शुद्धं सम्पादनं विधाय ग्रन्थस्य स्वरूपं प्रदत्तम्।

अस्माकं संस्कृतभाषा तथा च तस्याः प्रचुरसाहित्यं विश्वस्य कृते कौतूहलस्य विषयोऽस्ति। संस्कृतसाहित्ये रचनाकाराणां मौलिकग्रन्थैः सह सङ्ग्रहग्रन्थानामपि एका परम्परा वर्तते। प्रस्तुतग्रन्थः **'नन्दसमुच्चयः'** श्रीनन्देन सङ्गृहीतः विविधविषयसम्बद्धपद्यानां एकः सङ्ग्रहग्रन्थोऽस्ति। आरम्भे नन्देन कैश्चित् स्वरचितपद्यैः स्वग्रन्थस्य भूमिका उपस्थापिता। एतस्मिन् सङ्ग्रहे केषाञ्चिद् श्लोकानां रचनाकाराणां नामानि अङ्कितानि। केचन श्लोकाः अज्ञातकर्तृकाः प्रतीयन्ते। एतस्मिन् सङ्ग्रहे एकोनत्रिंशदधिकचतुर्दशशतश्लोकाः सन्ति।

अहं प्रस्तुतग्रन्थस्य **'नन्दसमुच्चयस्य'** विशुद्धसम्पादनाय कविप्रवरं विद्वत्प्रवरं **प्रो॰ जनार्दनप्रसादपाण्डेय'मणिं'** प्रति हार्दिकान् साधुवादान् वितरामि। तेन एतस्य सम्पादने कठिनपरिश्रमः कृतः। अयं ग्रन्थः प्रकाशितो भूत्वा सरस्वत्याः भाण्डागारे ग्रन्थरत्नरूपेण प्रतिष्ठितो भविष्यति इति मदीया शुभकामना।

- प्रो॰ शैलकुमारी मिश्रः

प्राचार्यः (का॰)

सम्पादकीय

संस्कृत कविताधारा वैदिककाल से ही अनन्त स्वरूपों को धारण करती हुई आधुनिक काल तक प्रवहमान है। इसके आनन्त्य में कहीं वैदिक ऋचायें, कहीं महाभारत का धर्म-दर्शन, कहीं रामायण का कर्मोपदेश, कहीं पुराणों की लोक रञ्जक कथायें, कहीं महाकाव्य, कहीं खण्डकाव्य, कहीं नाटक, कहीं गद्यकाव्य, गीति-काव्य तथा संस्मरण-परक निबन्ध आदि प्रमुख हैं। विधाओं की यह बहुरंगी छवि संस्कृत कविता वधूटी की अनन्त रूप रञ्जित सौन्दर्यश्री को उल्लासित करती है। भावों की तरङ्ग मालायें संस्कृतकवितासरिता के प्रति सहृदयजगत् के चित्त को आकर्षित करती रहती हैं। लोकमङ्गल का स्वर संस्कृत-कविता के विग्रह से अनुदिन मुखरित होता रहता है। इन सब विशेषताओं के चलते संस्कृतकविता ने विश्वरंगलोक में अपने चिरन्तन एवं नित्य-नवीन स्वरूप को धारण किया है। आज विश्व-साहित्य में संस्कृत साहित्य की जो प्रतिष्ठा है, वह संस्कृतकविता की मर्मस्पर्शी भावसम्पत्ति का परिणाम है। जितनी विधाओं के साथ संस्कृतकविता की विकास यात्रा चली है, उतनी विधायें विश्व के किसी अन्य साहित्य में दुर्लभ हैं। आधुनिक संस्कृत कविता ने तो विश्व कविता धारा के सारे साहित्यिक मानदण्डों को एवं काव्योन्मेषों को अपने अन्दर समाहित कर लिया है। वैश्विक साहित्यिक विधा का कोई भी स्पन्दन संस्कृत-कविता के दायरे से बाहर नहीं है, इसीलिए संस्कृत-कविता आज समग्र विश्व में बड़े कौतूहल एवं सम्मान के साथ देखी जा रही है।

ध्यातव्य है कि संस्कृतकविता की विविध विधाओं के आलोक में एक सुभाषितसंग्रहस्वरूपा काव्यविधा भी विकसित होती रही है। इस विधा में काशिनाथ शर्मा का सुभाषितरत्न भाण्डागार, लक्ष्मणभट्ट आंकोलकर की पद्यरचना, शार्ङ्गधर की शार्ङ्गधरपद्धति, श्रीधरदास का सदुक्तिकर्णामृतम्, बल्लभदेव की सुभाषितावली, शिवदत्तकविरत्न का सुभाषत-सुधारत्न-भाण्डारकर, सायण की सुभाषितसुधानिधि, भगदत्त जल्हण की सूक्ति-मुक्तावली, जगद्धर की स्तुतिकुसुमाञ्जलि एवं वीणा मिश्रा की मंगलमणिमाला प्रभृति ग्रन्थ प्रकाशित होकर सहृदयों के समक्ष आ चुके हैं।

नन्दकृत 'नन्दसमुच्चय' नामक यह ग्रन्थ सुभाषित संग्रह वाले इन्हीं पूर्वोक्त ग्रन्थों की परम्परा में ही संगृहीत ग्रन्थ-रत्न है। कवि-नन्द के द्वारा इसमें सुभाषितों का संग्रह किया गया है इसलिए इसे 'नन्दसमुच्चय' के नाम से जाना जाता है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में एक बात विशेष-रूप से कहे जाने योग्य है, कि उपर्युक्त सुभाषित संग्रहों में कुछ सुभाषित पद्य तो संग्रहकर्ता के भी प्राप्त होते हैं। इसी प्रक्रिया में नन्द-समुच्चय ग्रन्थ में कुछ पद्य स्वयं नन्द के द्वारा लिखे गये हैं।

नन्दसमुच्चय के आरम्भ में ही नन्द ने स्वयं कुछ पद्य अपने समुच्चय को अभिप्रमाणित करने के लिए लिखा है। यथा-

सारेतरप्रविचयं प्रति सप्रयत्ना
धीराः क्षणं भवत सूक्तिषु सावधानाः ।
एते वयं खलु परस्य कृतानि लक्ष्या-
ण्युद्भाव्य काव्यमुचिते पथि वर्तयामः ॥

-नन्दसमुच्चय, श्लोक सं.-2

अर्थात् सारेतरग्रन्थसंग्रह के प्रति सप्रयत्नधीरपुरुषों क्षणभर के लिये सूक्तियों के प्रति सावधान हो जाइये। ये हम लोग दूसरों के द्वारा लक्ष्यों को उद्भावित करके काव्य को उचित मार्ग में उपस्थापित कर रहे हैं। इसके आगे फिर वे कहते हैं-

साम्राज्यं यदि सत्सुभास्वभिमतं स्याद् वा कलासु स्पृहा-
वाग् हृद्यं यदि चेप्सितं मृगदृशां राज्ञां मनः प्रीणनम् ।
तद् वैयाकरणस्य पाणिनिमतेः साहित्यविद्याविदः
श्रीनन्दस्य समुच्चयः सुमतयः सानन्दमालोक्यताम् ॥

-नन्दसमुच्चय, श्लोक सं.-3

अर्थात् यदि सत् सुभाषितों में साम्राज्य अभिमत है या यदि कलाओं में स्पृहा है, यदि हृदय को रुचिकर लगने वाली वाणी अभीप्सित है, मृगनयनियों के एवं राजाओं के मन को प्रसन्न करना यदि अभीप्सा में

है तो पाणिनि की तरह बुद्धि को धारण करने वाले साहित्यविद्या के वेत्ता, वैयाकरण श्रीनन्द के समुच्चय को सुन्दरमतिवालो सानन्द देखो। अथवा सुन्दरमति (बुद्धि) वालों को श्रीनन्दकवि के सूक्तिसमुच्चय को सानन्द देखना चाहिये। इसके आगे फिर नन्दसमुच्चय में श्रीनन्द कहते हैं–

सदर्थालङ्कारं श्रवणपुटपेयं स्फुटरसं
सुधाधारासारप्रतिमगुरुसारस्वतमयम् ।
कवीनां कीर्त्यर्थं श्रवणपठनार्थञ्च विदुषां
सहस्त्रं श्लोकानां व्यरचयदिदं नन्दनकविः ॥

–नन्दसमुच्चय, श्लोक सं.–4

उपर्युक्त पद्य का आशय है कि सुन्दर अर्थों वाले अलङ्कार एवं कर्णयुगल के लिए पेय स्फुटरस वाले, अमृत की धारा की वर्षा के समान गम्भीर एवं सारस्वत स्वरूप को धारण करने वाले, सहस्त्र श्लोकों के इस संग्रह को कवियों की कीर्ति के लिए तथा विद्वानों के श्रवण एवं पठन के लिए नन्दन कवि ने (इस नन्दसमुच्चय नामक ग्रन्थ को)रच दिया है (इसका संग्रह कर दिया है)। उपर्युक्त पंक्तियों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नन्दकवि को नन्दनकवि के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ रचने से अभिप्राय संग्रह करने से है। वैसे नन्दकवि यहाँ एक हजार श्लोकों की बात करते हैं, जब कि इस संग्रह में सब 1429 श्लोक हैं।

नन्द को अपने समुच्चय के श्लोकों पर गर्व है। उन्हें लगता है कि सामान्य प्रतिभा का व्यक्ति या सामान्यव्युत्पत्ति को धारण करने वाला आचार्य नन्द के द्वारा संगृहीत पद्यों के अर्थों को जानने में शायद समर्थ न हो सके। वे इस सन्दर्भ में कहते हैं–

ये मेरुं तुलयन्ति मानमनिकाः पिण्डैः पयो वारिधेः
कुम्भैर्ये कलयन्ति ये च सिकताः संख्यानि गङ्गाभुवः ।
आकाशे कलयन्ति ये ग्रहगणान् पत्राणि पृथ्वीरुहां
ते श्रीनन्दनपण्डितस्य भणितेर्वक्तुं समर्था गुणान् ॥

–नन्दसमुच्चय, श्लोक सं.–5

इस पद्य का तात्पर्य है कि जो मनस्वीजन पिण्डों से मेरु को माप सकते हैं, समुद्र के जल को कुम्भ से माप सकते हैं, गंगा की जमीन की बालुका को गिन सकते हैं, आकाश के ग्रह गणों को गिन सकते हैं, पृथ्वी के पेड़ों के पत्तों को गिन सकते हैं, वे ही नन्द-पण्डित की भणिति के गुणो को बताने में समर्थ हो सकते हैं।

नन्द की इस गर्वोक्ति को पढ़ने से नन्दसमुच्चय में संगृहीत श्लोकों की विशेषता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। नन्दसमुच्चय में देव, देवता, जीव, जगत्, ऋतु, मासादिक को लक्ष्य करके व्रज्या शीर्षक से पद्यों का संग्रह किया गया है। नन्दसमुच्चय की प्रथम व्रज्या शिवव्रज्या है तथा अन्तिम व्रज्या अर्थान्तरन्यासव्रज्या है। इस प्रकार नन्दसमुच्चय में क्रमशः शिवव्रज्या, (जटाजूट, कपालावलि-नयन-कण्ठ- मौलिचन्द्र-मौलिगंगा- शङ्करक्रीडा-अर्धनारीश्वर-नटेश्वर-वाग्भैरव-अष्टमूर्ति-परक पद्य) हरताण्डव- व्रज्या, दुर्गाव्रज्या, कुमारव्रज्या, भृङ्गिव्रज्या, गणेशव्रज्या, हरिव्रज्या, (कृकु-कृष्णलीला-मत्स्यावतार- कूर्म-नृसिंह-वामन- परशुराम-श्रीराम-हलिराम-बुद्ध-कल्कि-परक पद्य) लक्ष्मीव्रज्या, सरस्वतीव्रज्या, गरुणव्रज्या, हरिहरव्रज्या, ब्रह्मव्रज्या, आदित्यव्रज्या, चन्द्रव्रज्या, गंगाव्रज्या, यमुनाव्रज्या, नदीव्रज्या, समुद्रव्रज्या, अन्यापदेशव्रज्या, यशोव्रज्या, मदनव्रज्या, वसन्तव्रज्या, ग्रीष्मव्रज्या, प्रावृट्व्रज्या, शरद्व्रज्या, हेमन्तव्रज्या, शिशिरव्रज्या, वयः सन्धिव्रज्या, युवतिवर्णनव्रज्या, अनुरागव्रज्या, सामान्यशृङ्गारव्रज्या, दूतीवचनव्रज्या, सम्भोगव्रज्या, समाप्तिनिधनव्रज्या, विरहिणीव्रज्या, अष्टनायिकाव्रज्या, मानिनी-व्रज्या असतीव्रज्या, विरहिव्रज्या, दीनव्रज्या, अन्यापदेशव्रज्या (रत्न-मीन-दाडिम-ताल-निम्बु-तुलसी), तरुव्रज्या (चूत-वट-कदम्ब-मधुप-परकपद्य), पक्षिव्रज्या (सामान्यपक्षि-मृग-हस्ति-सिंह-शरभ महन्-महिमपरकपद्य) तथा अर्थान्तरन्यासव्रज्या प्राप्त होती है। इन व्रज्याओं के अन्दर पद्य संगृहीत है।

नन्द ने अपने ग्रन्थ को उल्लासों में विभक्त किया है, तथा उसे प्रसन्नसाहित्य-रत्नाकरव्रज्या नाम देते हैं। पाँच उल्लास पूर्ण हैं, छठाँ उल्लास अपूर्ण है। आरम्भिक स्वरचित पद्यों में नन्द ने अपने ग्रन्थ को सहस्त्र श्लोकों वाला कहा है किन्तु इसमें सब 1429 पद्य प्राप्त होते हैं।

नन्दसमुच्चय में संगृहीत पद्य जहाँ कालिदासादिक प्रसिद्ध कवियों के हैं, वहीं हनुमान्, विभीषण एवं रावण के भी पद्य हैं। बहुत से पद्यों का अज्ञातकर्तृकत्व भी प्रतीत होता है। अज्ञातकर्तृकत्व को धारण करने वाले कुछ पद्य तो अद्‌भुत हैं, जैसे भगवान् शिव के नेत्रों के सन्दर्भ में अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

एकं योगनियोजनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः
पार्वत्या जघनस्थले स्तनयुगे शृङ्गारभारालसम् ।
अन्यद् दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं
शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥

–नन्दसमुच्चय, शिवव्रज्या, श्लोक सं.–21

शिवव्रज्या में ही विभीषण का अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

ब्रभ्रुभ्रूश्मश्रुकेशं शिखरमिव गिरेर्लग्नदावाग्निमालं
नेत्रैः पिङ्गोग्रतारैस्त्रिभिरिव रविभिश्चित्रितः कालमेघः ।
दंष्ट्राचन्द्रप्रभाभिः प्रकलितसुवृहत्तालुपातालमूलं
शम्भोर्वक्त्रं सुवक्त्रं त्रितयभयहरं हन्त्वघं दक्षिणं वः ॥

–नन्दसमुच्चय, शिवव्रज्या, श्लोक सं.–11

इसी प्रकार रावण विरचित पद्य प्रस्तुत ग्रन्थ में संगृहीत है। यथा–

वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान् ।
नमन्जन्मन्यस्मिन्नहहह तनुरग्रेऽप्यनतिभाक्
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि। ।

–नन्दसमुच्चय, शिवव्रज्या, श्लोक सं.–13

इसी प्रकार शिवव्रज्या में हनुमान द्वारा विरचित पद्य भी प्राप्त होता है। यथा–

पयोदानां पन्थाः कवलविषयो वा परिमलं
वहन् बिभ्राणो वा सुहृदपसुहृद् वा जलरुहाम्।

दधन्शृण्वानो वा हरिरिति मुहुर्यस्य विबुधा-
स्तुवन्नष्टौ मूर्तीः स जगदवतादन्धकरिपुः॥

–नन्दसमुच्चय, शिवव्रज्या श्लोक सं.–77

इस प्रकार 1429 श्लोकों वाला संगृहीत सुभाषितपद्यपरक ग्रन्थ नन्दसमुच्यय अपने कलेवर में अनेक सुन्दर पद्यों को धारण करता है। ग्रन्थ अपने पद्यों के नाते नितान्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृतजगत् में इसके प्रकाशन से संस्कृत–कवितागार को किसी ग्रन्थ विशेष की वृद्धि का सौभाग्य प्राप्त होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ नन्दसमुच्चय के सम्पादन की अनुमति प्रदान करने के लिए मैं राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के तत्कालीन कुलपति प्रो॰ राधावल्लभ त्रिपाठी तथा प्रकाशन की अनुमति प्रदान करने के लिए संस्थान के वर्तमान कुलपति डा॰ एन॰ आर॰ कन्नन (कार्यवाहक) के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। निवेदन के अग्रसारण के लिए गङ्गानाथ झा परिसर, इलाहाबाद के तत्कालीन प्राचार्य डॉ॰ प्रकाश पाण्डेय, के प्रति तथा प्रकाशन के लिए वर्तमान प्राचार्य प्रो॰ शैलकुमारी मिश्र (कार्यवाहक) के प्रति अपना हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ। पाण्डुलिपि के उपलब्ध कराने के लिए तथा समय–समय पर कार्य के प्रति उत्साहित करने के लिए मैं परिसर की संग्रहालयाध्यक्षा एवं संग्रहालय के अन्य कर्मचारियों के प्रति अपना साधुवाद व्यक्त करता हूँ।

सम्पादन में यदि कहीं कुछ दोष दिखायी दें तो मनीषी जन उनका स्वयमेव परिष्कार कर लेगें तथा मेरे ऊपर अपना अनुग्रह ही बनाये रखेंगे। यह ग्रन्थ रत्न प्रकाशित होकर संस्कृत जगत् में अपनी थोड़ी सी सुरभि विखेर सका तो मैं अपने आप को धन्य समझूँगा।

– प्रो॰ जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि'
सम्पादक

मातृका विवरण

शीर्षक - (ग्रन्थ नाम) - नन्दसमुच्चय

रचयिता - नन्द (नन्दन)

विषय - काव्य

संग्रह स्थान - राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
गङ्गानाथ झा परिसर, आजादपार्क, इलाहाबाद

आगम संख्या - 16513

आधार - कागज

लिपि - देवनागरी

पत्र संख्या - 1-81, 73-154, 156-175, 178, 180-204,

अप्राप्त पत्र संख्या - 72, 155, 176, 177, 179,

प्रति पङ्क्ति संख्या - 06

प्रति पङ्क्ति वर्ण संख्या - 49

मातृका समय - अनिश्चित

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन इसी एक ही मातृका के आधार पर किया गया है। यह अभी तक अप्रकाशित रहा है। मातृका के अशुद्ध प्रयोगों एवं छन्दोभङ्गप्रयोगों को नीचे फुटनोट में दे दिया गया है तथा ऊपर ग्रन्थ में शुद्ध प्रयोग दे दिये गये हैं।

सम्पादक

प्रो॰ जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि'

नन्दसमुच्चयः

ॐ नमो वागीश्वर्यै

1. विश्वेषां हृदये योऽसौ यत्र विश्वं चराचरम् ।
एकानेकस्वरूपाय तस्मै ज्ञानात्मने नमः ।।

2. सारेतरप्रविचयं प्रति सप्रयत्ना
धीराः क्षणं भवत सूक्तिषु सावधानाः ।
एते वयं खलु परस्य कृतानि लक्ष्या-
ण्युद्भाव्य काव्यमुचिते पथि वर्तयामः ।।

3. साम्राज्यं यदि सत्सुभास्वभिमतं स्याद् वा कलासु स्पृहा-
वाक् हृद्यं यदि चेप्सितं मृगदृशां राज्ञां मनः प्रीणनम् ।
तद् वैयाकरणस्य पाणिनिमतेः साहित्यविद्याविदः
श्रीनन्दस्य समुच्चयः सुमतयः सानन्दमालोक्यताम् ।।

4. सदर्थालङ्कारं श्रवणपुटपेयं स्फुटरसं
सुधाधारासारप्रतिमगुरुसारस्वतमयम् ।
कवीनां कीर्त्यर्थं श्रवणपठनार्थञ्च विदुषां
सहस्रं श्लोकानां व्यरचयदिदं नन्दनकविः ।।

5. ये मेरुं तुलयन्ति मानमनिकाः पिण्डैः पयो वारिधेः
कुम्भैर्ये कलयन्ति ये च सिकताः संख्यानि गङ्गाभुवः ।
आकाशे कलयन्ति ये ग्रहगणान् पत्राणि पृथ्वीरुहां
ते श्रीनन्दनपण्डितस्य भणितेर्वक्तुं समर्था गुणान् ।।

शिवव्रज्या

6. शिल्पत्रीणि जगन्ति यस्य कविता यस्य त्रिवेदी गिरो
यश्चक्रे त्रिपुरव्ययं त्रिपथगा यन्मूर्ध्नि माल्यायते ।
त्रीन् लोकानिव वीक्षितं वहति यो विस्फूर्य्यदक्ष्णां त्रयं
स त्रैगुण्यपरिच्छदो विजयते देवस्त्रिशूलायुधः ॥

– वसुकल्पदत्तस्य

7. दग्धा सा इति सत्रपं मनसिजद्वेषीति मुग्धस्मितं
साश्चर्यं विषमेक्षणोऽयमिति च त्रस्तं कपालीति च ।
मौलिस्वीकृतजाह्नवीक इति च प्राप्ताभ्यसूयं हरः
पार्वत्या सभयं भुजङ्गवलयीत्यालोकितः पातु वः ॥

– विनयदेवस्य

8. सिन्दूरश्रीर्ललाटे कनकरसमयः कर्णपाशेऽवतंसो
वक्त्रे ताम्बूलरागः पृथुकुचकलशे कुङ्कुमस्यानुरागः ।
दैत्याधीशाङ्गनानां जघनपरिसरे लाक्षिकक्षौमलक्ष्मीः
अश्रेयांसि क्षिणोतु त्रिपुरहरशराङ्गारजन्मानलो वः ॥

शुभाङ्गस्य

9. सन्ध्याभांशुकपल्लवेषु तरुणीवाणीगुणेषु स्थिरं
मन्दं कञ्चुकसन्धिषु स्तनतटोत्सङ्गेषु दीप्तार्चिषम् ।
आलोक्य त्रिपुरावरोधनवधूवृन्दस्य धूमध्वजं
हस्तस्त्रस्तशरासनो विजयते देवो दयोर्द्रेक्षणः ॥

– चित्रपस्य

10. अनडुहि जितनीपे मृगेन्द्रवेगे,
कृतनिविडासनमुज्झिताघपीडे ।
स्मरशमनतडित्कडार-दृष्टिं
मृदुमुदराडुपशोभिचूडमीडे ॥

– पाणिनेः

11. ब्रभ्रुभ्रूश्मश्रुकेशं शिखरमिव गिरेर्लग्नदावाग्निमालं
नेत्रैः पिङ्गोग्रतारैस्त्रिभिरिव रविभिश्चित्रितः कालमेघः ।
दंष्ट्राचन्द्रप्रभाभिः प्रकलितसुवृहत्तालुपातालमूलं
शम्भोर्वक्त्रं सुवक्त्रं त्रितयभयहरं हन्त्वघं दक्षिणं वः ॥

– विभीषणस्य

12. देहार्धं हरये दत्वा प्रीत्या देव्यै ततोऽपरम् ।
इतीवादेहता यस्य तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ – कस्यापि

13. वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान् ।
नमन्जन्मन्यस्मिन्नहहह तनुरग्रेऽप्यनतिभाक्
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि॥ – रावणस्य

14. बालाङ्कं गोत्रमार्गे त्वयि किमभिषवैर्देव नैवेद्यराशिः
पञ्चग्रासी यदीया निजतनुकवलैः पञ्चभिः पञ्चभूतैः ।
किं मन्त्रैर्मन्त्रिकर्तुः किमु कुसुमचयैर्व्योमकेशस्य ते स्यात्
पूजा भावेतरेयं भवतु भव भवद्भावनैवाभयाय॥

–कस्यापि

15. त्वत्पादान्ते लुठन्ति त्रिदशपरिषदस्त्वत्किरीटेऽम्बुपूर-
स्त्वत्कण्ठे कालकूटस्तव दृशि दहनस्त्वद्भुजे भोगिराजः ।
वार्तामात्रप्रवृत्तेस्तव कितव कुतस्ते न दिव्याश्रिता ते
व्यर्थेत्युक्ता भवान्या स्मितमधुरमुखः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥

– कस्यापि

जटाजूटस्य

16. विद्युद्यत्र मणिद्युतिः फणिपतेर्बालेन्दुरिन्द्रायुधं
वारि स्वर्गतरङ्गिणीसितशिरोमाला वलाकावली ।
ध्यानाभ्यासससमीरणोपनिहितः श्रेयोऽङ्कुरो भूतये
भूयाद्वः स भवार्तितापभिदुरः शम्भोः कपर्दोऽम्बुदः ॥

– गाङ्गोनटस्य

कपालावली

17. प्रेङ्खद्भिश्चन्द्रपादैर्विहितपनिकरः स्फाटिकाश्मानुकारै-
रप्याजूटः पुरारेः शिरसि सुरसरित्तीर्णदेशावघट्टः ।
बद्धाहिश्वासवातैः सुषिरकवलितध्वान्त[1]राशिर्भ्रमन्ती
कापाली यत्र मालानयचलितघटी यन्त्रलीलां बिभर्ति ॥

–धोयिकवेः

18. गौरीपतिः परिषदोऽस्तु शुभाय यस्य
गङ्गा तु वेगचलिता नृपकपालमाला ।
उड्डीयमाननवचन्द्रकला मृणाली
ग्रासोत्सुकेव परिसर्पति हंसपङ्क्तिः ॥

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'एव'

19. करोतु सा शङ्करमस्तकस्थिता
कपालमाला सततं सुखानि वः ।
सुरापगातीरनिपातदर्शिता
जटालतानामिव कन्दसततिः ।।

– गणेश्वरस्य

20. शान्त्यैवास्तु कपालदाम जगतां पत्युर्यदीयां लिपिं
क्वापि क्वापि गणाः पठन्ति पदशो नीतिप्रसिद्धाक्षराम् ।
विश्वं सुक्षति रक्षति क्षितिमयामी शिष्यते शिष्यते
नागान्नागिसु रंस्यते स्म त्रिजन्निर्वैक्ष्यति त्वामिति ।।

– राजशेखरस्य

नयनम्

21. एकं योगनियोजनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः
पार्वत्या जघनस्थले स्तनयुगे शृङ्गारभारालसम् ।
अन्यद् दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं
शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ।।

– कस्यापि

22. कामारिरित्यवगमायि नमो नमोऽस्तु
रुद्रस्त्वमित्युभयभावभयाकुलस्य ।
मीलन्मुहुर्नयननीलमुमाविवाहे
लालाटिकं त्रिनयनस्य नमामि नेत्रम् ।।

–नयपालस्य

कण्ठः

23. खेलन्तः क्षणमूर्ध्वलोचनपुटप्रान्तेषु धूमश्रियो
विश्रान्तः सुरतं सबालशशिनः क्रोडे कुरङ्गोपमाः ।
भूयासुर्भवतोत्सवाय यमुनासंभेदलक्ष्मीलिहो
लिम्पन्तः सुरसिन्धुमन्धकरिपोः कण्ठप्रभासोर्मयः ।। –कस्यापि

मौलिचन्द्रः

24. सम्पूर्णः परमेश्वरेण विधृतश्चन्द्रो गिरीशात्मजा–
वक्रालोकनलज्जितः समभवच्छीणोऽभिमानादिव ।
शङ्के लोचनपावकस्त्रिपथगामध्यस्थितो वर्तते
आलोचं विदधान एष दहने किन्त्वाविशेषं जले। ।
– कस्यापि

25. यो लीलातालनृत्तं रहसि निरुपधिर्यश्च केलिप्रदीपः
क्रोधक्रीडासु योऽस्तं दशनकृतरुजो योऽधरस्यैकसेकः[1] ।
आकल्पे दर्पणं यः श्रमशयनविधौ यश्च गण्डोपधानं
देनः स व्यापदं वो हरतु हरजटाकन्दलीपुष्पमिन्दुः ।। –कस्यापि

26. चण्डीचरणेऽरक्तचित्रा हरशिरसि शशिकला जयति ।
दृग्दहनदग्धमनसिजपुनरुप्तिरजातपत्रीव । – गोवर्धनस्य

मौलिगङ्गा

27. स जयति गङ्गाजलौघः शम्भोरुत्तुङ्गमौलिनिविष्टः ।
मज्जति पुनरुन्मज्जति चन्द्रकला यत्र सफरीव ।। – कस्यचित्

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'सेक'

28. मुक्ताभालकपालशुक्तिषु जटावल्लीषु मल्लीनिभा,
वह्नौ लाजनितौ दृशोर्मणिनिभा भोगोत्करे भोगिनः ।
नृत्यावर्तपरम्परे चितपयः संमूर्च्छनोल्लालिता,
खेलन्तो हरमूर्ध्नि पातु भवतो गङ्गापयोविन्दवः ।। -शतानन्दस्य

29. स पातु वो यस्य जटाकलापे
स्थितः शशाङ्कः स्फुटहारगौरः ।
नीलोत्पलानामिव नालपुञ्जे
निद्रायमानः शरदीव हंसः ।। - कस्यापि

30. बालेन्दुकन्दलितकान्तजटाकलाप-
कूलङ्कषा विषमतार इवाम्बरेषु ।
गौरीपतेरतिकरालकपालपङ्क्त -
र्वाचालवीचिवलया तु नु जाह्नवी वः ।। - कस्यापि

शङ्करक्रीडा

31. बालः सुन्दरि चन्द्रमा विधुसुधाधाराभिराप्यायितो,
निद्रामेति फणीश्वरः सुरधुनी रुद्धा जटावल्लिभिः ।
इत्थं मन्मथकेलिकौतुकविधौ व्रीडावतीं पार्वतीं
पायाद्वः प्रतिषेधयन्नववधूश्चन्द्रार्धचूडामणिः ।। - कस्यापि

32. द्वारे दारुवनाभिसारक मृषा चाटूनि मुञ्चाधुना
भूयस्त्वं पुनरप्यहं यदि पुनश्चन्द्रक्षितिं यास्यति।
इत्युक्तः शशिमौलिरद्रिसुतया चूडेन्दुभूलम्बन-
व्याजव्यञ्जितपादपद्मपतनप्रीतः प्रियः पातु वः।।
- श्रीहर्षस्य

33. जटागुल्मोत्सङ्गं प्रविशति शशी भस्मगहनं
फणीन्द्रोऽपि स्कन्धादवतरति लीलाञ्चितफणः ।
वृषः शाठ्यं कृत्वा विलिखति खुराग्रेण नयनं
यदा शम्भुश्चुम्बत्यचलदुहितुर्वक्त्रकमलम् ।।

– राजशेखरस्य

34. कस्मात् पार्वति निष्ठुरासि सहजः शैलोद्भवानामयं
निःस्नेहासि कुतो न भस्मपुरुषः स्नेहं क्वचिद्विन्दति ।
कोपस्ते मयि निष्फलः प्रियतमे स्थाणौ फलं किं भवेद्
इत्थं निर्वचनीकृतो गिरिजया शम्भुः शिवायास्तु वः ।।

– कस्यापि

35. नखदर्पणसङ्क्रान्तिप्रतिमादर्शकान्वितः ।
गौरीपादानतः शम्भुर्जयेत्येकादशः स्वयम् ।। – भासस्य

अर्धनारीश्वरः

36. अच्छिन्नमेखलमलञ्च दृढोपगूढमप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविद्युताभो भोगस्य साक्षमिव पातु वपुः पुरारेः।।

– भोजदेवस्य

37. आकल्पं परिधाय चर्मवसनं कृत्वा कपालं[1] करे
भिक्षार्थं भ्रमतो न कोऽपि भुवने रुद्राद्दरिद्रोऽपरः ।
स्वं देहं सहभार्यया ध्रुवमसौ संवर्धितुं न क्षमो
हित्वार्धार्धमपि द्वयोः परिमितं चक्रे यदेकं वपुः ।।

– वासुदेवस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'कृतविपुलं भस भोग'

38. व्याघ्रत्वक् नद्धमर्धं मरकतहरितक्षौमसंवीतमर्धं
नागाग्रैवेयमर्धं मसृणमपि मया मुक्तमुक्तास्त्रगर्धम् ।
भीमभ्रूभङ्गमर्धं कुसुमशरधुनीभङ्गुरभ्रूकमर्धं
स्फीतं भीमो मयो वस्तिरयति दुरिताङ्गारघोरायितानि ।।

– प्रतिगरुडस्य

39. बद्धोऽनारतमञ्जलिर्विघटते ध्यानानुमायोज्झितं
यस्याक्ष्णोर्मुकुलं दलत्युपनतभ्रूभङ्गजृम्भारुणम् ।
सन्ध्योपासनवासितार्धमनसो वामो नदत्वादरः
सासूयं स्फुरति क्रियात्स भवतां श्रेयोऽर्धनारीश्वरः ।।

– वैद्यहरिहरस्य

40. प्रौढप्रेमरसादभेदघटितामर्धे दधानः श्रियं
देवः पातु जगन्ति केलिकलहे तस्याः प्रसादाय यः ।
व्याहर्तुं प्रणयोचितं नमयितुं मूर्धानमप्यक्षमां
धत्ते केवलमेव वामचरणाम्भोजे करं दक्षिणम् । – गदाधरस्य

नटेश्वरः

41. सन्ध्याताण्डवडम्बरव्यसनिनो भीमस्य चण्डं यथा
व्यानृत्यद्भुजदण्डमण्डनभुवो झञ्झानिलाः पान्तु वः।
येषामुच्छलतां यवेन झटिति व्यूहेषु भूमीभृताम्
उड्डीनेषु विडौजसा पुनरयं दम्भोलिरालोकितः ।।

42. भद्रं चन्द्रकरे शिरः सुरनदिश्रेयः कपालावलौ[1]
कल्याणं भुजगेन्द्रवल्लिकुशलं विष्वग् जटासन्ततौ ।
इत्याहुर्मिलिताः परस्परमसूर्यस्मिन् प्रशस्तिं गते
कल्पान्तारभटी नटस्य भवताद्वः श्रेयसे ताण्डवम् ।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'वले'

वाग्भैरवः

43. कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालदण्डिस्फुर-
च्छेषव्यूहनृसिंहपाणिनखरप्रेतादिकोलामिषः ।
विश्वैकार्णवतां नितान्तमुदितौ तौ कूर्ममत्स्यावुभौ
कर्षन्धीवरतां गतोऽस्य तु महामोहं महाभैरवः।।

44. कण्ठच्छायमिषेण कल्परजनीमुत्तङ्गमन्दाकिनी-
रूपेण प्रलयाब्धिमूर्धनयनव्याजेन कल्पानलम्।
भूषा पन्नगकेलियानकमठादेकोनपञ्चाशतं
वातामप्युपसंहरन्भवतु वः कल्पान्तशान्तः शिवः।।

– चित्रपस्य

अष्टमूर्तिः

45. पन्थाः पाथः प्रदानां परमपरिचितः प्रासने पन्नगानां
प्राणाः पङ्केरुहाणां परिमलविपणिः प्राणनाथः क्षमानाम् ।
आकारः पत्रपेयः परमपरसुहृत् पूरुषाख्यः प्रसिद्धः
पायाद्वः पारमेशाः प्रणतमपघनाः पातकेभ्यः पृथुभ्यः ।।

– वाग् डामरस्य

46. पुराविदः पुराराते‍र्यस्य मूर्तिरुपासते ।
पुरुषः पञ्चभूतानि पुष्पवन्तौ पुनातु वः ।।

47. छिन्नं ब्रह्मशिरो यदि प्रथयति प्रेतेषु सख्यं यदि
क्षीणः क्रीडति मातृभिर्यदि रतिं धत्ते श्मशाने यदि ।
स्रष्टा संहरति प्रजा यदि तथा स्वाध्यायभक्त्या मन-
स्तं सेवे करवाणि किन्तु जगती शून्या स एवेश्वरः ।।

– उमापतिधरस्य

48. त्वं चेत्सञ्चर मे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां
व्यालैः कङ्कणभूषणानि कुरुषे हानिर्न हेम्नामपि ।
मूर्धन्यं तनुषे जडांशुमयशः किन्तेन लोकत्रयी
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ।।

49. त्रिदशलक्षसमक्षहतक्रतुर्द्विजकरालकलापधरो हरः ।
व्रजति कस्य जनस्य नमस्यतां शिरसि विष्णुपदी न नदी यदि ।।

50. पाणौ ब्रह्मकपालमस्थिभिरलङ्कारोऽङ्गरागश्चिता-
भस्मव्याहतमुत्तरीयमुरगः क्रीडासमं मातृभिः ।
यस्यैतान्यसमञ्जसानि तमनाचारैः पिशाचैर्वृतं
कः स्थातुं फलवाञ्छया वद वृषादन्यो जनः सेवते ।।

– योगेश्वरस्य

51. यत्कल्पद्रुमपल्लवेन कवलीक्रीडा विधत्ते वने
यद्दिग्दन्तिघटाः कटाक्षवलनैरग्रेऽपि न प्रेक्षते ।
यच्छृङ्गे विलिखत्यसौ गिरिभुवः कण्ठेन कण्ठीरवं
वृद्धोऽक्षस्तदिदं चराचरगुरोर्देवस्य सेवाफलम् ।।

– गङ्गादासस्य

52. यद्वीक्षसे शिखिनमग्निभुवः सहेलं
यद्वा विलोकयसि तार्क्ष्यमवज्ञयैव ।
लीढोषधीपरिवृढोऽसि यदृच्छया यद्-
वन्दामहे हरभुजङ्ग तवैव जन्म ।।

– गदाधरस्य

53. लतापर्णा पत्नी वपुषि वनिता सैव नलिनी
शिवः स्थाणुः सत्यं तदिह न फलं नापि कुसुमम् ।
तथा सेव्यो वायं सुकृतमभिसन्धाय पुरुषैः
फलं भावो दूरे जगति पुनरुत्पत्तिरपि नो ।।

– रुचिकरस्य

54. विभोश्चूडाचन्द्रं रतिकलहभग्नञ्चं वलयं
द्वयं चैकीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया ।
अवोचत्सम्पश्यत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणैः पूरितकरः ।।

– कालिदासस्य

55. राजाराजार्चिताङ्घ्रेरनुपचितकलो यस्य चूडामणित्वं
नागानागात्मजास्तन्नु भसितधवलं यद्वपुर्भूषयन्ति ।
मारामारागिनीयुर्मतिरियममिता येन रोदाहियारः
सप्तास्सप्ताश्वनुन्नारुणकिरणसमाः पातु बिभ्रत्त्रिनेत्रः ।।

56. नमस्तुम्बिशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे ।। – रक्षोरावणस्य

57. गाढग्रन्थिप्रफुल्लाञ्चलविकलफणापीठनिर्यद्विषाग्नि-
[1]ज्वालानिस्तप्तचन्द्रद्रवदमृतरसप्रोषितप्रेतभावाः ।
उज्जृम्भावभ्रुनेत्रद्युतिमसकृदसृक्कृष्णया लोकयन्त्यः
पायुस्त्वां नागनालग्रथितशवशिरः श्रेणयो भैरवस्य ।।

– भवभूतेः

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'ज्वलि'

58. आर्द्रां कण्ठे मुखाब्जस्त्रजमुपरि नयेत्यम्बिका जानुलम्बा
बालामर्धेन्दुलेखान्निविडयति जटापन्नगेन्द्रेण नन्दी ।
कालः कृत्तिं निबध्नात्युपरयति करे कालरात्रिः कपालं
भो नद्या घाटतीरे परिषदिति पृथा व्यापृतारः पुनातु ।।
– शतानन्दस्य

59. ज्वालेवार्धविसर्पिणी परिणतस्यान्तस्तपस्तेजसा
गङ्गातोयतरङ्गसर्पवसतिर्वल्मीकलक्ष्मीरिव ।
सन्ध्येवार्द्रमृणालकोमलतनोरिन्दोः सहस्थायिनी
पायाद्वस्तरुणारुणांशुकपिशा शम्भोर्जटासन्ततिः ।। – वीरनागस्य

60. देवि त्वद् वदनोपमानसुहृदामेषां सरोजन्मनां
पश्य व्योम निलोहितायति शनैरेषा दशा वर्तते ।।
इत्थं सम्पुटदम्बुजानुकरणव्याजोपनीताञ्जलेः
शम्भोर्वञ्चितपार्वतीकमुचितं सन्ध्यार्चनं पातु वः।। –शितिकण्ठस्य

61. नन्दिन् खञ्जय चित्रसान्द्र[1]मुरजं संमृज्य सज्जीभव
भृङ्गिन्नानय भस्मभाजनमितो लम्बोदरो गम्यताम् ।
स्कन्दं नन्दय मन्दिरोदरगतं देवीति रङ्गागणे
शम्भोस्ताण्डवमण्डलैकमनसः सञ्जल्पितं पातु वः ।। –शितिकण्ठस्य

62. भो भो दिक्पतयः प्रयात परितः खं मुञ्चताम्भोमुचः
पातालं व्रज मेदिनीं प्रविशत क्षोणीतलं क्ष्माभृतः ।
ब्रह्मन्नुनय लोकमात्मसदनं देवस्य नो नृत्यतः
शम्भोः सङ्कटमेतदित्यवतु वः प्रोत्सारणा नन्दिनः ।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'त्रिंजसाद'

63. चन्द्रालोकय पश्य पन्नगपते वीक्षध्वमेते गणाः
कामारेस्तनभारभूषितमुरो लाक्षारुणाङ्घ्रिश्रियम्।
आकर्ण्य त्रिदशापगां शिरसि तां सोत्प्रासमाभासितां
क्रीडास्मेरनताननो विजयते कान्तार्धहारी हरः।।

64. कपाले गम्भीरः कुहरिणि जटासन्धिषु कृशः
समुत्तानश्चूडाभुजगफणरत्नव्यतिकरे।
मृदुल्लेखाकोणो[1] नयवशभुजङ्गस्य शशिनः
पुनीयाद् दीर्घाश्वो हरशिरसि गङ्गाजलकणः।। – योगेश्वरस्य

65. मातर्ब्रूहि किमेतदञ्जलिपुटे तातेन गोपायितं
वत्स स्वादुफलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाण स्वयम् ।
मात्रैव प्रहिते गुहे विघटयत्याकृष्य सन्ध्याञ्जलिं
शम्भोर्भग्नसमाधिरुद्धमनसो हास्योद्गमः पातु वः।।

66. जटासन्ततिरव्याद्वो धूर्जटेः [2]कपिलायिता।
कपालाणुविनिर्मुक्ता प्रसूतिः फणिनामिव।।

– भोजदेवस्य

67. भस्माभ्यङ्गेन शुद्धं जगदभयकरं सर्वलोकैकनाथं
वक्त्रं कापालिवेषं शशधरधवलं शङ्खगोक्षीरवर्णम् ।
बिभ्रत्कोटीरभारं सधवलनयनं देवदैत्येन्द्रवन्द्यं
कल्याणं वः प्रदद्यान्मदनमदहरं पश्चिमं चन्द्रमौलेः।।

मूलपाण्डुलिपौ पाठः 1. ' ध्याजो'
2. 'कपिलायता'

68. गन्धर्वैर्गद्यपद्यव्यतिकरनिपुणैः किन्नरैर्गीयमानैः
रुद्रैरिन्द्रादिदेवैरलकपुलकितैरर्चितं चारुचन्द्रम् ।
देहार्धाधीनकान्तं वदनमरुणिमस्वच्छसिन्दूरवर्णं
सुप्रीतान् वः करोतु त्रिदशपतिपतेरुत्तरं वामदेवम् ।।

69. देवानां जन्मभूमिस्त्रिपुरविजयिनो व्योमगङ्गानिधानं
ब्रह्मादीनां सुराणामभिमतफलदं कान्तिमत्कालकण्ठम् ।
वक्रं पूर्वं भुजङ्गप्रभुफणमणिभिर्भासितं हाटकाभं
पायाद्वः पापनाशं त्रिभुवनभवनस्थानसंहारकारम् ।।

70. निस्वाप्तं[1] प्रस्त्रियामं निरतिशयगुणं निष्कलं निष्प्रपञ्चं
निश्शब्दं निर्विकारं निधनपदशिवं निर्मलं निर्गताशम्।
सर्वज्ञं शान्तमूर्ध्वं विकसितकरणं चादिमध्यान्तशून्यं
पायाद्वो मुक्तिहेतुः पशुपतिवदनं योगिनां ज्ञानगम्यम्।।

71. युष्मान् पातु शिवः शिवं सुरगुरुं भक्त्या भजध्वं नरा
विश्वं सृष्टमिदं शिवेन विभुना क्ष्मावारितेजोऽनिलम्।
अष्टाङ्गेन नमः शिवाय सततं विश्वं शिवाज्ञायते
रुद्रस्येव शिवस्य विश्वमखिलं विश्वं शिवे संस्थितम्।।

72. कोऽयं द्वारि शिवायतिः कथमसौ गोमायुरत्रागतः
शूली चण्डि तदा किमत्र कुरुषे वैद्यान्तिकं गम्यताम्।
वाचालेऽस्मि महेश्वरो घनलवैः किं मूढ गर्जायसे
इत्थं निर्वचनीकृतो गिरिजया ह्रीणो हरः पातु वः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'निस्व'

73. प्रातः संश्रित एष ते शशधरः क्षीणो न सम्पूर्यते
त्रैलोक्ये त्वमधन्य ईश्वरतया ख्यातौ च नो लज्जसे ।
इत्युक्तो गिरिशो गिरीन्द्रसुतया तत्पूर्णताव्याजतः
तस्याः पादनखार्धमर्धशशिना युञ्जन्नतः पातु वः।।

74. तद्भावे हि शिवं भजेमहि भवाम्भोधौ जगत्तारयन्
निर्माय प्रगुणाकृतिं फणिपतिं यः केलिपात्रीयति।
यस्तौषारकरीमुडूयति कलां भिक्षाकपालं मुहु-
र्नौगर्भादपि भारसेचनेविधौ यः सेकपात्रीयति।।

75. या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।। – कालिदासस्य

76. पार्वत्या [1]..
....
....दृष्टः कुवेरानुजः
कृन्तन् स्वानि शिरांशि यस्य पुरतो देवः स पायाज्जगत्।।
– योगेश्वरस्य

77. पयोदानां पन्थाः कवलविषयो वा परिमलं
वहन् बिभ्राणो वा सुहृदपसुहृद् वा जलरुहाम्।
दधन्शृण्वानो वा हरिरिति मुहुर्यस्य विबुधा-
स्तुवन्त्यष्टौ मूर्तीः स जगदवतादन्धकरिपुः।। – हनुमतः

---

1. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

78. शृङ्गं भृङ्गिन् विमुञ्च त्यज गजवदनं त्वञ्च लाङ्गूलमुच्चै-
र्मन्दानन्दोऽसि नन्दिन् ततभवनमहाकालकण्ठग्रहेण।
इत्युक्त्वा नीयमानः सुखयतु वृषभं पार्वतीपादमूलं
पश्यन्नक्षैर्विलक्षं वलितगलचलत्कम्बलस्याम्बको वः।।

79. पातु वो गिरिजा माता यस्या द्वादशलोचनः।[1]
स पातु गिरिजामातुर्द्वादशार्धार्धलोचनः।।

80. पायाद्वः सुरजाह्नवीजलरवभ्राम्यद्जटामण्डली
वेगव्याकुलनागनायकफणाफूत्कारकादुच्छलत्।
सप्ताम्भोनिधिजन्ममण्डलहरीमज्जन्नभोमण्डल-
त्रासे त्रस्तसुरार्हनाकनगरव्रीडाविलक्षा हरः।।

81. स पातु विश्वमद्यापि यस्य मूर्ध्नि नवः शशी।
गौरीमुखतिरस्काररत्नयेव न वेद्यते।।

82. जयति प्रियापदान्ते गरलग्रैवेयकः स्मरारातिः।
विषमविशिषं विशन्निव शरानङ्कनवालः।।

83. मा मां संवृणु विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः।
प्रातर्जयति सलज्जः कज्जलमलिनाधरः शत्रुः।।

84. पाणिग्रहे पुलकितं वपुरैशं भूतिविभूषितं जयति।
अङ्कुर इव नु मनोभूर्यस्मिन् भस्मावशेषोऽपि।।

1. 'लोचन' शब्दस्य पुँल्लिङ्गे प्रयोगः ।

85. याभ्यां वक्त्रमलङ्कृतं पुररिपोर्लेभे गुरुत्वं यया
छत्रं यावनिसद्मनो मखभुजां या सप्ततन्तौ मुखम्।
भानोर्या रथपद्धतिर्भवति या मध्ये मुनीनां यया
ध्येयास्तुन्दवृतः शिवोऽवतु जगत् ताभिर्वृतो मूर्तिभिः।।

हरताण्डवव्रज्या

86. देवस्त्रैगुण्यभेदात्सृजति वितनुते संहरत्येष लोका-
नस्यैव व्यापिनीभिस्तनुभिरिति जगद् व्याप्तमष्टाभिरेव।
वंशो नास्येति पश्यन्निव चरणगतः पातु पुष्पाञ्जलिर्वः
शम्भोर्नृत्यावतारे वलयफणिफणाफूत्कृतैर्विप्रकीर्णः।।

87. यः कल्पाग्निशिखाकलापदलितब्रह्माण्डखण्डोपमं
बिभ्राणो मुखकन्दरं न कुरुते केषां भयं भैरवः।
दृष्ट्वायं चकिता कृतान्तपरिषद् व्यूहैर्दृशो मुद्रिता
देवस्याप्यभवन्नृसिंहवपुषस्त्रासावसन्मन्मनः।।

88. सद्मप्रध्वस्तदेवासुरसरसशिरः श्रेणिशोणारविन्द-
स्त्रग्दामानन्दमूर्तेर्घनरुचिरकणक्लिन्नचर्मांशुकस्य।
निःपर्यायत्रिलोकीततकरनरसव्यात्तवक्त्रस्य जीया-
दानन्दः कालरात्रेः कुचकलशपरीरम्भिणो भैरवस्य।।

89. सृक्कान्तोद्धूतदंष्ट्रोत्करविवरललज्जिह्ममुज्जृम्भमाण-
ज्योतिः क्रूरेक्षणं वो मदयतु वदनं दक्षिणं दक्षशत्रोः।
यस्मादप्युग्रमूर्तेश्चकितमिव दरस्मेरदम्भोजसौम्यं
प्राक् प्रत्यत्तन्नितान्तं स्थगयति भगवानुत्तरं वक्त्रमीशः।।

90. उत्ताना: कति वेल्लिता: कति लयादाभुग्नमध्या: कति,
क्षिप्तोत्क्षिप्तविकल्पिता: कति भुजास्तौर्यत्रिकानुक्रमात्।
कल्पान्तेषु महानटस्य नटत: प्रक्रान्तवक्रे भुवि,
भ्रान्तौ केवलमागमात् सगरलैर्लेखात्रयं पातु व:।।

91. बालाद् दोर्दण्डखण्डं पटुपटहरवत्रस्तगीर्वाणसंघं,
गङ्गागम्भीरघोषं लसदरुनृशिर: श्रेणिरौद्राट्टहासम्।
प्रेङ्खत्खण्डेन्दुचण्डभ्रमणपरवशाशीरियं पातु शम्भो:,
क्षिप्तप्रक्षिप्तपादाहतिविधुरधरामण्डलं ताण्डवं व:।।

92. भ्राम्यद्विश्वम्भराणि भ्रमितचरनमत्कूर्मकुम्भी.............
........................[1]भङ्गेधरणिधरशिर: श्रेणिशीर्यद् हसन्ति।
दिक्कीर्णोदन्वदूर्मित्रसदमरचमूचक्रचञ्चद् वियन्ति
व्यस्यन्तु व्यापदम्बस्त्रिपुरविजयिनस्ताण्डवाडम्बराणि।।

93. भ्राम्यद्भोगीन्द्रभोगभ्रमदमरसरिल्लोलकल्लोलचक्रं
दुर्गास्तुङ्गास्थिमालं करनिकररयक्षुण्डनि:शेषशैलम्।
नाघ्रं लालाटचक्षुर्ज्वलदनलशिखालीढचन्द्रार्कतारं
त्रैसन्ध्यं पातु शम्भोश्चरणहरनमन्मेदिनीमण्डलं व:।।

94. न्यञ्चत् सद्यो विखर्वीभवदचलकुलं प्रस्खलद्दिक्करेणु-
त्रस्यन्मीनाम्बुराशिक्षरदमरसरिद्वीचिदुर्गं महोक्षम्।
नन्दिप्रोत्तूर्णदण्डं डमरुकरशिवारूढकूष्माण्डमुद्यत्
चामुण्डाचण्डरावं त्रिपुरविजयिनस्ताण्डवं व: पुनातु।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ अपूर्ण: श्लोक:।

95. निष्कम्पायां धरायां परिकरभुजगे शेषविश्रम्भभोगे
तूष्णीभूतेषु भूतेष्ववनिधरगुहाकुञ्जशेषे प्रहासे।
आसीनं नृत्यभोगश्रमशिथिलभुजस्तम्भमाश्रित्य शूलाद्
भीता तत्रोपसर्पत्यवसितनियमं भूतनाथं भवानी।।

96. शूलं कालाय दत्वा सरुधिरपिशितं नन्दिने वक्त्रमानं
चर्मण्यं सावशक्ते चकितचकितया कालरात्र्या गृहीते।
सन्ध्यानृत्यावसाने परिकरभुजगं स्रंसयित्वा स्थितस्य,
स्थाणोर्भारं जटानां रचयति गिरिजालम्बमानेन्दुखण्डम्।।

97. कल्पान्तारभटी नटस्य नटतो रुद्रस्य रुद्रभ्रमि–
भ्राम्यद्ग्रन्थिजटोद्भवोऽस्तु भवतो भूत्यै ससंस्रानिलः।
यात्रावर्तविवर्तनक्रममिलद् दिव्योच्छलत् स्रांकृतौ
रे जातौ रिपुबान्धवौ जलरुहां तौ कांस्यतालायितौ ।। – हनुमतः

98. ब्रह्माण्डं स्फुटति स्खलन्ति गिरयः पुञ्जीभवन्त्यब्जयो,
गोत्रा मज्जति दिग्गजैः सह सुराः शीर्यन्ति धैर्यं कुरु ।
व्यादीर्णस्य विनिःसृताङ्घ्रिविचटत्सन्धिस्खलत् कर्परः
कूर्मोऽजायत चोमया निगदितो नृत्येश्वरः पातु वः।

99. अस्थीन्यस्थीन्यजितमजितं भस्मभस्मेन्दुरिन्दु–
र्गङ्गागङ्गोरग उरग[1] इति व्याकुलाः सम्भ्रमेण ।
भूषावेशोपकरणगणप्रापणव्यापृतानां,
नृत्यारम्भप्रणयिनि शिवे पान्तु वाचो गणानाम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ छन्दोभङ्गः, (मन्दाक्रान्तावृत्तम्)

100. मन्दं पादयुगं विधेहि धरणीभारेण दोर्भूषणं
शेषः सीदति मा विसारय कणान् जीर्णन्निवासो दिशि।
मौलिं नामय कुन्तलं तव नभो गङ्गाधर................[1]
त्येवं सिद्धनिषिद्धताण्डवनयव्यग्रः हरः पातु वः।।

101. पाणौ कङ्कणमुत्फणः फणिपतेर्नेत्रे ज्वलत् पावकं,
कण्ठः कुण्ठितकालकूटकुटिलो वस्त्रं गजेन्द्राजिनम्।
गौरीलोचनलोभनाय सुभगो वेशो ममेति स्फुरत्,
गण्डोल्लासविभावितः पशुपतेर्हास्योद्गमः पातु वः।।

102. यद्भासा भाति विश्वं व्रजति विषयतां नेतरज्योतिषा यः,
स्वान्तानन्दः सदा यः श्रुतिरपि चकितं प्राह्यमन्तेति नेति।
स्वात्मारामः स्वमायाकृतरुचिरवपुः सोऽयमर्धेन्दुमौलिः
स्वामिन् संसारचक्रे भ्रमररयभवभ्रंशहेतुस्तवास्तु।।

103. कस्तूरीतिलकत्रिभालफलके देव्या मुखाम्भोरुहे
लोलं वन्तितमालवल्लिमुकुलोत्तंसन्ति मौलिं प्रति।
या कर्णे विकचोत्पलन्ति कुचयोरङ्गे च कालागुरु
स्थानन्ति प्रथयन्तु तास्तव शिवं श्रीकण्ठकण्ठत्विषम्।।

104. केशेषु प्राक् प्रदीप्तस्त्वचि विकटचटत्कारसारोऽत्रिमात्रं
मांसे मन्दायमानः स्फुरदसृजिसृजन्नस्थिपृष्ठात् कृतानि।
मज्जप्रायेऽङ्गभागे झटिति रतिपरे ज्वाज्वलद् ज्वालनश्री–
रश्रेयांसि स्यतादवस्त्रिनयननयनोपान्तवान्तो हुताशः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

105. क्वाप्यग्निः क्वचिदत्रिभुन्नरशिरः कीर्णा क्वचिन्निम्नगा-
रुक्षाः क्वापि जटाः क्वचिद्विषधरा रौद्रं विषं कुत्रचित् ।
तादृग् भूतगणैर्वृतो मम चिताभस्मोर्मिकीमीरितिः
संसारं प्रतिमुच्य यातु न पुनर्भोगाय पन्था शिवः।।

106. स्वेदार्द्रवामकुचमण्डलपत्रभङ्ग,
संशोषिदक्षिणकराङ्गुलिभस्मरेणुः ।
स्त्रीपुंनपुंसकपदव्यतिलङ्घनीयः
शम्भोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ।।

107. वामे भागे च यस्य सुरतरुकुसुमापीडसंश्लिष्टभास्वद्-
रत्नालङ्कारजन्मस्फुटकिरणसटाभिन्नसिन्दूररेणुः।
अन्यस्मिन् भोगिमालावलयितनृशिरोरत्नमग्नार्धचन्द्रो
मौलिर्युष्माकमन्तर्मलमपनयतादर्धनारीश्वरस्य।।

108. देहार्धग्रथनावशिष्टमपरं गौरीमुखार्धं दधन्
मूर्धाचन्द्रमिषादसौ दिशतु वः श्रेयांसि भूतेश्वरः ।
यत्पूजाकमलेषु मौलिशशिना सम्मील्य मानेष्विव
स्वामुद्धृत्य दृशम्बिकर्तनमयी भक्त्या ददौ माधवः।।

109. इन्दुर्मूर्ध्नि शिवस्य शैलदुहितुर्वक्रो नखाङ्कस्तने
देयाद्वोऽभ्युदयं द्वयं तदुपमामालभ्यमानं मिथः।
संवादप्रणयेन यस्य दलतो कायैकतायान्तयो-
रूर्ध्वद्वारविचिन्तिते न च हृदि ध्यानस्वरूपेण च।।

110. स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगात्
तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः ।
भवति गिरिसुतायाः सार्धमब्धेर्दुहित्रा
सदृशमहशिकण्ठे यत्र सीमाविवादः ।।

111. धात्रा सौहृदसीमविस्मितमुखं भेदभ्रमायासनात्
सानन्दं मुनिभिः सनिर्वृतसुरैरेकत्र सेवासुखात्।
पार्वत्या स्वपदारकृष्टिकुटिलभ्रूभङ्गमालोकितः
पायाद्वो भगवांश्चराचरगुरुर्देहार्धनारीश्वरः।।

112. शम्भोरिन्दुकला सुखं दिशतु वो यस्याः प्रतिच्छायिकी
त्रिस्रोतःपतितामनेककुटिलीभारङ्गतां वीचिभिः।।
सेनानीरवलोकते ध्वजपटाहन्तेन कात्यायनी
मल्लीदामसमीहया निजवधूरोधेन यागाधिपः।।

113. पीयूषद्रवपानदोहदरसव्यग्रोरगग्रामणी-
दष्टः पातु शशी महेश्वरशिरो नेपथ्यरत्नाङ्कुरः।
यो विश्वप्रतिपूरणाय विधृतो निष्पीड्य सन्देशिका-
यन्त्रे नेत्रललाटलोचनशिखिव्यालाभिरावर्तते।।

114. स वो पायादिन्दुर्नवविषलताकोटिकुटिल-
स्मरारेर्यो मूर्ध्नि ज्वलनकठिने भाति निहितः।
भ्रमन्मन्दाकिन्या प्रतिदिवससिक्तेन पयसा
कपालेनोन्मुक्तः स्फटिकधवलेनाङ्कुररसः।।

115. च्युतामिन्दोर्लेखामतिकलहभग्नञ्च वलयं
द्वयं सज्जीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया।
अवोचन्नो पश्यत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरितकलः।।

116. तुङ्गं गाङ्गमुदञ्चदिन्दुशकलं भ्राम्यत्कपालावलि-
क्रोडे भ्राम्यदमन्दमारुतरयस्फारीभवद्भाकृतिः।
पयाद्वो घनताण्डवव्यतिकरप्राग्भारखेलस्खलत्-
भोगीन्द्रश्लथपिङ्गलोत्कटजटाजूटं शिरो धूर्जटेः।।

117. उत्पन्नेव दृशा दिशाकुसुमितेवेन्दोः करैर्भोगिभि-
र्मा रोहे वनदाटवी कलयतु श्रेयो भवानीपतेः।
यत्पर्यन्तविवर्तिनः सुरसरित्पूरस्य भूविस्फुरत्-
फेणोट्टङ्कविलासमञ्चति विधेर्जीर्णा कपालावली।।

118. क्वचिदमरसरित्क्वचित्कपालनालं
क्वचिदुरगाः क्वचिदैन्दवी सुलेखा।
इति विषमविभूषणैरुपेता
प्रमथपतेरवताज्जटाटवी।।

119. उष्णीशग्रन्थिवन्धादनिभृतविकसत्कर्तरी कर्पराणा-
मुत्तालीभूतनारायणजठरवृहत्पद्मकल्पं पुरारेः।
श्वासैरध्मातरन्ध्रध्वननमुखरितब्रह्मकङ्कालसंख्यै-
रुद्भूतं मूर्धनीकं जयति फणिपतेश्चक्रवालं जटानाम्।।

अथ दुर्गाव्रज्या

120. स्वेदस्ते कथमीदृशः प्रियतमे त्वन्नेत्रवह्नेः प्रभो,
कस्माद्द्वेषितमेतदिन्दुवदने भोगीन्द्रभीते भवे।
रोमाञ्चः कथमेष देवि भगवन् गङ्गाम्भसः शीकरै-
रित्थं भर्तरि भावगोपनपरा गौरी चिरं पातु वः।।

121. त्रिभुवनशुभपञ्जिकाञ्जिकेव
स्फुरति भवानि तवाङ्कुशः कराग्रे।
डमरूरपि बिभर्ति देवि तत्र
द्विपदवसानविसर्जनीयशोभाम्।।

122. यानुद्धूलयतीश्वरं सिकतिला यैर्मौलिमन्दाकिनी,
यैर्बालेन्दुकलार्द्रकेतकदलोत्सङ्गे परागायितम्।
यैः कैलासविलासकाननतटी कङ्केलिपुष्पोद्गम-
क्रीडत्कार्मणमद्रिजाचरणयोस्ते रेणवः पान्तु वः।।

123. भवजलधिजलावलम्बयष्टि-
र्महिषमहासुरशैलवज्रधारा।
हरहृदयतडागराजहंसी
दिशतु शिवं जगतश्चिरं भवानी। -भगीरथस्य

124. बिभ्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे,
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुवेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं सर्वदा सा भवानी। - बाणभट्टस्य

125. ब्रह्माऽयं विष्णुरेष त्रिदशपतिरसौ लोकपालास्त एते,
जामाता नात्र कोऽयं भुजगपरिवृतो भस्मरुक्षः कपाली।
हा वत्से वञ्चितासीत्यनभिमततरा लोकनब्रीडिताभिः
शोच्या [1]मानाप्युपचितपुलका पातु सा पार्वती वः।।

126. पादावष्टम्भनम्रीकृतमहिषतनोरुल्लसद् बाहुमूलं,
शूलं प्रोल्लासयन्त्याः सुललितवपुषो मध्यभागस्य देवाः।
विव्यष्टस्याष्टतृष्णो ततविरलबहुव्यक्तगौरान्तराला-
स्तिस्रो वः पान्तु रेखाः क्रमरसविकसत्कञ्चुकप्रान्तमुक्ताः।।

127. दृप्तान् हुङ्कृतिपूर्णकण्ठविवरानुद्गीर्णतीक्ष्णायुधान्,
निद्रान्तारुणतारकोग्रनयनान् दन्तानि दष्टाधरान्।
पादाक्रान्तिनमन्महीतलदलान् भीमभ्रुवो धावतः
शस्त्रोघैर्युधि याजयद्रिपुगणास्तस्यै भवान्यै नमः।। - वैद्यहरिकरस्य

128. दंष्ट्रासन्धिविलीनमेककवलं विश्वं तदश्नासि किं
सप्ताम्भोधिजलानि हस्तसुषिरे शुष्कानि किं पीयताम्।
इत्याहारदरिद्रताकुलतया शुष्यत्तनुं बिभ्रती
कल्पान्ते नृकपालमण्डनविधिः पायाज्जगच्चर्चिका।। -गोन्दोकस्य

129. दुर्गासि मातः सुगमासि भक्त्या
भवानुकूलापि भवं क्षिणोसि ।
अध्येयतां यासि सदैव देवि
ध्येयापि चित्रं चरितं तवैतत् ।। - आनन्तबोधस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ इत्थं छन्दोभङ्गप्रयोगः

130. संवित्सत्त्वरजस्तमस्तनुरसुक्रान्त्यातमेति त्रिधा
त्रैलोक्यं त्रिगुणादि वापि भजते वैभाकरी भैरवी।
भास्वच्चन्द्रसमोरनारततया नु क्षेपनाद्या शिवा
सृष्ट्वा रक्षति संहरत्यपि जगत् त्वां पातु सा चण्डिका।। -चारुकवेः

131. लाक्षारागं वहति शिखरे जाह्नवी वारि येषां
ये तन्वन्ति श्रियमधिजटामण्डलं मालतीनाम्
यात्युत्सर्पद्दशनकिरणैर्यस्तिरोधानमिन्दु-
र्देव्याः स्थाणौ चरणपतिते ते नखाः पान्तु विश्वम्।। - दक्षप्रजापतेः

132. प्रातःकालाञ्जनभयचितं वीक्ष्य जामातुरोष्ठं
कन्यायाश्च स्तनमुकुलयोरङ्गुलीभस्ममुद्राः।
प्रेमोल्लासाज्जयति मधुरं सस्मिताभिः सखीभि-
र्गौरीमातुः किमपि किमपि व्याहृतं कर्णमूले।। -शुभाङ्गस्य

133. गोनाशाय निवेशिताङ्गदरजाः सर्पाय यद्दौषधि-
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहते पाणौ मणिम्बिभ्रती।
भर्तुर्भूतगणेशगोत्रजरती निर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः।। - राजशेखरस्य

134. सातङ्का फणिकङ्कणेषु बहलक्रीडागजेन्द्राजिने
सानन्दास्त्रिदशस्तुतौ सरभसा गान्धर्वगीतोर्मिषु।
शोणाः स्वर्गनदीविलोकनविधौ चन्द्रे निमेषालसा
पान्तु त्वां करपीडनोत्सवविधौ शैलात्मजादृष्टयः।।

135. मिश्रीभूतां तव तनुलतां बिभ्रतो गौरि काम-
देवस्यासीदविरलपरीरम्भजन्मा प्रमोदः।
किन्तु प्रेमस्तिमितमधुरस्निग्धमुग्धाभदृष्टि-
दृष्टेत्यन्तः करणमसकृत्ताम्यति त्र्यम्बकस्य।। - भगीरथस्य

136. प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनन्यस्तया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम्।
उन्मादस्मितरोषलज्जितरसैर्गोर्या कथञ्चिच्चिरात्
वृद्धस्त्रीवचनात् प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः।।

137. मातस्तेऽधरखण्डनात् परिभवः कामारिणायं कृतः
स ब्रह्मादिषु कथ्यतामिति शनैर्बाल्याद्गुहे जल्पति।
गौरीहस्तमुखेन षण्मुखवचो रोद्धुं निरीक्ष्याक्षमा-
वैलक्ष्याच्चतुरास्यनिष्फलपरा वृत्तिश्चिरं पातु वः। - चित्रपस्य

138. तारा त्वं सुगतागमे भवगती गौरी च शैवागमे
वक्रा कौलिकशासने जिनबले पद्मावती विश्रुता।
गायत्री श्रुतिशालिनां प्रकृतिरप्युक्ता च साङ्ख्यागमे
मातः श्रीत्रिपुरेऽवदातचरिते व्याप्तं समस्तं त्वया।।

139. देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणा किं तिष्ठतेत्यद्भुतं
हर्षाद् भृङ्गिरिटावयाचितगिरा चामुण्डयाऽऽलिङ्गिते।
अव्याद्वो हतदुन्दुभिध्वनघनाध्वानाभिरिक्तं तयो-
रन्योन्यप्रचणास्थिपञ्जररणत्कङ्कालजन्मा रवः।। - योगेश्वरस्य

140. यद् वक्रा काशदेशे नभसि न सुलभो यद् भुजानां सहस्त्रैः
प्रेङ्खद्भिः शीर्यमाणं वपुरपि विदितो नावकाशो दिशासु।
पञ्चाग्रास्या न यस्यास्त्रिभुवनमभवत्पूरणार्थे समस्तं
क्षुत्क्षामाकाण्डचण्डी चिरभवतु नतान् भैरवी कालरात्रिः।। –भाषोकस्य

141. रक्षतु वस्तनयुगलं करिकुम्भानुकारि गिरिदुहितुः ।
शङ्करदृढकण्ठग्रहपीडनभस्माङ्गरागविच्छुरितम् ।। – दक्षस्य

142. शूलाहतमहिषासुरशोणितच्छुरिता धराम्बरा गौरी।
पुष्पवती वसलज्जा हसितहरनिरीक्षिता जयति।। –गोनन्दस्य

143. किं गौरि मां प्रतिरुषाननुगौः किमस्मि
क्रुध्यामि कां प्रतिमयीत्यनुमानतोऽहम्।
जानासि सत्यमनुमानत एव स त्व-
मित्थं गिरो गिरिभुवः कुटिला जयन्ति।

144. हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षीं नमाम्युमाम्।
कालकूटविषस्पर्शजातपर्यम्भसामिव[1]।। – बाणस्य

145. जिन्मांसप्रकटास्थिजालविकटां पातालनिम्नोदरीं
कूटक्रोडगभीरनेत्रविवरां मूर्धार्धजूटाटवीम्[2]।
दन्तान्तर्गतदैत्यकीकशकणव्याकर्षणव्यापृत-
क्रूरैकाग्रनखामखण्डितरुषां त्वां चण्डि ! वन्दामहे ।।

– बाणस्य

मूलपाण्डुलिपौ पाठः 1. 'सपर्या'

2. 'मुद्वद्ध'

कुमारव्रज्या

146. शिखिगतिरतिदुर्ललितः पित्रोरभिलषति मध्यमे शयितुम्।
तावप्येकशरीराविति विषमाशश्चिरं जयति। – शुभाङ्गस्य

147. स्वेच्छा रम्यं लुठित्वा पितुरुरसि चिताभस्मधूलीसिताङ्गो
गङ्गावारिण्यगाधे झटिति हरजटाजूटतो दत्तझम्पः।
सद्यः शीत्कारकारी जलजडिमरणद्दन्तपङ्क्तिर्गुहो वः
कम्पी पायादपायाज्ज्वलितशिखिशिखे चक्षुषि न्यस्तहस्तः।। –बाणस्य

148. हंसश्रेणिकुतूहलेन कलयन् भूषाकपालावलिं
बालामिन्दुकलामृणालरभसादान्दोलयत्पाणिना।
रक्ताम्भोजधिया च लोचनपुटं लालाटमुद्घाटयन्
पायाद्वः पितुरन्तभाक्शिशुजनक्रीडोन्मुखः षण्मुखः।।
–कविशेखरस्य

149. तातोऽयं नैष तातः स्तनमुरसि पितुर्नैव दृष्टं कदाचिद्
अम्बेयं नेयमम्बा नहि खरकपिशं श्मश्रु तस्या मुखार्धे।
कोऽयं केयं किमेतद्युपतिरथ पुमान् वस्तु किं वा तृतीयं
रूपं संवीक्ष्य पित्रोरपसरति गुहः शङ्कितः पातु युष्मान्।।
–राजशेखरस्य

150. हस्तप्राञ्जलयो न पङ्कजवनं केशा न दावाग्नयो
नैते शृङ्गगता घना दशमुखो नैते भुजाः शाखिनः।
सन्ध्यो नैष विमुञ्च चापलमितः पुष्टः पुरः शैशवा–
दारोहन्दशकन्धरं विजयते पित्रा निषिद्धो गुहः।।

151. आदायेन्दुकलां हरस्य शिरसः कृत्वैकदन्तः करं
नासालम्बननिश्चलं फणिपतिं कर्णौ तराभ्यां ततौ।
दृष्टः श्वासनिरोधवर्धितवृहन्नन्दः सहायैर्गणैः
कुब्जीभूय विडम्बयन् गणपतिं स्कन्दः शिवायास्तु वः।।

152. अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्त्रकुहराण्यासृक्वणो वासुकेस्-
तर्जन्या विषकर्दुरान् गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान्।
एकं त्रीणि न वाष्ट सप्त षडिति व्याचक्षसंख्याक्रमा
वाचः शक्तिधरस्य शैशवकलाः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्।।

\- गोवर्धनस्य

गणेशव्रज्या

153. सन्ध्यासिन्दूररागारुणगगनतलस्याङ्गितुं श्रोत्रमङ्गं
कण्ठे नक्षत्रमालाकृतरुचिररुचिः कर्णशङ्खीकृतेन्दुः।
निस्त्रायाम्भोदवृन्दश्रुतियुगलचलच्चामराडम्बरश्री-
ख्याताभालङ्कृतिर्वः प्रवितरतु गणग्रामणीर्मङ्गलानि।।

154. अव्याद्वो वलिताङ्घ्रिभारविचलद् भूगोलहेलोन्मुख-
भ्राम्यद्दिक्करिकल्पितानुकरणो नृत्याङ्गणग्रामणी।
यस्योद्दण्डितशुण्डपुष्करमरुव्याकृष्टसृष्टन्मुहु-
स्ताराचक्रमुदग्रशीकरपृषल्लीलामिवाभ्यस्यति।।

155. लेखा चान्द्रमसी मृणालकलनाद्दन्तैकमूले धृता
पीतं द्वित्रिपुटं पयो दिविषदां नद्या निषिक्तं शिरः।
तच्छ्रोतो जलनीलिकामिव जटां कर्षन् कराग्रेण वः
पायाच्छङ्करशीत्कृतेन चकितो नागाननः शैशवः।।

कार्तिकेयः

156. सृक्कान्ते दशनाङ्कुरप्रतिनिधिं कृत्वा सुधाजन्मनो
हस्ताभ्यां विरचय्य नेत्रयुगलं सर्पेण दीर्घं करम्।
दृष्टः श्वासनिरोधवर्धितवृहत्तुण्डः सहासैर्गणैः
कुब्जीभूय विडम्बयन् गणपतिं स्कन्दः शिवायास्तु वः।।

गणेशः

157. एकः स एव परिपालयताद् जगन्ति
गौरीगिरीशचरितानुकृतिं दधानः।
आभाति यो दशनशून्यमुखैकदेश-
देहार्धहालित वधूक इवैकदन्तः।।

कार्तिकेयः

158. सुप्तं दक्षपुटे निलीनशिरसं दृष्ट्वा मयूरं पुरः
कृत्तं केन शिरोऽस्य तात क इति कामन्दतः शैशवः।
सान्तर्हासपिनाकपाणियुगलोत्तालोल्लसच्चेतसः
तन्मूर्धेक्षणतर्पितस्य हसितं पायात्कुमारस्य वः ।।

शिवः

159. आस्थामेव विभूषणं श्रवणयोरस्थ्नाञ्च मूर्ध्नि स्थिति-
र्ग्रीवालङ्कृतिरस्थिजाललतिका हस्तेऽस्थिपात्रं परम्।
इत्यस्थिप्रसृतप्रणम्यमतुलं पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गीसान्द्रशिरोऽवनद्धपरुषं पायाद्वपुर्धूर्जटेः।।

–धोयीकस्य

भृङ्गिव्रज्या

160. कूटस्थं श्रवणोपकण्ठनिहितक्रूरद्विजिह्वाधिपं
दक्षद्वेषिणमङ्घ्रिलङ्घितवृषं वैषम्यभीमेक्षणम्।
ईषन्निर्गुणमव्ययप्रकृतिकं संसेव्य भृङ्गी चिराद्
यज्जीवत्यतिदुर्बलेन वपुषा मन्ये स एवोत्सवः।। -बल्लभस्य

161. सेवां नो कुरुते करोति न कृषिं वाणिज्यमस्यास्ति नो
पैत्र्यं नास्ति धनं न बान्धवधनं नैवास्ति कश्चिद् गुणः।
द्यूतस्त्रीव्यसनं न मुञ्चति तथापीशस्तदस्मात्फलं
किं मे स्यादिति चिन्तयन्निव कृशो भृङ्गी चिरं पातु वः।।

162. कस्मात्त्वं तातगेहादपसरसि नवा तत्र का ब्रूहि वार्ता
देव्या देवोऽर्जितः किं वृषडमरुचिता भस्मभोगीन्द्रचन्द्राः।
इत्येवं बर्हिनाथे कथयति सहसा भर्तृभिक्षाविभूषो
वैगुण्याद्वेगजन्मा जगदवतु चिरं हा रवो भृङ्गरीटेः।। -तुङ्गोकस्य

163. दिग्वासो यदि तत् किमस्य धनुषा सान्द्रस्य किं भस्मना
भस्म स्थास्यति मङ्गलाय दिवसाः कामं प्रति द्वेष्टि किम्।
इत्यन्यायविरुद्धचेष्टितमसौ पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रशिरोऽवनद्धवपुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः।।

श्रीगणेशव्रज्या

164. देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ।।

165. शम्भोराकृष्य चूडाशशधरकलिकां शैशवादात्मवक्त्रे
सन्धायानभ्रमौलावति पतति यवादग्रजे कार्तिकेये।
हेरम्बस्यैव दन्तान्तरसमरसमारम्भसंरम्भिनो वः
सद्यो निघ्नन्तु विघ्नान्यनवसरसमुज्जृम्भिताः कण्ठगर्जाः।।

– दिवाकरस्येतौ

166. कपालादुड्डीनैर्नयरसविलोलैर्मधुकरै-
र्मदारम्भैर्लोभादुपरि पतितुं बद्धपटलैः।
चलद् भृङ्गच्छत्रश्रियमिव दधानोऽतिरुचिरा-
मविघ्नं हेरम्बो भवदघविघातं रचयतु।। – वसुदत्तस्य

167. यदाम्बा तातो वा द्वयमयमगादेकतनुतां
तदर्धं चार्धं[1] वा क्व ननु गतमथार्यः कथयतु।
जगज्जातं तच्चेत्सकलनरनारीमयमिति
प्रतीतिं कुर्वाणो जयति शिखिभर्तुर्गजमुखः।। – मण्डनस्य

168. तन्नागेन्द्रकरोरुदोः करिशिरः पीनस्तनांशं वपुः
स्त्रीपुंसाकृतिमत्पितुस्तव मुखे रम्याग्ररीक्षामहे।
वाराह्या इति नर्मनेभवदनं पश्यत्यदस्या मुखं
नाभिः स्तौति हसन्न निन्दति ततः शिलष्टोऽम्बया पातु वः।।

169. अगणितफणिफणमणिगणकिरणै-
रतुलितजिततनुरविशिखिवरदः।
घटतटतुन्दिलकुलकृतनिनदो
गणपतिरभिमतमिह नु दिशतु तव।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ 'दिर्घार्घञ्च क्व" इति पाठः छन्दोभङ्गः।

170. मीलन्तु पङ्कजवनानि दलन्तु वृक्षाः
शुष्यन्तु दानसरितः करिणां कपोले।
तेऽमी रवं मधुलिहो भगवान् नयेद् यः
त्वां पातु मय्ययिति गण्डतटं नगेन्द्रः।।

पुनर्भृङ्गी

171. भिक्षाभोजिनि कृत्तिवाससि वपुः प्राप्तिः कुभोजायते
तस्यार्धं वपुषः स्वयं व्यसनिनो यस्याहरत्पार्वती।
तस्यार्धं कुपिता परं यदि हरेन्मूर्ध्नि स्थिता जाह्नवी
हा नाथ क्व गतेति दुःखहृदयो भृङ्गी भृशं शुष्यति।।

–योगेश्वरस्य

172. मातापर्णा पिता स्थाणुर्विशाखस्तनयस्तयोः।
इतीवाकुलतां वीक्ष्य शुष्यद् भृङ्गी पुनातु वः।।

173. कपर्दी भूतसम्पन्नो जगतः प्रभुरीश्वरः।
धिग्देवमव्ययः सोऽपि भृङ्गी शुष्यत्यसौ भृशम्।।

174. चर्चेयं क्षुधिता सदैव गृहिणी पुत्रोऽप्ययं षण्मुखो
दुःपूरोदरभावमन्थरगतिर्लम्बोदरोऽपि स्वयम्।
इत्येवं स्वकुटुम्बमेकवृषभो देवः कथं पोष्यती-
त्यालोच्यैव विशुष्कपञ्जरतनुर्भृङ्गी चिरं पातु वः।।

इति प्रसन्नसाहित्यपद्यरत्नाकरव्रज्यायां प्रथमोल्लासः

* * * *

ततो हरिव्रज्या

175. विरमति महाकल्पेनाभिपथैकनिकेतन-
स्त्रिभुवनपुरः शिल्पी यस्य प्रतिक्षणमात्मभूः ।
किमधिकरणं कीदृक् कस्य व्यवस्थिति-
रित्यसावुदरमविशद् द्रष्टुं तस्मै जगन्निधायै नमः ।।

176. भक्तिप्राप्तविलोचनप्रणयिनी नीलोत्पलस्पर्धिनी
ध्यानालम्बनतां समाधिनिरतैर्नीते हितप्राप्तये ।
लावण्यस्य महानिधी रसिकतां लक्ष्मीदृशोस्तन्वती
युष्माकं तनुतां भवार्तिशमनं नेत्रे तनुर्वा हरेः ।।

177. कूर्मस्योपरि चक्रमस्थिनिहितं यत्पिण्डमस्मिन्नभूत्
दण्डस्तत्र वराहदन्तमुशला देवः कुमारो हरिः ।
भूरेषा पिठरी यदीयजठरेणाक्षिप्तदुःखाननै-
र्व्यर्च्यन्ते चतुराननप्रभृतयो विश्वेऽपि हि व्रीहयः ।।

178. लक्ष्मीप्रथमसंयोगकातरस्यासुरद्विषः ।
चत्वारश्चतुराः पान्तु स्तनार्धार्धशङ्कराः ।।

179. अव्याद्वो नटराजपानसमये सार्धं पयोराशिभि-
र्गण्डूषोदरगोचरे जलनिधौ जाते सुराणां पुरः ।
साश्चर्यं सभयं सगद्गदगिरं सव्रीडमुच्चैः पठ-
न्नक्ष्मामन्त्रशतानि कुम्भजकरे क्रोडे निलीनो हरिः ।।

180. युक्तं मानद मामनन्यमनसं वक्षःस्थलस्थायिनीं
भक्तामप्यवधूय कर्तुमधुना कान्तासहस्त्रं तव ।
इत्युक्त्वा फणभृत्फणामणिगतां स्वामेव मत्वा तनुं
निद्राच्छेदकरं हरेरवतु वो लक्ष्मा विलक्षस्मितम् ॥ - भासस्य

181. ब्रूमस्तच्चरितं तमोऽधिजनभिद् सुस्वाम्यपोताकृते
त्वं यादृग्गिरिकन्दरेष्वनयनानन्दः कुरङ्गीदृशाम् ।
इत्युक्तोऽमृतनेहनच्छलनया न्यस्ताङ्गुलिस्वानने
गोपीभिः पुरतः पुनातु जगतीमुत्तानशायी हरिः ॥ - वनमालिनः

182. कालिन्दीपुलिने मया ननु मया शैलोपशैलेन न,
न्यग्रोधेऽस्य तले मया न न मया राधापितुः प्राङ्गणे ।
दृष्टः कृष्ण इतीरिते सनियमं गोपैर्यशोदायते,
विस्मेरस्य प्ररोहयन्निजगृहान्निर्यन् हरिः पातु वः ॥

183. सङ्केतीकृतकोकनादिनिषदं कंसद्विषः कुर्वतो
हारोन्मोचनलोलसंस्थवलयश्रेणिस्वनं शृण्वतः ।
केयं केयमिति प्रगल्भयुवतीनादेन दूनात्मनो
राधाप्राङ्गणको[1]णकेलिविटपिक्रोडे गता शर्वरी ॥ -धोयीकस्य

184. कस्त्वं भो निशिकेशवः शिरसिजैः किन्नाम गर्वी भवान्
भद्रे शौरिरहं गुणैः पितृगतैः पूतस्य किं स्यादिह ।
चक्री चन्द्रमुखि प्रयच्छसि न मे कुण्डीं घटीं दोहनी-
मित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः ॥

1. मूलपाण्डुलिपौ 'क्रोण' इति पाठः छन्दोभङ्गः ।

185. योगिस्वान्तसरोरुहस्य मधुपः क्लेशानलस्याम्बुदो,
राधायाः परिणाहिणि स्तनतटे नीलांशुकस्याञ्चलः।
विश्वेशासवतंसनीलनलिनं गोपान्वयस्वैरिणी-
श्रेणीनां नयनाञ्जनं विजयते कृष्णावतारो हरिः।। - तस्यैव

186. व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृतं वृन्दावनं वानरै-
रुन्नन्ता यमुनाप्यतीवचटुलव्याघ्राः गिरेरन्धयः ।
इत्थं गोपकुमारकेषु गदतः कृष्णस्य कृष्णान्तर-
स्मेराभीरवधूनिषेधनयनस्य व्यञ्जनं पातु वः ।। - तस्यैव

187. सायं व्यावर्तमानाखिलसुरभिसमाश्वानसङ्गीतनामा-
न्याभीरीवृन्दचेतोहठहरणकलाशिल्पमन्त्राक्षराणि।
सौभाग्यं वः समन्ताद् दधतु मधुभिदः केलिगोपालमूर्तेः
सानन्दाकृष्टवृन्दावनरसिकमृगश्रेणयो वेणुनादाः ।।

188. बालोऽसि वत्स त्यज मन्थदण्डं बाहू त्वदेतौ मथितुं न शक्तौ ।
इत्यस्य गोपालवधूभिरुक्ते सान्तः स्मितं पातु हरेर्मुखं वः ।।

189. कृष्णेनास्वगतेन रन्तुमनसा मृद् भक्षिता कानने
सत्यं कृष्णक एवमाह मुशली सथ्याम्ब पश्याननम्।
व्यादेहीति विदारिते शिशुमुखे दृष्टं समस्तं जगत्
माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः ।। - धोयीकस्य

190. एकेनैव भुजेन भूधरमिमं बिभ्राण किं क्षिद्यसे
दोर्द्वन्द्वेन समन्नु वत्स बिभृतीत्युक्तं जरत्पल्लवैः।
सावज्ञस्मितखण्डमण्डितमुखः सद्यश्चतस्त्रोऽङ्गुली-
न्पुञ्जीकृत्य कनिष्ठया धृतगिरिर्बालो हरिः पातु वः।। -शूलपाणेः

191. दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरे गोवर्धनं बिभ्रतः
त्वय्यासक्तदृशः कृशोदरि करस्थाय्यस्य नाभूदयम्।
गोपीनामिति जल्पितं करयतो राधाश्रयं भाविकाः
श्वासाः शैलभरश्रमश्रमचराः कृष्णस्य पुष्णन्तु वः।।

192. दष्टोऽहं यमुनातटे विटपिनाश्लिष्टो भुजङ्गेन मे
कृष्णेनाधरपल्लवोन्नतमहद्भोगेन भोः पश्यतः।
इत्याकर्ण्य ससम्भ्रमं परिकरे गोप्या विदग्धं वचः
कर्णे मन्त्रसृषोक्तिकेलिजनितस्मेरो हरिः पातु वः।। -डिम्बोकस्य

193. भग्ना तिष्ठति का नु वारिणि चिरं गोप्यः समालोक्यता-
मित्युक्ते हरिणा समं ब्रजवधूवर्गे निमग्ने ततः।
राधामन्दकटाक्षविघ्नितजलो वैयाशनैश्चुम्बितः
पायादस्य जयन्ति जातहृदयानन्दं जलक्रीडितम्।। -शतानन्दस्य

194. इह निचुलनिकुञ्जे मध्यमध्यास्य रन्तुं
विजनमजनि शय्या कस्य बालप्रवालैः।
इति कथयति वृन्दे योषितां पान्तु युष्मान्
स्मितसवलितराधामाधवालोकितानि।।

195. स्वस्था धरित्रि भवभारमवेहि शान्तं
नन्वेष कंसहतकं विनिपातयामि।
इत्यद्भुतस्तिमितगोपवधूश्रुतानि
स्वप्नायितानि वसुदेवशिशोर्जयन्ति।।

196. कुशलं राधे मथितोऽस्ति कंसपुत्रकंसः क्व सा राधा।
इति गोपीप्रतिवचनैर्विलक्ष्य हासो हरिर्जयति।।

197. चरणोपरि भूरिति न को जल्पति राधाजयोदया तृष्णे।
प्रणमतु नाम न गोप्यं नियमहरिबाहुसु लयम्।।

198. एते लक्ष्मणजानकीविरहितं मां खेदयन्त्यम्बुदा
मर्माणीव विघट्टयन्त्यनममी क्रूराः कदम्बानिलाः।
इत्थं व्याकृतपूर्वजन्मविरहो यो राधया वीक्षितः
सेर्ष्यं शङ्कितया स वः सुखयतु स्वप्नायमानो हरिः।।

199. अग्रे गच्छति धेनुदुग्धकलशानादाय गोप्या गृहं
दुग्धेरस्कयनी कुलेषु नरियं राधा शनैर्यास्यति।
इत्यन्यव्यपदेशगुप्तहृदयः कुर्वन् विभक्तं व्रजन्
देवः कारणनन्दसूनुरनिशं कृष्णः स पुष्णातु वः।।

200. प्रातः स्कन्धतटावलम्बिगुडकप्रोल्लम्बिगोदोहनीं
छन्दानं भ्रमयन्मुहुः प्रतिदिशं गाश्चालयन्नध्वनि।
मा गाः पङ्किल धूमवेषधवले देशे वने पावनी-
मुच्चैः कारमयं वदन्नवतु वः श्रीगोपरूपो हरिः।।

201. अद्रेः सीम्नि कदम्बपुष्पसमये मिथ्याभिनीय व्यथां
राधाविश्लथवस्त्रवन्धमखिलैरङ्गैर्गता मेदिनीम्।
निर्दोषा वयमित्युदीर्य शिशुभिर्यातं वधूभिर्वृतं
कालिन्दीसलिलाय केवलमितो गाश्चालयन्माधवः।।

202. कालिन्दीतटकुञ्जरेऽपि कुहरे छाया तमालद्रुमः
पुष्पेषोः कुचकुम्भकाञ्चनकषग्रावा कुरङ्गीदृशम्।
जीयात्कालियनागनीलनलिनं गोपीचरित्रच्छिदा
सोल्लासः कुलटामनोरथपरिस्पन्दप्रमोदो हरिः।।

203. गङ्गायां लयनं मुरद्विषि मनः कन्योन्नमत्सैकते
देहार्धं वदनान्तरालकुहरे नारायणावृत्तयः।
मृत्योर्वैभवमीदृशं यदि महासामप्रवल्पं सखे
तन्मे वै पुलकाङ्कुराध्वनगरीमध्वापणैश्शार्ङ्गिणः।। - शुभचन्द्रस्य

204. लोले ब्रूहि कपालिकामिति पिता कस्ते यतिः स्यादसौ
कः प्रत्येति जलादपत्यजननं प्रत्येति यः प्रस्तरात्।
इत्युर्वीधरसिन्धुराजसुतयोराकर्ण्य वाक्चातुरीं
सस्मेरस्य हरेर्हरस्य च दृशो विघ्नं विनिघ्नन्तु वः।।

205. अयं नीलः सिन्धोर्यदित रचयत्यम्बुजवने
विकोषो व्यागुञ्जन् मधुप इति यं जल्पति जनः।
अहं शङ्के पङ्केरुहकुहरवासव्यसनिनीं
प्रियं भृङ्गच्छद्मा मुररिपुरुपेतो रमयितुम्।।

206. पत्नी यस्य सरस्वती वसुमती यस्योपरि स्थायिनी
भ्राता यस्य हली रथश्च कथितो यस्योरगाणामरिः।
शीतिर्यस्य निगूढपादधिपतिर्यस्य प्रिया जाह्नवी
पुत्रो यस्य च मन्मथो विजयते देवः स दामोदरः।।

207. नित्यो हि जन्मरहितोऽपि जगन्मयोऽपि
किञ्चिन्निगूढचरचन्द्रमवाप्यवीतम्।
लक्ष्मीपतिर्यदुकुले किल कोशिकंस-
हंसारनीजलदकाल इवोज्जगाम।।

208. जीयासुः कमलापयोधरतटे काश्मीरलक्ष्मीनिभा
नाभीपङ्कजभाजि रोधसि मिलन्किञ्जल्कलक्ष्मीस्पृशः।
दूरान्नम्रसुरासुरौधमुकुटश्रेण्यां प्रवालश्रियो
दृक्पाताः कमलापतेर्भगवतो निद्राविरामानुणाः।।

209. नाभीसद्मनि पद्मजन्मनि जवाजिन्येऽपि या या मनाक्-
अंसश्रंसिदुकूलवन्ति विकसद्वक्षःस्थला या मयि।
भ्राम्यन्तीमनिवद्धवेषविषमे तस्यावसाने स्फुटं
मुद्रीदृष्टिमुपाध्वमादृतमसध्वंसाय कंसद्विषः।। - त्रिपुरारिपालस्य

210. अविदितमितो वाग्देवी योपवीणनमाधुरी-
तिरस्कृतमितो लक्ष्मीलीलाकटाक्षहठायितम्।
हरतु दुरितं दूरान्मुक्तेन्द्रियान्तरसङ्गति-
श्रवणनयने यातायातो ध्रुवमुरञ्जिन्मनः।। - श्रीजयदेवस्य

211. राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्याञ्चितनीलरत्नमवनीभारावतारान्तकः।
स्वच्छन्दं व्रज सुन्दरीगणमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः।। - श्रीहर्षस्य

212. मुग्धे मुञ्च विषादमत्र वलयित्कन्या गुरुस्त्यज्यतां
सद्भावं भज पुण्डरीकनयनं माल्यानि माम्लातकम्।
लक्ष्मीः शिक्षयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्वाक्छलात्
इत्यन्यप्रतिषेधमात्मनि विधिः शृण्वन् हरिः पातु वः।। -श्रीहर्षस्य

213. पाथोधेः परिमथ्यमानसलिलादर्कोदिता याः श्रियः
सानन्दोल्लसितभ्रुवा कुटिलया दृष्टे च पीताननः।
अज्ञातस्वकरद्वयीविकलितव्यालोलमम्भोरगः
शून्ये बाहुगतागतो निविदधन्नारायणः पातु वः।। - सागरस्य

214. सेयं द्यौस्तदिदं शशाङ्कदिनकृच्चिह्नं नभः साक्षिभिः
तत्पातालतलं न एव गिरयस्तेऽम्भोदयस्ता दिशः।
इत्थं नाभिविनिर्गतेन सशिरः कम्पाद्भुतं वेधसा
यस्यान्तश्च बहिश्च दृष्टमखिलं त्रैलोक्यमव्यात्स वः।। -वाचस्पतेः

215. चक्रे ब्रूहि विभोगदे जयहरे कं भोः समाज्ञापय
भो भो नन्दक जीव पन्नगरिपो किं नाथ भिन्नोऽनया।
को दैत्यः कतमा हिरण्यकशिपुः सत्यं भवद्भ्यः शपे
केनास्तेन नखैरिति प्रवदतः शौरेर्गिरः पान्तु वः।। -गदाधरस्य

216. कुचचिबुककचाग्रे पाणिषु व्यापृतेषु
प्रथमजलधिपुत्रीसङ्गमेनाङ्गधाम्नि।
सपदि निविडनीविग्रन्थनिर्मोचनेच्छो-
श्चतुरधिककराशा शार्ङ्गिणो वः पुनातु।।

217. एका भार्या प्रकृतिमुखरा चञ्चला च द्वितीया
पुत्रो जातः सकलभुवने मन्मथो दुर्निवारः।
इत्थं दुःखस्वगृहचरितं चिन्तयन्नेकचित्तो
ध्यानव्याजादवनतशिरः पातु नारायणो वः॥

218. प्रत्यग्रोन्मेषजिह्माक्षणममितमुखीरत्नदीपप्रभाणा-
मात्मव्यापारगुर्वीजनितजनलवो जृम्भितैः सङ्गिसङ्गैः।
नागान्तं मोक्तुमिच्छोः शयनसुरफणाचित्रबालोपधानं
निद्राच्छेदामिताभ्रा चिरभवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा वः॥ -विशाखदत्तस्य

अथ कृकुः

219. दधिकलशमुखान्तर्न्यस्तहस्तां यशोदां
करकृतगुणमन्थामीक्षमाणः सहायः।
अभिनवदशनाग्रोद्भेदलीलातिरम्य-
स्मितमुखकमलो वः पातु गोपालबालः॥ - हरिकरस्य

220. मातः स्तन्यकरक्षणाय यमुनाकच्छं न गच्छाम्यहं
कस्मात्कृष्ण पिनष्टि पीनकुचयोर्भारि न गोपीजनः।
भ्रूसंज्ञाविविचारितोऽपि सहसा जल्पन्यशोदाग्रतो
गोपीभिः करपद्ममुद्रितमुखो दामोदरः पातु वः॥

221. शम्भो स्वागतमास्यतामित इतो वामे न पद्मोद्भव-
क्रौञ्चारे कुशलं सुखं सुरपते वित्तेश नो दृश्यसे।
इत्थं स्वप्नगतस्थकैटभरिपोः श्रुत्वा यशोदागिरं
किं किं बालक जल्पसीत्यनुचितं शुं धुं कृतं पातु वः॥

अथ कृष्णलीला

222. सोत्तापं जरतीभिरस्फुटरसं बालाभिरुन्मीलित-
श्वासावेश्मषु कामिनीभिरधिकाकृत्तं भुजि स्याज्जनैः।
प्रत्यग्रप्रकटं कृतार्तिकुलटासार्थेन दृष्टं हरे-
रव्याद्वो नवयौवनोत्सवदशानिर्व्याजमुग्धं वपुः।। - पीताम्बरस्य

223. वत्स त्वं नवयौवनोऽसि चपलः प्रायेण गोपस्त्रियः
कंसो भूपतिरब्जनालमृदुलग्रीवो वयं गोदुहः।
सैषानर्थपरम्परेति भगवत्याशङ्किताभिक्रमे
कृष्णेतान्विनयाय नन्दगृहिणीशिक्षोक्तयः पान्तु वः।।

224. राधा पुनातु जगदच्युतदत्तचित्ता
मन्थानिकां विदधती दधिरिक्तपात्रे।
तस्याः स्तनस्तवकचश्चललोचनानि
देवोऽपि दोहदधिया धरणं निरुन्धन्।। - गोवर्धनस्य

225. अंसासक्तकपोलवंशवदनव्यासक्तबिम्बाधर-
द्वन्द्वोदीरितमन्दमन्दपवनप्रारब्धमन्दध्वनिः।
ईषद्वक्रिमलोलहारनिकरप्रत्येकशेकानन-
न्यञ्चच्चञ्चदुदञ्चदङ्गुलिचयस्त्वां पातु राधाधवः।।

226. देवस्याभारवामभ्रममनुभवतस्तत्पतौ लब्धसंज्ञे
दृष्टिं सम्मील्य लीलामृतकिरणमयी मन्दिरान्निर्यियांसोः।
नक्तं संसक्तकृत्यत्वरितविगलितव्यस्तविन्यस्तपाणे-
कंसारेर्द्वारदेशानुसरणसरणिर्व्यग्रभावः पुनातु।।

227. वक्त्रच्छायाच्छुरितजलधौ मन्दिरे द्वारकाया
रुक्मिण्यादिप्रततपुलकोद्भेदमालिङ्गितस्य।
विश्वं पायान्मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्ज-
आभीरस्त्रीनिहितललितध्यानमूर्च्छा मुरारेः।।

228. कोऽयं द्वारि हरिः प्रवाह्युपवनं शाखामृगेणात्र किं
कृष्णोऽयं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णः कथं वानरः।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पासवा-
मित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः।। - गोवर्धनस्य

229. दूरङ्गोकुलतः स्वयं स्वयमनुप्राप्ताहमेकाकिनी
बाला मुञ्चथ मा धनत्वममितो याम्यच्युतालक्षिता।
इत्थं दिक्षु विदक्षु चञ्चलदृशं वै रोदितां गोपिकां
श्लिष्यन्नुच्चकुचोपपीडमचिराद्दृष्टो हरिः पातु वः।। - हरिकरस्य

अथ गोपालः

230. देवस्त्वामेकजन्मा वलयितलगुडीमूर्ध्नि विन्यस्तबाहु-
र्गायन् गोयुद्धगीतीरुपचितसुशिरः प्रावृतः प्राग्रहेण।
दर्पस्फूर्जन्मदोक्षद्वयसमररसावद्धदीर्घानुभावः
क्रीडागोपालमूर्तिर्मुररिपुरवतादात्तगोरक्षणीयः।।

231. पायाद्दग्धपुरः प्ररुढयवसग्रासाभिलाषाकुल-
भ्राम्यद्गोकुलदत्तदृष्टिरभितः पाणौ लसत्प्रग्रहः।
अङ्के न्यस्त नवीनजातधवला वत्सोरजः पिञ्जरो
हे हे हे धरणीत्युदात्तवचनो गापेलरूपो हरिः।।

232. मल्लैः शैलेन्द्रकल्पः शिशुरितरजनैः पुष्पचापोऽङ्गनाभिः
गोपालैः प्राकृतान्मा दिवि कुलिशभृता विश्वरूपोऽप्रमेयः।
क्रुद्धः कंसेन कालो भयचकितदृशा योगिभिर्ध्येयमूर्तिः
दृष्टो रङ्गावतारे हरिरमरगणानन्दकृत्पातु युष्मान्।। - वीरस्य

233. यं लक्ष्मीरुपजीवति स्म भजते यं भारती सम्भ्रमात्
एतस्मै किमदीयतां कथमसावस्मादृशैः स्तूयताम्।
सेव्यो वा कथमेष यस्य शिरसा धत्ते पदार्घ्यं शिवः
तस्मात्कृत्यमजानतो मम मनोवृत्तेः प्रमाणं हरिः।। - धर्मकीर्तेः

अथ मत्स्यावतारः

234. पातु त्रीणि जगन्ति पार्श्वकषणप्रक्षुण्णदिग्मण्डलै-
र्नैकाब्धिस्तिमितोदरः स भगवान् क्रीडाशयः केशवः।
तुङ्गं निष्ठुरपृष्ठलोमखचितब्रह्माण्डखण्डस्थितै-
र्यस्योत्फालकुतूहलेन कथमप्यङ्गेषु जीर्णायितम्।। -अपरिदेवस्य

235. देव्या श्रुतेर्दनुजदुर्यवनैर्विलुप्ता
भूयः समुद्गमविधाववलम्बहेतुः।
एकार्णवीभवदशेषपयोधिमध्य-
द्वीपं वपुर्जयति मीनतनोर्मुरारेः।।

अथ कूर्मः

236. पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालाः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलाच्छलेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति। - हनुमतः

237. अन्योन्यास्फालवेगाद् झटिति च विरहादुच्छलद्भिःपतद्भिः
भूयो भूयः समुद्रैर्मिहिरमतिरसादापिबद्भिर्वमद्भिः।
कोटीभिस्तोयदालीक्षणमिव गगने कल्पयन्तः पुनीया-
दीषन्मात्रावहेलाचलितवसुमतीमण्डलः कूर्मराजः।। - कामदेवस्य

अथ वराहः

238. द्रंष्ट्रापृष्ठेषु सद्यः शिखरिषु न कृतं स्कन्धकाण्डं विनोदः
सिन्धुष्वङ्गावगाहः खरविवरविशत्तोयतुच्छेषु नाप्तः।
प्राप्ताः पातालपङ्के न लुठनरतयः पोतपात्रोपयोगात्
येनोद्धारे धरित्र्याः स जयति विभुताविघ्नितेच्छो वराहः।।
- वराहमिहिरस्य

239. स जयत्यादिवराहो दंष्ट्रानिष्पिष्टगिरिकुलकुहरेषु।
यस्य पुरः सुरकरिणः साङ्कुरभाषोपमा जाताः ।। - बाणस्य

240. अस्ति श्रीस्तनपत्रभङ्गमकरीमुद्राङ्कितोरःस्थली-
देवः सर्वजगत्पतिर्मधुवधूवक्त्राब्जचन्द्रोदयः।
क्रीडाक्रोडतनोस्तवेन्दुविशदे दंष्ट्राङ्कुरे यस्य भू-
र्भाति स्म प्रलयाब्धिपल्लवतलोत्खातैकमुस्ताकृतिः।।
-नारायणस्य

241. वराहः कल्याणं वितरतु स वो यस्य शशभृत्-
कलाकोटीकान्तं क्रममुपलयत्युद्धृतितया।
मिथः सम्मूर्च्छद्भिश्चतुरुदधिकल्लोलपटलै-
रनामृष्टं द्रंष्ट्राशिखरमधिशेते वसुमती।।

242. दुर्वारस्य बलिद्विषो भगवतः पादौ नमस्कुर्महे
यस्यैकार्णवपत्तनोदरभुवि क्रीडा च विष्णोऽपरः।
संक्षोभश्रममूर्च्छतीक्ष्णभृतामीशो मृणालीयति
त्रासाकुञ्चितकण्ठनालचरणः कूर्मः करो रूषति।।

243. अपत्यानि प्रायो नवदशवराही जनयति
धरोद्धारे धुर्यः स पुनरिह निःसीम्नि भरितम्।
पदं यः स्वं कृत्वा फणिपतिफणाचक्रचनये
निमज्जन्तीमन्तर्जलधिवसुधामुत्तलयति।।

244. भ्रमति गिरिराट् पृष्ठे गर्जत्युपश्रुतिसागरो
दहति विततज्वालाजालो जगन्ति विषानलः।
स तु विनिहितग्रीवाकाण्डः कटाहपुटान्तरे-
स्वपिति भगवान् कूर्मो निद्राभरालसलोचनः।। - शरणशङ्कस्य

245. जायन्ते बहवोऽत्र कच्छपकुले किन्तु क्वचित्कच्छपी
नैकाप्येकमसूत नापि च पुनः सूते न वा सोस्मते।।
आकल्पं धरणीधरो वहति यां सङ्कोचखिद्यात्मनो
यः कूर्मस्य दिनानि नाम कतिचिद् विश्रामदानक्षमः।।

अथ नृसिंहः

246. खरतरनखराग्रव्यक्तदुर्वारवैरि-
स्फुटविकटकटाक्षक्षेपदक्षोरुचक्षुः ।
विततविकृतवक्त्रव्यक्तरक्ताक्तहस्तः
स्फुरदुपरि शठो नः पातु दृष्टो नृसिंहः ।।

247. जयन्ति निर्दारितदैत्यवक्षसो
नृसिंहरूपस्य हरेर्नखाङ्कुराः।
विलोक्य येषां चरितं सुरारयः
प्रियानखेभ्योऽपि रतेषु बिभ्यति।।

248. अव्यात्तदत्र नखनिर्दलितासुरेन्द्र-
शोणान्तनालसकलप्रगुणत्पताकम्।
बाहुद्धयं कपटकेशरिणो मुरारे-
र्निर्व्याजनाकपुरतोरणलोहिताभम्।।

249. दृप्यद्दानववैरिगुग्गुलुभरद्राग्दारणादोहदा
माद्यद्दिग्द्विरदप्रभित्तकरटव्यामृष्टदानाम्भसः।
हेरम्बेण ससम्भ्रमं पुरभिदः पृष्ठे निलीय श्रुताः
क्रीडाकेसरिणः प्रतिध्वनिघनाः क्रीडारवाः पान्तु वः।।

250. नखमुखविलिखितदितितनयोरः -
परिषददसृगरुणीकृतगात्रः।
हिमधरगिरिरिव गैरिकयुक्तो
नरहरिरहरहरवतु स युष्मान्।। - क्षोणीकस्य

अथ वामनः

251. अपसर पृथिवि मुद्राः संवृरावतां मुनिभूधरा नमत।
वामनभूहरिरघ्नतु ते जगतीकलभूः स वः पायात्।।
-भवानन्दस्य

252. किं क्षत्रं किन्नु रत्नं तिलकयुततथा कुण्डलं कौस्तुभं वा
किं चक्रं वारिजं वाप्य[1]मरयुवतिभिर्यद्बलिद्वेषिदेहे।
ऊर्ध्वं मौलौ ललाटे श्रवसि हृदि करे नाभिदेशे च दृष्टं
पायात्तद्वोऽर्कबिम्बं स च दनुजरिपुर्वर्धमानक्रमेण।। – हनुमतः

253. ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः
क्षौणीनौकूपदण्डः क्षरदमरधुनीपट्टिकासेतुदण्डः।
ज्योतिश्चक्रावदण्डस्त्रिभुवनविनयस्तम्भदण्डाङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः।। – दण्डिनः

254. पायात्कायविवर्णमेखरमुरः शीर्णोपवीताञ्जसं
हस्ताग्रस्फुटदक्षरं निजयति त्रैविक्रमं तद्वपुः।
यन्मध्ये स्फुरितैर्धनैरुरसि यच्छत्रद्वियद् गङ्गया
नक्षत्रैः करचुम्बिभिः पुनरभूद्देवस्य भूषाविधिः।। –अमोघस्य

255. दाता बलिः प्रार्थयिता च विष्णु-
दानं मही वाजिमखस्य काले।
नमस्तु तस्मै भवितव्यतायै
यस्याः फलं बन्धनमेव जातम्।।

अथ परशुरामः

256. दिग्मातङ्गघटाविभक्तचतुराघाटा मही साध्यते
सिद्धा साऽपि वदन्त एव हि च यं रोमाञ्चिताः पश्यतः।
विप्राय प्रतिपाद्यते किमपरं रामाय तस्मै नमो
यस्मादाविर्भूत्कथा श्रुतमिदं यत्रैव चास्तङ्गतम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'वेलम'

257. शौर्यं शत्रुकुलक्षयावधि यशो ब्रह्माण्डखण्डावधि
त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदातावधिः।
वीर्यं तत्तुलयद्विपं प्रति[1] ननु व्यक्तं हि तत्कर्मभिः
सत्यं ब्रह्म तपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम्।।

258. हा तातेति न जल्पितं न रुदितं नृ स्वीकृतं तद्बलं
नस्तानन्तनिरीक्षितः परिजनः पित्रे न दत्तं जलम्।
यावन्नक्रकचाभिघातविगलद्धारामरीणां मसृग्-
गण्डूषैर्घनघोरघर्घररवा सम्प्रीडिता फेरवाः।। – केशवस्य

अथ श्रीरामः

259. कूजन् कुञ्जे किमपि करणं कन्दरे कान्दिशीकः
सानौ साम्रप्रणिहितमनाः कानने ध्याननेत्रः।
गच्छन् मूर्च्छाकुसुमशयने वीतरागस्तडागे
जीयाज्जायाविरहविधुरामग्रणी रामभद्रः।। – योगेश्वरस्य

260. उक्षिप्तं सह कौशिकस्य पुलकैः तुल्यं सुखिन्नामितं
भूपानां जनकस्य शंसयधिया सार्धं समास्फालितम्।
वैदेहीमनसा समञ्च सहसा कृष्टं ततो भार्गव-
प्रौढाहङ्कृतिकन्दलेन मनसा तद्भग्नमैशं धनुः।।

261. एकस्मिन् विनिपातिते विशिरसि क्रोधोपशान्तिः कुतः
स्याद्वा किन्नु तया स्वमूर्ध्वपतनं दृष्टं न यत्रारिणा।
एतन्मूर्धवहुत्रतो विधिवशात्त्वं नो मया लप्स्यसे
छिन्नं छिन्नमवेक्ष्य राक्षसपते यस्मादसून्त्यक्ष्यसि।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'पठि'

262. तात त्वं निजतेजसैव गमितः स्वर्गं ननु स्वस्थिते-
कूर्मस्ते किमिमां वधूहृदि कथां तन्नान्तिकं मा कृथाः।
रामोऽहं यदि तद्दिनैः कतिपयैः व्रीडानमत्कन्धरः
सार्धं बन्धुजनेन सेन्द्रविजयी वक्ता स्वयं रावणः।।

263. साऽयोध्यानगरी तदाश्रमपदं ते यज्ञभूपाः स्म ते
तेऽमी पौरवधूविलाससुहृदस्तीरे लतामण्डपाः।
सा चेयं सरयूरघूद्वहजलक्रीडाकथासाक्षिणी
सर्वं पूर्ववदस्ति नास्ति स परं रामावतारो हरिः।।

हलिरामः

264. आघूर्णद्वपुषः स्खलन्मृदुगिरः किं चित्रसद्वाससो
रेवत्यं मनिषण्डनिःसहभुजस्याताम्रनेत्रद्युतिः।
श्वासामोदमदान्धखण्डदकुलव्यादष्टकण्ठस्रजः।
पायाद्वः परिमन्थराणि हलिनो मत्तस्य यातानि वः।। -माधरखञ्जनस्य

265. भं भ्रमति कं मही लललम्बतेश्चन्द्रमाः।
कृ कृष्ण व व वदाद्भुत ह ह हसन्ति किं कृल्लयः।
सिसीधू मुमुमुञ्च मे व व वक्तुमित्यादिकं
मदस्खलन् मालपन् हलधरः श्रियं क्रियात्।।[1] -पुरुषोत्तमदेवस्य

266. मुग्धश्यामलकान्तलिप्तवियतो वल्गद्बलाका घना
वाताः शीकरिणः पयोदसुहृदा सानन्दकेकाः कलाः।
कामं सन्तु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे
वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवि धीरा भव।।

1. अयं श्लोकः मूलपाण्डुलिपौ इत्थं प्राप्यते। परिवर्तनस्य अवकाशो न विद्यते।

267. औत्पातिकं तदिह देव गवेषणीयं
नारायणो यदि पतेदथवा सुभद्रा।
कादम्बरीरसविघूर्णितलोचनस्य
युक्तं हि लाङ्गलमतः पतनं पृथिव्याम्।। - विद्यायाः

बुद्धस्य

268. सर्वज्ञस्य पदाम्बुजं त्रिजगदानन्दाय विन्दामहे
यस्मिन् विश्वजितः स्मरस्य न शराः यञ्चाप्यकिञ्चित्कलाः।
निश्चित्य प्रसभं मनोभव इति स्फीतं गृहीता ततो-
येनालौकिकलोकलोचनसुधासेकाय कायप्रियः।।

269. अकृत्वा भ्रूभङ्गं कुपितभुजगाभोगविषमं,
स्फुरत्खड्गज्योत्स्नाकलयितमनङ्गस्य च भुजम्।
जितो येनायत्नात्कुसुमधनुरव्याहतशरः,
स एवैकश्शूरो जयति जितशत्रुर्दशबलः।। -भाष्यकारस्य

कल्की

270. भ्रान्त्वा महीं ततस्तत्तुरगाधिरूढो
वेदद्विषो विदलयन् वलितायिलेखाः।
देवो निवर्तितकलाकृतमार्गदर्शी
कल्कं स ते हरतु कल्किकुले भविष्यम्।। - भवानन्दस्य

271. एकस्मादेव लेखात्खुरदलितरणाक्षौणिरङ्गास्तुरङ्गाः
किं वासैर्मेघलेखानवललितरुचेरन्यतो निर्व्यपेक्षा।
स्वेच्छाविच्छिन्नवर्णाश्रमचरितसमुच्छृङ्खलाचारवन्तो
म्लेच्छामुत्सारयन्तस्तदवतु च शिवं केलयः कल्किमूर्तेः।।

272. वनाजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामाः सकृपोकृपः।
कल्याणं वो वितन्वतामचता हरेर्दर्शः।।[1]

मत्स्यः

273. मत्स्यपुच्छाभिघातेन चूर्णीकृतमहोदधिः।
अपर्याप्तजलक्रीडारसो दिशतु वः श्रियम्।।

नृसिंहः

275. दैत्योत्पातेन्दुलेखाद्वितयमिव नभो मण्डलोद्भासि भीमं
दृष्ट्वा चक्रं यदीयं दितिसुतनगरीवासिभिर्भीतिभीतैः।
अप्यन्तः कृष्णभावं पृथुनयत युगे गाढरोषादनान्तं
दृष्टं सच्छिद्रभानुद्वयमिव जगतां सोऽस्तु भूत्यै नृसिंहः।। -धर्मपालस्य

275. सोमार्धायितनिः पिधानदशनः सन्ध्यायितान्तर्मुखो
बालार्कार्चितलोचनः सुरधनुर्लेखायितभ्रूर्लतः।
अन्तर्नादगभीरपीवरगतत्वक्कूपनिर्यत्तडित्-
तारस्फारसटावरुद्धगगनः पायान्नृसिंहो जगत्।।

276. वल्गद्वज्रनखाग्रभिन्नडमरूव्याजारिवक्षःस्थलः
प्रच्छप्रस्फुटदस्थिपञ्जरमरुत्कारप्रकृष्टोत्करः।
दंष्ट्रोद्घाटितकोटिकोटरतटप्रभ्रष्टजिह्वा ततः
पायाद्वो नरके शरीस्फुटफटाद्वीपं प्रकृष्टो विराट्।।

277. भित्वा वक्षो हि वक्षः कुलिशदृढतराघातविच्छिन्नहारं
सन्ध्याताम्रेन्दुलेखाकुटिलनखशिखासक्तमांसोपलेखः।
यत्नादाकृष्य भानोर्घनरुधिरवशासान्द्रदग्धाङ्गुलीकः
पाणिः सव्येतरोऽसौ जयति विजयिनः शार्ङ्गिणः सिंहमूर्तिः।।

-कविशेखरस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ इत्थमेव पाठः। परिवर्तनं न सम्भवम् ।

278. एतद्भिन्नेन्दुनीलद्युतिविपुलशिलावेदिकाकारकान्तं
वक्षो दैत्याधिपस्य श्रुतरुधिरजलच्छालितोच्छ्वासकूटम्।
यत्रैताः सिंहमूर्तेर्नखकिरणशिखाविभ्रमोद्भूतभासः
सन्ध्यारागानुविद्धे जलद इव रथिर्विद्युतो विस्फुरन्ति।।

श्रीरामः

279. निस्पन्दं गिरिकन्दरेषु विपिनच्छायासु मूर्च्छालसं
सास्त्रं पञ्चवटीतटीषु तटिनीतीरेषु तीव्रव्यथम्।
काकुत्स्थं तदवस्थमातिविधुरं दृष्ट्वा तडिद्व्याजतो
मन्ये मन्युतरेरभेदिहृदयं गाढं घनानामपि।।

280. अनुदिनमनुशैलं तामनालोक्य सीतां
प्रतिदिनमतिदीनं वीक्ष्य रामं विरामम्।
गिरिरशनिसहोऽयं यस्तदा नो द्विधाऽभूत्
क्षितिरपि न विदीर्णा साऽपि सर्वं सहैव।।

वामनः

281. लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुङ्कुमारुणितो हरेः।
वलिरेव स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः।।

बलभद्रः

282. भ्रमति धरणिचक्रं नाकं नभः स्थलयन्त्रणात्
प्रभरति न मे गात्रं किञ्चित् क्रियासु विघूर्णितम्।
जलधिसलिलमग्नं विश्वं विलोकय रे
त्रिजगदवताद् जल्पत्वैवं हली मदविह्वलः।।

कल्की

283. तीर्थाभा शतमस्ति किन्तु फलति श्रद्धा फलादित्यसौ
धारातीर्थमपूर्वमेव कलयत् कल्की शिवायास्तु वः।
यत्प्राप्यारिवदेवतेदकधियः श्रद्धातिरस्कारिणः
शक्रस्यातिथयो भवन्ति भवनेष्वेलम्बिनोऽवन्तु वः।।

284. कल्की सकल्पसकमस्य भुवस्तुरङ्ग-
वल्गान् खुरग्रहविचूर्णितभूधरौघः।
उत्तारयिष्यति वृषं कलिपङ्कमग्र-
मस्यन्दि वेद चतुरङ्घ्रिमतां कुलं यः।। -श्रीवसन्तदेवस्य

श्रीरामः

285. कूजन् कुञ्जे किमपि करणं कानने ध्याननेत्रः
स्थाणौ शून्यः प्रणिहितमनाःकन्दरे मन्द-मन्दः।
गच्छन् मूर्च्छां कुसुमशयने वीतरागस्तडागे
जीयाज्जोषाविरहविदुषां ग्रामणीरामभद्रः ।।

286. ऋषकमठघृष्टिकेशरिवामनरामत्रयबुद्धकल्की तथा।
प्रकटितसत्त्वजाकारो दशावतारो हरिर्जयति ।।

ततो लक्ष्मीव्रज्या

287. आख्याते हसितं पितामह इति त्रस्तं कपालीति च
व्यावृत्तं हरिरित्ययं दहन इत्याविष्कृता भीरुता ।
पौलोमीपतिरित्यशंसित[1]-मिथव्रीडाविनम्रश्रिया,
पायाद्वः पुरुषोत्तमोऽयमिति च न्यस्तं स पुष्पाञ्जलिः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'समित'

288. जयति महोदधिमध्ये मुररिपुपरिरम्भसम्भृता लक्ष्मीः।
सत्त्वरसत्रयसरभससपुलसोत्कम्पसस्वेदा।।

289. लक्ष्मीरस्तु विभूतये तव चिरं चाम्पेयपुष्पच्छविः
विष्णोः कृष्णघनानुकारि निहृदि प्रौढान्धवन्धस्थिरा।
क्रीडाकोपपराङ्मुखी चिरमसौ भास्वत्कृपावर्तकं
स्तम्भारोपितचारुकाञ्चनमयी पुत्रीव या राजते।। – कस्यचित्

290. सम्पूर्णा पुनरभ्युदेति किरणैरिन्दुस्ततो दन्तिनः
कुम्भद्वन्द्वभिदं पुनः सुरतरोरग्रे लसन्मञ्जरी।
इत्थं यद्वदनस्तनद्वयचलद्रोमावलीसु भ्रमः
क्षीराब्धेर्मथनेऽभवद्दिविपदा लक्ष्मीवसारस्तवः।।

291. लब्धं जन्म पयोनिधौ स्थितिरपि ब्रह्मासनं श्रेयसी
यस्याः कंसकठोरदर्पदलनस्त्रैलोक्यनाथः पतिः।
सा श्रीर्नीचजने विवेकरहिते बध्नाति पुष्टिं परां
प्राणार्धे नलिनीदलाम्बुतरला स्त्रीणां मतिश्चञ्चला।।

292. यस्याः प्रसादपरमाणुरसायनेन
कल्पान्तरं सुकविकीर्तिशरीरमस्ति।
या कामधेनुरिव कामशतानि देवी
दुग्धं प्रयच्छति नमामि सरस्वतीं ताम्।।

293. तस्या जीवनिरस्तु मातरधमा जीवस्य मा जीवतो
भूयाद्वा जननं किमम्ब जनिता जन्तोर्व्यथा जन्मनः।
यस्त्वामेव न वन्दते न यजते नोपैति नालोकते
नाम स्तौति न मन्यते न मनुते नाध्येति न ध्यायति।।

294. क्वचिदपि जायोच्छेदि क्वचित्प्रचुराचिर-
द्युतिवितरच्चमत्कारि क्वापि क्षपाकरवन्मृदु।।
शिखिवटवृक्षं क्वापि प्रदीपवदुज्ज्वलं
किमपि ज्योतिः सारस्वतं तदुपास्महे।।

295. कोपस्तेज इति ग्रहस्थितिरिति क्रीडेति दुश्चेष्टितं
माया च व्यवसायकौशलमिति स्वच्छं तदित्यज्ञता।
दौर्जन्यस्फुटवादितेति धनिनामग्रे च वैर्यद्वशा-
द्दोषोऽपि व्यपदिश्यते गुणतया तस्यै नमोऽस्तु श्रियै।।

295. हरिनिद्रामन्थनफणिपतिस्फूत्कारवादिते शङ्खे।
प्रातरिति गन्तुकामा कमलद्यूता सैन्धवी जयति।।

297. उत्तिष्ठन्त्या रतान्तेऽमरसुरगपतौ पापिनैकेन कृत्वा
धूत्वा चान्येन वासो विगलितकवरीभारमङ्गं वहन्त्याः।
भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसमसद्बाहुलक्ष्म्याः पुनातु।।

–श्रीव्यासदेवस्य

298. सानन्दं त्रिदशैः सविस्मयमरिग्रस्तैः सुरद्वेषिभिः
साश्चर्यं सुरसुन्दरीपरिजनैः सेव्यञ्च रम्भाजनैः।
साकूतञ्च सकौतुकञ्च समनो हृद्यञ्च कंसद्विषा
दृष्टा दुग्धपयोनिधेः प्रमथने लक्ष्मीः शिवायास्तु वः।।

–शरणदेवस्य

299. आनम्रा परमेष्ठिवक्त्रविपिने पीयूषनिःस्यन्दिनी
व्रीडोल्लासचमत्कृता स्मरहरे देवाधिपे लज्जिता।
देवे स्वप्नवरप्रसादमुदिता क्षीरोदशय्या मुदे
स्निग्धापाङ्गतरङ्गितार्धसुभगा दृष्टिः श्रियः पातु वः।।

–हरिकरस्य

300. वृत्ते शार्ङ्गविवाहमङ्गलविधौ लब्धेऽपि दैत्योद्वहः
सौहार्देऽपि भवेश्मनिःस्मृतिशतैः श्रीरुत्सुका पातु वः।
यामाश्वासयतीव सौदरतया प्रत्यग्रबिम्बग्रह–
व्याजादङ्कगतामनङ्कुशनिजस्नेहो मुहुः कौस्तुभः।। –शरणदेवस्य

लक्ष्म्या रूपालम्भः

301. चिरतरनीरनिवासा शिक्षितमनया समस्तमपूरितम्।
तेनायाति च याति च भवति च नीचानुगा लक्ष्मीः।।

302. अस्मान् मा भज कालकूटभगिनि स्वप्नेऽपि पद्मालये
व्याधीभूय कदर्थयन्ति विषमा मातर्विकारास्तव।
यच्चक्षुर्न निरीक्षते स्वविषयं गृह्णाति नैव श्रुतिः
प्राणा एव वरं प्रयान्ति न पुनर्निर्यान्ति वाचो बहिः।।

–पञ्चाननस्य

303. रत्नाकरस्तव पिता स्थितिरम्बुजेषु
भ्राता सुधारसमयः पतिरादिदेवः।
केनापरेण कमले वद शिक्षितासि
सारङ्गशृङ्गकुटिलानि विचेष्टितानि।। – शूलपाणेः

304. कस्मैचित्कपठाय कैटभरिपुः पीठे च दीर्घालयां
देवि त्वामभिवाद्य कुप्यसि न चेत्किञ्चित्तदाचक्ष्यते।
यत्ते मन्दिरमम्बुजन्म तदिदं विद्यागृहं यच्च ते
नीचानीचतरोपसर्पणमपायैतत्किमाश्चर्यकम्।।

– मुरारेः

अथ सरस्वतीव्रज्या

305. यत्पाण्डित्यमुदञ्चति क्रतुभुजां गोष्ठीषु वाचस्पते-
र्यद् वेदेषु पितामहस्य कवितापाण्डित्यमुन्मीलति।
यद्गान्धर्वपुरप्रगीतिलहरीलावण्यमुज्जृम्भते
तद्यस्याः किमदेवरीक्षितमसौ वाग्देवता तुष्यतु।। –पुरुषोत्तमदेवस्य

306. वीणावाद्यविनोदितस्त्रिजगतां लेखो यया माधवो
वागीशोऽपि सुभाषिताक्षरपदं यां स्तौति वाग्देवता।
यामाराध्य नितान्तमूढमतिभिः सर्वज्ञकल्पायितं
वन्दे तां शरदिन्दुधामधवलां देवीमभीष्टप्रदाम्।। –वसुदत्तस्य

307. रोचिष्णुर्विष्णुर्दयिता शरदिन्दुकलोज्ज्वला।
तमस्तुदतुलं तूर्णं पूर्णनक्षत्रमालिनी।।

308. सरस्वतीचतुर्वर्गफलश्रीकुसुमावलिः।
जयत्यज्ञानतिमिरक्लेशविध्वंसकौमुदी।।

309. आदित्यादपि नित्यदीप्तममृतं पश्यन्ति चन्द्रादपि
त्रैलोक्याभरणं मणेरपि तमः काशङ्कताशादपि।
सूक्ष्मालोकिविलोचनादपि परब्रह्मप्रकाशादपि
शान्तामोदकृते नमोऽस्तु जगतस्तोषाय सारस्वतम्।। –बलदेवस्य

ततो गरुडव्रज्या

310. तादृक्पादनखाङ्कुराग्रवलिशा तुण्डेन सिन्धूदरे
विख्यातौ गजकच्छपौ तदशनायागत्य शाखान्तरः।
भग्नां ताञ्च विलोक्यते न मुनिभिस्तैर्वालिखिन्नैः समं
यो बभ्राम जगत्रयीरवतु वः सोऽयं शकुन्तेश्वरः।।

311. अलमभिमुखभोगै रत्नं भूमिभिः
दृशोरनमविरचनैः कुञ्जद्वारैर्घनविषवृष्टिभिः।
किमिव भुजगाश्वकोपातवेगैरमीभि-
रमुद्रितैरनुभवादिभिः शेषस्य ते वयं स्तुतिपाठकाः।।

–गदाधरस्य

312. मूर्धा दधाति वसुधामयनित्यनन्दा-
निद्रेयमिन्दुवदने भुजगाधिपस्य।
कुक्षौ निवेश्य भुवनानि यदङ्गभित्तौ
विश्वम्भरः स्वपिति संश्रितयोगनिद्रः।।

313. शेषः सोऽयं धनतरसुधापङ्कशैवालराशौ
क्रोडे तिष्ठन्तव विषलताकाण्डगौराङ्गयष्टिः।
यस्य स्फारस्फुरदुरुफलामण्डलीपुण्डरीक-
प्रान्ताशक्ता वहति मधुपी विभ्रमं भूतधात्री।।

314. बहवः फणिनः सन्ति भेकभक्षकदक्षकाः।
शेषोऽयं धरणीं धत्ते प्रसूनमिव लीलया।।

अथ हरिहरव्रज्या

315. स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगात्
तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः।
भवति गिरिसुतायाः सार्धमर्धेन्दुहित्रा
सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः।।

–योगेश्वरस्य

316. लोले ब्रूहि कपालिकामिनि पिता कस्ते निधिः पाथसां
कः प्रत्येति जलादपेत्य जननं प्रत्येति यः प्रस्तरात्।
इत्युर्वीधरराजसिन्धुसुतयोराकर्ण्य वाक्चातुरीं
सस्मेरस्य हरेर्हरस्य च दृशो विघ्नं निविघ्नन्तु वः।।

–महेश्वरस्य

317. एकत्र नीलनलिनीरुहराजकान्ति
मेऽन्यत्र चन्द्रकिरणप्रकरावदातम्।
शृङ्गारहास्यरसयोरिव सन्निधानं
देहैक्यमस्तु हरिशङ्करयोर्मुदे वः।। – उमापतेः

318. सम्भोगस्पृशया नु मन्मथपुनर्जन्मास्पदं भूर्भुवः
स्वः पायात्पुरुषोऽत्र नक्रतुभिदोरर्धार्धपूर्णं वपुः।
यल्लक्ष्मीगिरिजाकटाक्षकुटिलक्रीडाहठाकृष्टिभिः
स्यादेव त्रुटितं गुणद्वयदृढं स्यूतं न चेदन्तरा।। – शङ्करस्य

319. पुरमथनं पुरमथनं फणधरतल्पं फणाधरातल्पम्।
मारमणमुमारमणं वन्दे बाणारिमसमबाणारिम्।।

ब्रह्मव्रज्या

320. कृतकान्तिकेलकुतुकश्रीशीतनिश्वाससेकनिद्राणः।
घोरितवितितानिरुतो माभिसरोजविधिर्जयति।। – गङ्गादत्तस्य

आदित्यव्रज्या

321. तुङ्गोदयाद्रिभुजगेन्द्रफणोपलाय
व्योमेन्द्रनीलतरुकाञ्चनपल्लवाय।
संसारसागरसमुक्तभियोगसानु-
प्रस्थानपूर्णकलशाय नमः सवित्रे।।

– वराहमिहिरस्य

322. शुकतुण्डच्छविसवितुरचण्डरुचः पुण्डरीकवनबन्धोः।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः।।

–विद्यायाः

323. अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीना-
मुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम्।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबध्यं विभिन्दन्
कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रास्तमांसि।। – तस्या एव

324. रक्ताम्बरः कनकशैलविशालवैद्य-
नित्यं प्रदक्षिणपरिक्रमणक्रमज्ञः।
दिङ्मण्डलीः प्रकटयन् जगदेकबन्धु-
र्भास्वान्नुतोदयतु वः प्रकटोदयश्रीः।।

–कविशेखरस्य

325. करोतु वो मङ्गलमद्रिमस्तक-
स्थलस्थितिन्यस्तगमस्तिविस्तरः।
स्फुरत्सुवृन्तोत्थितरक्तचन्दन-
भ्रमद्रवच्छेदनिभः प्रभाकरः।। - वाचस्पतेः

326. जीयादेकफलं नभस्तलतरोरभ्रं सिसिन्दूरिणी
मुद्राकैरवकाननस्य तिमिरस्तेयाय सार्धं दिवम्।
मन्दारस्तव कान्त वीक्ष्य कवरीं गौरीपतेः काम्पिल-
काम्पिल्लच्छदपाटलाब्जविकुलच्क्षत्रं रघूणां रविः।।

327. अनुतेजः कुमुदं हरिणानुगतं मण्डलं धत्ते।
यो जनतापापहारो विधुरिव सविता स वः पातु वः।।

328. सुधाधाम्ना कान्तिं ग्लपयति विलुप्यत्युडुगणं
किरत्युष्णं तेजः कुमुदवनलक्ष्मीं शमयतु।
रविर्जानात्येव प्रतिदिवसमस्ताद्रिपतनं
तथाऽपि प्रत्यग्राभ्युदयतरलः किं न कुरुते।।

329. विश्वेषां दधता प्रबोधपदवीं येनात्मसंज्ञा कृतश-
चैषामम्बुरुहां श्रियः स भगवान्नुष्णोऽपि सेव्यो रविः।
शीतेनापि किमिन्दुना यदुदये तस्मै वयद्बान्धवे
निर्द्वन्द्वं कुमुदैर्विदन्तु सहसा कृत्स्नं जगद् घूर्णते।। - उमापात्रस्य

330. जगन्नेत्रश्रेणीतिमिरहरसिद्धाञ्जनसखा
मयूखा यस्यैते त्रिभुवनमनन्धं विदधति।
सखे ! कर्मालङ्घ्यं कलय किमपीदं तनुभृता-
मुलूकानामन्धं करणकिरणाः सोऽम्बरमणिः।। - रविगुप्तस्य

331. करं प्रसार्य सूर्येण दक्षिणायनलम्बिना।
न केवलमनेनास्मद्दिवसोऽपि लघूकृतः।।

332. अन्यस्माल्लब्धो यः क्षुद्रः प्रायेण दुःसहो भवति।
रविरपि न दहति तादृक् यादृग् लब्धो न बालुकानिकरः।।

333. यस्याधोऽधस्तथोपर्युपरि निरवधिभ्राम्यतो विश्वनाभ-
विश्वैरावृत्तलीनां रचयति वयतो मण्डलं तिग्मधाम्नः।
सोऽव्यादुत्तप्तकार्तस्वरसकलसमस्पर्धिभिर्धामदण्डै-
रुद्दण्डैः प्रापयन् वः प्रचुरतमतमः स्तोममस्तं समस्तम्।।

334. यस्मिन्नुदयति विकसति कमलमिवास्तं प्रयाति सङ्कुचति।
सचराचरं स जयति किरणान् धत्ते नु यः सविता।।

इति प्रसन्नसाहित्यरत्नाकरव्रज्यायां द्वितीयोल्लासः

* * * *

अथ चन्द्रव्रज्या

335. प्रथममरुणच्छायस्तावन्नतः कनकप्रभः
तदनु विरहोद्भ्राम्यत्तन्वीकपोलद्युतिः।
प्रभवति ततो ध्वान्तध्वंसक्षमः क्षणदामुखे
सरसि विसनीकन्दाच्छेदच्छविर्मृगलाञ्छनः।। - चित्रपस्य

336. अमृतमयमनङ्गक्ष्मारुहस्यालबालं
मृतदिवसकपालं कालकापालिकस्य।
जयति कमलकेतोः शावचक्रं शराणा-
ममरपुरपुरन्ध्रीदर्पणं श्वेतभानुः।। - त्रिपुरारेः

337. कामाम्बष्ठोमयद्वापुरमथनजटाचक्रकौमारवर्हं
प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहवने शर्वरी सार्वभौमः।
देवो जागर्ति भानोर्भुवनभटभृतः स्कन्धविश्रामबन्धुः
शृङ्गाराद्वैतवादी शमितकुमुदिनीमौनमुद्रो मृगाङ्कः।। - वसुकल्पस्य

338. व्यामाम्भोनिपुराडरीकममृतप्राधारधारागृहं
शृङ्गारक्रमपुष्पमीश्वरशिखालङ्कारमुक्तामणिः।
कालाकारतमोऽभिभूतकुमुदग्रासाय मृत्युञ्जयो
जीयान्मन्मथराजपौष्णिकमहाशान्तिद्विजश्चन्द्रमाः।। -पञ्चाननस्य

330. श्यामायाः करजक्षतं रतिपतेर्जैत्रं धनुर्धन्धकी-
हृत्कम्बुक्रकवश्च कोरकुररीसौहृत्यबीजाङ्कुरः।
चौरग्रामगजाङ्कुशः परिचयन्मन्दाकिनीरोहितो
ध्वान्तेऽस्मत्तरणैकनौरुदयते बालः सुधादीधितिः।। -वाचस्पतेः

340. यातस्यास्तमनन्तरं दिनकृतो रोगेण रोगारुणः
स्वैरं शीतकरः करङ्कमलिनीमालिङ्गितुं योजयन्।।
शीतस्पर्शमवेत्य सान्द्रमनया रुद्धे मुखाम्भोरुहि
हास्येनेव कुमुद्वतीदयितया वैलक्ष्यपाण्डूकृतः।। – वररुचेः

341. रक्तः करः किरति पाण्डुपयोधराग्रे
चन्द्रो विधूय तिमिरावरणं निशायाः।
दिग्योषितस्तदवलोक्य कुतूहलिन्या
व्रीडाश्च सस्मितमिवापसरन्ति दूरम्।।

342. य एष प्रत्यूषे रविकुररमालोक्य पुरतो
नमः पारावारं न्यविशत भयादिन्दुशफरः।
स सायं निश्शङ्कं तरलतरतारार्भकशतै-
श्चरन् मन्दं मन्दं तिमिरजलनालादुदयते।। – वैद्यजीवस्य

343. भूयस्तराणि यदसूनितमस्विनीषु
ज्योत्स्नासु च प्रविरलानि ततः प्रतीमः।
सन्ध्यानलेन भृशमम्बरमूषिकाया-
मावर्तितैरुडुभिरेव कृतोऽयमिन्दुः।। – मुरारेः

344. मृगेन्द्रेण च चंन्द्रेण मयूखैर्नखरैरिव।
पातितध्वान्तमातङ्गमुक्ताभा भाति तारका।।

345. विगलितदलतुङ्गमाप्तानङ्गाकृतिरम्बरचुम्बितो रुचिभ्यः।
अननुमतपतिप्रसादवादे मृगदृशरोचकमोचकः सुधांशुः।।
– वङ्गसेनस्य

346. कलारतः कलाकाशैः कालकैवर्तकर्षिता।
यामिनी यमुनातीरे राजती भाति नौरिव।। - राजशेखरस्य

347. शृङ्गारे सूत्रधारः कुसुमशरमुनेराश्रमे ब्रह्मचारी
नारीणामादिदेवः त्रिभुवनमहितो रागराज्ये पुरोधा।
ज्योत्स्नाशस्त्रं दधानः पुरमथनजटाजूटकोटीशयालु-
र्देवः क्षीरोदजन्मा जयति कुमुदिनीकामुकः श्वेतभानुः।।

348. सर्वस्वं गगनश्रियो रतिपतेर्विश्वासपात्रं सखा
वास्तव्यो हरमूर्धनि त्रिभुवनध्वान्तौघमुष्टिन्धयः।
क्षीराम्भोधिरसायनं कमलिनी निद्रौषधीयन्द्रवो
देवः कान्तिमहोदयो विजयते दाक्षायणीनां पतिः।। -वसुकल्पस्यैतौ

349. एतत्तर्कय कैरवक्लम हरेः शृङ्गारदीक्षागुरौ
दिक्कान्तामुकुले चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि।
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रद्राविस्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः। - राजशेखरस्य

350. एषा किं कथिता पिशाचदयिता दंष्ट्रेव तृष्णामनः
कल्पं सम्प्रति नस्तनोति शशिनः क्षीणास्य दीना तनुः।
यत्प्रान्तेषु विभान्ति चर्चितविनिष्ठूतो ध्वनीनाङ्गिना
वक्षः पीठकठोरकीकशकरश्रेणीश्रियस्तारकाः।।

351. मन्दं मन्दमुदयन्नम्बरादिन्दुमिन्दुवदने विलोचय।
नाकनायकनिकायकामिनीकेलियानकलनैकभाजनम्।।
- अभिनन्दनस्य

352. सम्बन्धी यदुभूभुजां मनसिजव्यापारदीक्षागुरु-
गौराङ्गीवदनोपमापरिचितस्तारावधूवल्लभः।
सद्यो मार्जितदक्षिणाभ्यतरुणीदन्तावदम्बाम्बुधि-
श्चन्द्रः सुन्दरि दृश्यतामयमितश्चण्डीशचूडामणिः।।

353. अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे सीमन्तिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मात एष झटिति क्रोधादिवालोहितः।
उद्यद्दूरतरः प्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्-
स्तोमत्कैरवकोघनिस्सरदनिश्रेणीकृपाणं शशी।। -विद्यायाः

354. पिनष्टवेतरं रागैरर्णवः फेनचन्दनम्।
तदादाय करैरिन्दुर्लिह्यतीव दिगङ्गनाः।। -कालिदासस्य

355. वन्द्यः क्षोणिभुजां कुलस्य कुलटा सङ्केतयात्रा पुरो
वर्तन्ते सघनस्तनीषु च तमस्यास्यापि जन्माष्टमः।
शृङ्गारस्य रसायनं जनयति प्राची प्रसन्नस्मितां
दुर्दैवं कमलस्य पान्थयुवती प्रौढाक्षिपूर्णं शशी। -सागरस्य

356. एकः सम्प्रति पाकशासनपुरीपीयूषवद्रीवपुः
पानस्यातमसासमौ कुमुदिनीचैतन्यचिन्तामणिः।
मानोच्चाटनकार्मणं मृगदृशां देवो नभोऽम्भोनिधौ
पश्चादञ्चति पञ्चबाणवणिजो यात्रावहित्रं शशी।। -शूलपाणेः

357. मनोभवस्य स्थितिरर्धदग्धैः सितासितः किं घटितोऽयमिन्दुः।
स्मरारिणा मूर्ध्नि धृतोऽपि यस्मादुत्प्रेक्षते तस्य न पक्षपातम्।।
- राजशेखरस्य

358. नवेन्दुकर्तरीखण्डमुण्डितोरुकशेरुकम्।
विक्रीणीते निशा स्पृश्या प्रसार्याकाशदण्डकम्।।

359. मुग्धे पार्वणचन्द्रमा न न घनश्यामः कलङ्को न न
ज्योत्स्नापीवरतारिका न किमुत ब्रूहीति तावत्प्रिये।
कालव्यालहतो वराहपटलान्तर्दन्तपट्टीलुठत्
कुर्वद्वङ्कुरभोगिभोगविलसत्कुर्वन्नभश्चत्वरे।। -राजमहादेव्याः

360. हंसः किंस्विद्विरिञ्चेखतरति नु तटं पश्चिमस्याम्बुराशेः
क्षिप्तो वा कर्णशङ्खः प्रचरकरतया साद्यदैरावतेन।
इत्यूहन्ते सुधाशुं विषमतुतमिदं त्वद्भयादेव देव
प्रत्यङ्मुक्तं मघोना पतति गगनतः श्वेतमत्रातपत्रम्।। -कालिदासस्य

361. कपाले मार्जारः पय इति करा नेति शशिनः
तरुच्छिद्रं प्रोतान्विशमिति करं सङ्कलयति।
रतान्ते तल्पस्था न हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विक्लवयति।।

362. सुधांशो जातेयं कथमपि कलङ्कस्य कलिका
विधातुर्दोषोऽयं न गुणनिधेस्तस्य किमपि।
स किं वात्रेः पुत्रो न किमु हरचूडा च न मणि-
र्नवा हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति।। -लक्ष्मणसेनस्य

363. उज्जृम्भतामुदधिरस्तु जगत्प्रसन्न-
मा मोदतः कुमुदमेतु मुदं मनोभूः।
एतत्पुनश्चरितमद्भुतमोषधीश
ग्रावाप्ययं द्रवति यत्तव दर्शनेन।। - गङ्गादासस्य

364. नयनमसि जनार्दनस्य शम्भो-
मुकुटमणिसुदृशा त्वमादिदेवः।
त्यजसि न मृगमात्रमेकामिन्दो
विरमति येन कलङ्ककिंवदन्ती।। -पञ्चाननस्य

365. यस्माद्भासि पयोनिधौ हरजटाजूटे निबद्धो यदि
यद्विश्वोदरदीपकोऽसि सततं पूर्णो यवच्चामृतैः।
भ्रातः श्रीहरिणाङ्क सर्वमतुलं म्लानीकृतं तत्त्वयं
यत्राजीवमपास्य कैरवकुले दत्तं विकासास्पदम्।। -वाचस्पदस्य

366. अपरमात्मसमः क्रियतामिति व्यवसिता प्रभवन्ति कलङ्किनः।
अमलिने मलिनेऽप्यलिमण्डलं निशि निवेशयति स्म निशावरः।

367. कलङ्क्यस्तु निशानाथो निष्कङ्काश्च तारकाः।
तथाप्येष पतिस्तेषां चूडारत्नं हरस्य च।। -श्रीनन्दनकवेः

368. आशाः प्रसादयतु पुष्यतु वा चकोरान्
कप्यं तनोतु कुमुदेषु मदं सुधांशुः।
एकः स एव परमुत्कटराहुदन्तो
यत्र प्रवेशसमदुःखसुखं कुरङ्गः ।। -योगेश्वरस्य

369. नात्र व्याघ्रशराः पतन्ति परितो नात्युग्रदावानलो
नात्युच्चावचभीतिपातिचरितं नैवान्यहिंसाद्भयम् ।
इत्यालोक्य कुरङ्गकेन विहितो नक्षत्रनाथाश्रयः
को जानाति यदत्र यास्यति विधुः स्वर्भानुदत्तव्रणम् ।।

370. अजनि भगवानस्या द्वेधा शिरः ससुधाभुजाम्
कृतपदमिदं चैतद्देव्या श्रियो धृतिमन्दिरम्।
तदिह भुवनाभोगश्लोध्यसरोजमिदं शिरः[1]
शशधर तव द्वेषारम्भः स एव यदुग्रहः।। - गदाधरस्य

371. रामानां प्रमदाय जन्म विपदो मित्रस्य नित्यं रुचिः
प्रीतिः सारसनिग्रहात् कुशलता मारावतारोत्सवे।
यस्यैवं शशिनो विवेकविरहस्तस्यायमङ्के पशुः
युक्तं कैरवहास्यमस्य पुरतो मुक्तं जगद् घूर्णते।।।

-कविशेखरस्य

372. विरम तिमिरसाहसाद्युष्मान् दिनमणिरस्तमुपागतः।
किं कलयसि न पुरा महोर्मिमाली प्लुतवियदभ्युदयत्ययं मृगाङ्कः।।

- केशवसेनस्य

373. लोकः शोकं त्यजत न चिरं स्थायिनी ध्वान्तवर्ति-
र्भद्रे यायाः कुमुदिनि मुदं मुञ्च मोहञ्च रावः।
स्वच्छज्योत्स्नामृतरसनदी स्रोतसामेकशैलः
सोऽयं श्रीमानुदयति शशी विश्वसामान्यदीपः।।

374. असावेकद्वित्रिश्चतुरपरिपाद्यां प्रकटय
कला स्वैरे स्वैरं नवकमलकन्दाम्बुजरुचः।
पुरन्ध्रीणां प्रेयो विरहदहनो दीपितदृशाम्
कटाक्षेभ्यो विभ्यन् निभृततरचन्द्रो विजयते।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'शिरम्'

375. किन्नु ध्वान्तपयोधिरेष कतकक्षोदैरिवेन्दोः करै-
रत्यब्जोऽयमधश्च पङ्कमखिलं छायापदेशादभूत्।
किं वा तत्करकर्तरीभिरभितो निस्तक्षणादुज्ज्वलं
व्योमे वेदमितस्ततश्च पतिताश्छायाछलेन त्त्वचः।।

376. शशिनमसूत प्राची नृत्यति मदनो हसन्ति ककुभोऽपि।
कुमुदरजः पटवासं विकिरति गङ्गाङ्गणे पवनः।।

377. कह्लारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात् कान्तिमद्भिः कराग्रै-
श्चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्रंसमाने रजन्याः।
अन्योन्यालोकिनीभिः परिचयजनितप्रेमनिष्यन्दिनीभि-
र्दूराहूतप्रमोदैर्हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः।।

378. फेणः क्षीराम्बुराशेरयमुदयगिरेस्तुङ्गशृङ्गातपत्रं
पूर्वस्यां गण्डदेशे तिलक इव दिशो दर्पणो यामिनीनाम्।
वापीनां राजहंसः प्रबलसितसटाकेसरीकाननाना-
माकाशस्याट्टहासः कुमुदवनचयोद्बोधशङ्खः शशाङ्कः।।

379. प्राचीमर्चति यामिनीमनुनयत्याशाः समालोकते
धामालिङ्गति सेकते कुमुदिनी स्निग्धाति मुग्धैः करैः।
रज्वीषु प्रतिपन्नमन्मथररसं कुर्वन्मनः कामिना-
मिन्दुर्वर्तकरः स एष भुवनानन्दः परिस्पन्दते।।

380. यत्पीयूषमयूखमालिनि तमः स्तोमावलीढायुषां
नेत्राणामपमृत्युहारिणिपुरः सूर्योढ एवातिथौ।
अम्भोजानि पराञ्चितन्निजमघण्टत्वेऽवतेभ्यस्ततो
गौराङ्गीवदनोपमासुकृतिमादत्ते पतिर्यज्वनाम्।।

381. यात्रायामिव दत्तपूर्णकलशः कन्दर्पराज्ञः शशी
तत्रायं सहकारपल्लवतुलामङ्कः समारोहति।
ज्योत्स्नालेपनपङ्कपूरितमिव व्योमाङ्गणं सर्वतः
क्षिप्ता मङ्गललाजमुष्टय इव भ्राजिष्णुवत्तारकाः॥

382. चन्द्रे सान्द्रमरीचिसञ्चयमुचि प्राचि प्रिया प्रेयसि
प्राप्तः प्रौढतमः प्रभावतिमिरध्वंशप्रशंसाविधौ।
कालिन्दीसुरनिम्नगीयति तथा विन्ध्यो हिमाद्रीयति
क्षोणी राजतभाजनीयति तथा चक्रोऽपि हंसीयति॥

383. कियद् बाधा धारा इव किरणधाराः प्रतिदिशं
तुषारांशोर्बिम्बं मणिघटितधारागृहमिव।
इहायं कस्तूरीहरिणपदपङ्काञ्चिततनुः
कलङ्कव्याजेन प्रतिवसति कन्दर्पनृपतिः॥ –अविलम्बसरस्वत्याः

384. शेषस्याहे व्रजति तुलनां मण्डलीभूतमूर्ते-
रिन्दुः कन्दस्तबकविशदः पार्वणोऽयं यथैव।
व्योमाम्भोधौ स नवजलदश्यामरोचिस्तथोच्चै-
रङ्के शङ्का वयमपि हरेस्तत्र सुप्तस्य सूते॥

385. नासौ शशी रजतपञ्जरचक्रमेत-
देतच्च नीलनलिनच्छविलाञ्छनं वा।
मन्ये नभोविपिनकेलिसमुत्सुकायाः
क्रीडापिकः कलित एष निशाङ्गनायाः॥

386. अङ्गुलीभिरिव केशसञ्चयं
सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।
कुड्मलीकृतसरोजलोचनं
चुम्बतीव रजनीमुखं शशी।। -कालिदासस्य

387. निःससार करघातविदीर्ण-
ध्वान्तदन्तिरुधिरारुणमूर्तिः।
केशरीव कटकादुदयाद्रे-
रङ्कलीन हरिणो हरिणाङ्कः।।

388. सारः क्षीराम्बुराशे रतिपतिजगतीभर्तुरेकातपत्रं
शृङ्गाराद्वैतदीक्षाविधिरचितरुजोमण्डलं स्वर्वधूनाम्।
पद्म प्रस्वापनास्तं कुमुदवनवपुर्जन्मविद्योपदेष्टा
जीयाज्जीवो रजन्याः पुरमथनजटाकन्दलीपुष्पमिन्दुः।। -रविकरस्य

389. कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालिस्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्यो यशः।
एतत्तर्कय कैरवक्लमहरेः शृङ्गारदीक्षा गुरौ
दिक्कान्तामुदरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि।।

390. आस्ते शशी शम्भुकिरीटकोटि-
पीठी लुठत्पादतुषारपांशुः।
यस्योदये सङ्कुचितं करोति
निजासनं वारिरुहासनोऽपि।।

391. याते भर्तरि कालपर्ययवसाल्लोकान्तरं भास्करे
सद्यस्तीरभुवस्तमः कुशलवैरास्तीर्य पूर्वाम्बुधेः।
क्षीरक्षारतया निशि व्यवसितस्थूलैकपिण्डस्तनो-
र्लक्ष्मभ्यो रतिनावनङ्गि विदधे प्राची विधोर्मण्डलम्।।

392. अयममृतमयूखघस्मरेण
प्रबलसुधातृष्णया विधुर्न निपीतः।।
इह हरिणविषाणवेणुवल्ली-
क्षतगलतालुतलेन तेन मुक्तः।।

393. अग्रे प्रसारितकरो द्विजराज एष
ख्याता वयं समधुपा मधुकोषवत्यः।
अस्मत्समागमकृतोऽपि[1] पुनर्द्वितीयो
माभूत्कलङ्क इति सङ्कुचिता नलिन्यः।।

394. अयि चकोरकुटुम्बिनि कातरे
तिरय पक्षपुटेन कुटुम्बकान्।
बहुगतं कियदप्यवशिष्यते
व्यपगतं तिमिरैरुदितः शशी।।

395. दिनश्रीर्विश्रान्ता वहति मिहिराम्भोधिलहरी
चकोरी सानन्दा रसति विरसं चक्रतरुणी।
अये मन्दं मन्दं यदयमुदयक्ष्माधरगुहा-
विहारी नीहारद्युतिरपहरत्यम्बुशरुचिम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'य'

396. नैतन्नभो लवणतो लवणाधिरेष-
च्छायापथश्च न भवत्ययमस्य हेतुः।
नायं शशी निविडपिण्डितयोग एष
शेषो न लाञ्छनमिदं हरिरेष सुप्तः।।

397. एष सान्द्रतिमिरे गगनान्तरे वारिणीव मलिने यमुनायाः।
भाति पक्षपुटगोपितचञ्चुराजहंस इव शीतमयूखः।।

398. इन्दुमिन्द्रदिगसूतसरस्वानुत्तरङ्गमुरराजिर्नृत्यति[1]।
उग्रहर्षभृषकेतुरवापुः षड्धा कुमुदबन्धनं मोक्षम्।।

399. ज्योत्स्नामुग्धवधूविलासभवनं पीयूषवीचीलवः
क्षीराब्धौ तव नीतिकूटमवनीतापार्तितापोपमः।
यामिन्यास्तिलकः कलामृगदृशां प्रेमव्रतैकाश्रमः
कामत्येष चकोरयाचकमहा कर्पूरवेषश्शशी।।

400. येषां वल्लभया समं क्षणमपि क्षिप्तं क्षणाः क्षीयते
तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकः।
अस्माकं तु न वल्लभो न विरहस्तेनोभयभ्रंशिना-
मिन्दू राजति दर्पणाकृतिशशी नोष्णो न वा शीतलः।।

401. सर्वप्रकाररमणीयतरो हिमांशुः
सर्वस्य तापमपहन्तुमुपात्तजन्मा।
को वेद तत्त्वमिह केन च कारणेन
लक्ष्मीविलासभुवि नामरसे स वन्द्यः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'नृत्यते'

402. एतस्मिन् जयिनि प्रदोषसमये राजा त्वमेकः परं
लक्ष्मीरम्बुरुहां पिधाय कुमुदे किं वा तनोसि श्रियम्।
यद् ब्राह्मीस्थितिरत्र यच्च सुमनः श्रेणी सुसम्भावना
त्वं तावत्कतमोऽस्ति तत्तिरयितुं धातापि नैव क्षमः।।

403. यस्मिन्नाचलगोचले जलधियः प्रत्युङ्गमं......[1]
किं कुर्मः कमलासनोऽपि भगवान् सङ्कोचयत्यासनम्।
गङ्गासङ्गमधौतधूर्जटिशिरः पीठोपरिष्ठाजटा-
वल्लीविष्टरसन्धिवेशितपदः सोऽस्ति द्विजानां पतिः।।

404. अस्ति स्वस्त्ययनं प्रसूनधनुषः पीयूषमस्त्रं जगत्
नेत्रस्यातमताप्यमानजगतीनिस्तारतौषारिकः।
मार्तण्डस्य निशासु निर्मलयशोनिक्षेपरक्षावलि-
व्योमप्राङ्गणतारकागणकणश्रेणीशिलोच्छः शशी।।

405. कुमुद्वति कियद्वापि मौनमुद्रापरिग्रहः।
पुरः पौरन्दरीमाशामानन्दयति चन्द्रमाः।।

406. क्व ते शिवः शिरः स्थाने वासो राह्वङ्गनापदे।
विरुद्धपेष्टया चन्द्र कलङ्की त्वं न संशयः।।

407. अहो चन्द्रस्य माहात्म्यं किं ब्रूमः पृथिवीतले।
श्रोत्रियोऽपि दिवाभ्रान्त्या मुद्रयत्युत्तरामुखः।।

408. ज्योत्स्नाजाले निमग्नं स्पृशति वनकरी शुण्डया दत्तदण्डं
सातङ्कं कण्ठनालं नमयति चमरी चामरी द्रष्टुकामा।
सास्रा कूजत्यजस्रं प्रसभमतिमलालोकयन्ती मराली
नो जाने क्षीरसिन्धुस्तुहिनगिरिरपि क्वापि चन्द्रेण नीतः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

409. यदैव पूर्वामुदितश्शशाङ्को बलेति वक्रो मदनानुरागी।
यदैव पूर्वं भणितं मया सखे! कलङ्कशङ्कात्र भविष्यतीति।।

410. काश्मीरेण दिहानमम्बरतलं वामभ्रुवामानन-
द्वैराज्यं विदधानमिन्दुदृषदां भिन्दानमम्भः शिरः।।
प्रत्युद्यत्पुरुहूतपट्टनवधूदत्तार्धदूर्वाङ्कुर-
क्षीरोत्सङ्गकुरङ्गमैन्दवमिदं तद्बिम्बमुज्जृम्भते।।

411. रत्याः सम्भोगहर्म्यं कुसुमशरयशः क्ष्माभृतो गण्डशैलः
कल्हाराद्वादवेधाः सरसिजपरिषज्जागवास्पन्दशिल्पी।
मानाब्धेः कुम्भजन्मा पुरमथनशिरः सिन्धुरोधस्तपस्वी
रागाहेमौलिरत्नं मदयतु जगतां यज्वनां चक्रवर्ती।।

412. लीलासद्मप्रदीपस्त्रिपुरविजयिनः स्वर्णदीकेलिहंसः
कन्दर्पोल्लासबीजं रतिरमकलभं क्लेशविच्छेदचक्रम्।
कल्हाराद्वैतबन्धुस्तिमिरजलनिधेरुच्छिखो बाडवाग्नि-
र्लक्ष्म्याः क्रीडारविन्दं जयति भुजभुवां वंशकन्दः सुधांशुः।।

413. चन्द्रश्च शाचिव्यमिवास्य कुर्वता तारागतो मध्यगतो विराजन्।
ज्योत्स्नाविता नेत्रविभक्तलोकानभ्युत्थितोऽनेकसहस्त्ररश्मिः।

414. मारणाचारनिर्माणराज्यचक्रमिवोदितम्।
यामिनीकामिनीकर्णकुण्डलं चन्द्रमण्डलम्।।

415. अयं सुधादीधितिरप्ययं त्विषं वियोगराज्येष्विति योग्यमेव च।
यदुत्थितो नाञ्जनकालकूटसहोदरेणैव पयोधिमध्यात्।।

416. वकुलसरसमूहे सौरभं मुञ्चतीव ध्वजयवनपताकापल्लवेवेन्दुतीव।
विरहिणिकलहंसे चन्द्रिका क्रन्दतीव स्फुटितकुमुदखण्डे पिण्डतामुज्झतीव।।

417. अयं मृदुमृणालिनीवनविहासवैहासिक-
त्विषां विटपते पतिः सपदि दृश्यमानानिजाः।
स्तनौ पुलकयन्ति चोत्पलदृशां प्रियोरः स्थले
विपर्य्ययितवृत्तया घुसृणपङ्कपत्राङ्कुराः।।

418. श्रीकण्ठस्य कपर्दबन्धनपरिक्लान्तोरगग्रामणी -
सन्दष्टां मुकुटावतंसकलिकां वन्दे कलामैन्दवीम्।
या बिम्बप्रतिपूरणाय विधृता निष्पीडसंदंशिका-
रन्ध्रे शैलललाटलोचनशिखा ज्वालाभिरावर्त्यते।।

419. यं प्राक् प्रत्यगवागुदञ्चिककुभां नामानि संबिभ्रतं
ज्योत्स्नाजालजलाञ्जुलाभिरभितो लुम्पन्तमन्धं तमः।
प्राचीनाकचलादितस्त्रिजगतामालोकबीजाद्बहि-
र्निर्यान्तं हरिणाङ्कमङ्कुर इव द्रष्टुं जनो जीवति।।

420. सश्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिम्लानप्रदीपाङ्कुरो
देवः कैरवबन्धुरन्धतमसः प्राग्भारकुक्षिम्भरिः।
संस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिमणिश्रेणीभिरेणीदृशाम्
गीर्वाणाधिपतेः सुधारसवती पौरोरगः प्रादरात्।।

421. प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहचये यौवनोन्मादशाला
गोष्ठीनां पीठमाहुस्त्रिभुवनवनितानेत्रयोः प्रातराशः।
कालाम्बस्सो[1]मयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुरागः
शृङ्गाराद्वैतवादी स जयति भगवानेष पीयूषराशिः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'ण्ठो'

422. नेत्राणां मधुपर्कपत्रमुदधेः सर्वाङ्गभेदाक्षरः
श्रृङ्गारस्य रसायनं मखभुजां पीयूषगञ्जःपतिः।
देवः किन्तु महेश्वरस्य च शिरो नेपथ्यरत्नाङ्कुरः
क्षीणे दार्णवशुक्तिकामयमयं दाक्षायणीनां पतिः।।

423. प्राचीनाचलचूडचन्द्रमणिभिर्निर्व्यूढपाद्यं निजै-
र्निर्यासैरुहभिर्निजेन वपुषा दत्तार्घलाजाञ्जलिः
अन्तः प्रौढिकलङ्कतुच्छममितः सान्द्रं परिस्तीर्यते
बिम्बादङ्कुरभग्ननैशिकतमः सन्दोहमिन्दोर्महः।।

424. गोत्रे साक्षादजनि भगवानेव यत्पद्मयोनेः
शय्योत्थायं यदखिलमहः प्राणयन्ति द्विरेफान्।
एकाग्रा यद्विभवति भवत्यद्भुता नौ च भक्ति
हा प्रापुस्ते तव सुवदने पश्य चाम्भोरुहाणि।।

425. ज्येष्ठामूलीययात्रा सरभसकरभी कान्यकान्ता कदर्था
दूरेऽपि ज्योतिरक्ष्णोरपनयति मरुज्ज्वालजालाङ्गलश्रीः।
विश्वद्[1] वीचीभिरस्मिन्निविडमुडुपतेः कान्तिभिः प्रस्तुवानाः
फेनायन्ते निजोष्णात् कथन.......................................[2]।।

426. कन्दर्पस्य जगत्त्रयीविजयिनः साम्राज्यदीक्षागुरुः
कान्तामानशिलाञ्च वृत्तिरथिनो ध्वान्तापहारे कृती।
देवस्त्र्यम्बकमौलिमण्डलसरित्तीरस्थली तापसः
श्रृङ्गाराध्वरदीक्षितो विजयते राजा द्विजानां पतिः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'त्पत'

2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

427. ब्रह्मास्त्रं मीनकेतोः सरसकुमुदिनीशर्मसर्वाधिकारी
कान्तामानाभिचारः स्मरसमरहरिर्घातकः कोलयूनाम्।
प्रत्यग्ज्योतिर्विहाय त्रिभिरमयमहामोहजालस्य पायाद्-
देवः कामैकबन्धुर्निखिलवसुमतीदर्पणः पार्वणेन्दुः।।

428. देवः शृङ्गारबीजं विकचकमलिनीखण्डमुद्राधिकारी
चक्रं पाणावकृष्टं त्रिभुवनजयिनः केतकी कार्मुकस्य।
नावाचार्यः पयोधेः जयति विरहिणीजीवयात्रासु कुम्भः
सीमा सौन्दर्यराशे रससृपरमहाध्वान्तमल्लो मृगाङ्कः।।

429. पौलोमीकुचकुम्भकुङ्कुमरजः स्वाजन्यजन्माभृता
शीतांशोर्द्युतयः पुरन्दरपुरीसीमामुदं कुर्वते।
एताभिर्लिहतीभिरन्धतमसा नेत्रद्युतीभिर्दृशोः
श्रोणीमास्त्रिणतीभिरन्धतमसं व्योमोदयो जायते।।

430. नैवायं भगवानुदञ्चति शशी गव्यूतिमात्रीमपि
द्यामद्यापि तमस्तु कैरवकुलश्रीचाटुकाराः कराः।
मथ्नन्ति स्थलसीम्नि शैलगहनोत्सङ्गेषु संरुद्धते
जीवग्राहमिव क्वचित्क्वचिदपि च्छायासु गृह्णन्ति च ।।

431. तथा पौरस्त्यायां दिशि कुमुदकेदारकलिका-
कपातध्रीमिन्दुः किरणलहरीमुल्ललयति।
समन्तादुन्मीलद् बहलजलविन्दुस्तवकिनौ
यथा पुञ्जायन्ते प्रतिगुलकमेणाङ्कमणयः।।

432. तरुनन्दोर्मलीमसमेतदयं कलयति
चन्द्रमाः किल कलङ्कमिति ब्रुवते।
तदमृतमिव निर्दयविधुन्तुद्दन्तपट-
व्रणविवरो प्रदर्शितमिदं हि विभाजि नभः।।

433. मदयति यदुत्पन्नो दुग्धाम्बुधेयमम्बुधी-
न्नयति नयनादत्रेर्यातो मुदं नयनानि च।
तदखिलसुरश्रेणीसाधारणप्रणयी
शचीसहचरतरुः स्थाली सोमः समञ्जसमीहते।। -मुरारेः

अथ गङ्गाव्रज्या

434. बद्धाञ्जलिर्नौमि कुरु प्रसाद-
मपूर्वमाता भव देवि गङ्गे।
अन्ते वयस्यङ्कगताय मह्य-
मदेहिने धाय पयः प्रयच्छ।।

435. का दुर्दशा किमपि निर्दयचित्रगुप्त-
सन्त्रासितस्य जगतो यदि देवि न स्याम्।
त्वं कर्मबन्धनविमोचनधर्मराज-
लेखाधिकारपरिशोधनशुद्धिपत्री। - विरिञ्चेरेतौ

436. यत् प्रविश्य न पुनः प्रविश्यते
यन्निपीय न पुनर्निपीयते।
यन्निरीक्ष्य न पुनर्निरीक्षते
तन्निरञ्जनं जलं भवेश्वरि।।

437. यदि वदसि कृतानि पञ्चपञ्चाशद्
हि धिक् कृतानि महातिपातकानि।
सुरसरिति निसर्गभक्तिभाजां
वद यमकिङ्कर किङ्करिष्यसि त्वम्।।

438. प्रसीद श्रीगङ्गे मृडमुकुटजालाग्रसुभगे
तवोल्लासोन्मूलं म्लनति मम संसारविटपी।
अथोत्पत्स्ये भूयः त्रिजगदधिराजोऽपि न तदा
श्वपाकः काको वा भगवति भवेयं तव तटे।।

439. अये कामक्रोधप्रमदमदमानप्रभृतयः
समापृच्छे युष्मान् पुनरनवलोकाय सुहृदः।
असौ मुक्तेः पन्थाः सुरसरिदवाप्तो ननु मया
निवर्तध्वं यावत्सलिलमनुगम्यः प्रियजनः।। - शूलपाणेः

440. तप्तं यत्र तपो हुतं न च हविर्यज्वा तु वेदा मुखे
दत्तं यच्च न किञ्चिदेव न कृतो यत्तीर्थयात्रादरः।
तत्केनेव शुनेव केवलमसौ यत्पुङ्गलः पूरिते
मातस्त्वां परिरभ्य जाह्नवि समे शान्तोऽयमन्तर्ज्वरः।। -कामदेवस्य

441. के यूयं यमकिङ्कराः कथमिहायाता यमस्याज्ञया
हर्तुं जीवितमस्य सम्प्रति पलायध्वं कुतः कारणात्।
गङ्गेति स्मरतोऽस्य जीवहरणे के यूयमस्मादृशै-
र्नेतव्यं सुरलोकमेव भवता यत्राधिकारः कुतः।।

442. त्वद्दर्शनाज्जनो मुक्तो यन्निमज्जति जाह्नवी।
तन्मन्येऽहमपस्नाति चिरबन्धुर्भवात्यये।।

443. माता सुतमसुक्षीणमङ्कस्थमपि मुञ्चति।
त्वं पुनर्वह्निदग्धानमस्थीन्यपि न मुञ्चसि।।

444. विस्फारिताष्टकदमच्छलतो विपाट्य
वक्ष्येऽति सूक्ष्ममिव यत्परमात्मतत्त्वम्।
व्यक्तीकृतामुरुभिदा करुणाहतेन
तद्वः पुनातु सुरसिन्धुपयः प्रसन्नम्।।

445. भूतानि देवि! जननीव सदैव पासि
लज्जायते मम मतिर्न गुणोक्तिरेषा।
माता सुतं त्यजति पातकदोषदुष्टं
त्वं देवि वत्सलतया पतितं पुनासि।।

446. वारं वारमनेकधेव दुरितैर्भीतः पुरोऽहं स्थितो
हे वैवस्वत चित्रगुप्त भवतोरालोक्य शौद्रीशतम्।
अद्याहं सुरसिन्धुरोधसि वसन्नम्भस्त्वदीयं पिबन्
त्वत्पङ्के तनुमालिपन्न गणयाम्यक्ष्णोऽपि कोणं नवम्।।

447. धर्मस्योत्सववैजयन्ति मुकुटे स्वश्रेणिगौरीपते-
स्त्वां रत्नाकरपत्नि जह्नुतनये भागीरथि प्रार्थये।
त्वत्तोयान्तशिलानिषण्डवपुषस्त्वद्वीचिभिः प्रेङ्खतः
त्वन्नाम स्मरतः त्वदर्चितदृशः प्राणाः प्रयास्यन्ति मे।।

448. यद्ब्रह्मणा श्रुतिजडेन जरन्तुरेण
चूडामणिश्चरणभूषणतां प्रणीतः।
तत्क्षम्यतामतिविसम्भ्रमकातरस्य
त्वामित्यधत्त शिरसा गिरिशः पतन्तीम्।।

449. सुरपुरवसतिपताका नाकारोहाय सज्जनिश्रेणी।
निरयविजयजयपत्रीदात्री मोक्षस्य जाह्नवी जयति।।

450. तीरं तवाद्य भवतीह यथा तथैव
देवे न देवि जगता मनुजो मुमूर्षुः।
अम्ब स्वयं शिखसमुन्मददिव्यनारी-
दोर्वल्लिपल्लवनतोऽपि तथा तथैव।।

451. तरलतरतरङ्गे स्वर्गसङ्गप्रसङ्गे
निखिलकलुषभङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद।
भगवति तव तीरे तीरमात्रासनोऽहं
विगतविषयतृष्णः कृष्णमाराधयामि।।

452. भगवति तव लीलामौलिमालेव वाम्भः-
कणमनुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति।
अमरनगरनारीचामरग्राहिणीनां
विगतकलिकलङ्कातङ्कमङ्के लुठन्ति।। - वाचस्पतेः

453. हरस्तावद्देवि त्रिदशमुकुटो धृष्टचरणः
समन्तानामीशस्त्रिभुवनगुरूणामपि गुरुः।
यदा तेनैव त्वं चलचकितचन्द्रेण शिरसा
धृता किं ते भूयः स्तुतिवचनमस्मत्परतरम्।। -कात्यायनस्य

454. पर्वतभेदि पवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गगगणम्।
हरिमिव हरिमिव हरिमिव सुरसरिदम्भः पतन्नमते।।

455. न त्वया सदृशी दूती त्रिषु लोकेषु विद्यते।
या करोत्यमरस्त्रीणां मानवैः सह सङ्गमम्।।

456. भ्रष्टासि वैष्णवपदात् स्खलितासि गोत्रात्
नीचं श्रितास्यभिसृतासि पतिं नदीनाम्।
श्रेष्ठा श्रुतेरसि न वञ्चसि वक्रिमानं
कोऽयं क्रमस्तव जगत्त्रयपूजितायाः।।

457. वरमिह गङ्गातीरे शरदः करटः कृशशुनीतनयः।
न पुनर्दूरतरस्थः करिवरकोटीश्वरो नृपतिः।।

458. गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
पुण्ये ब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारि निस्वर्गमार्गे।
प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिकाब्रह्महत्यादिपापे
कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि तुभ्यं नमस्ते।।

459. वाणी वाणी हि वाणी रविकुलसमयः पत्रमाला विशाला
लेपश्चैको महाब्धिर्यदि भुजगपतिर्लेखनी चाक्षयाङ्गः।
गङ्गे प्रोत्तुङ्गभङ्गे भवति लिपिकरः कुञ्जराश्चेत्तदीशा-
शक्तास्तद् वर्णयन्तः किमिति जडधियो मानवाः क्षीणपुण्याः।।

460. मज्जन्ति मुनयः सर्वे त्वमेकः किन्न मज्जसि।
मुक्तिस्त्वद्दर्शनाद्देवि न जाने स्नानजं फलम्।।

461. गङ्गामरणमाहात्म्यं शङ्करो वेद नेतरः।
य: कालकूटमपिबत्स्वर्धुनिन्यस्तमूर्धनि।।

462. कस्मादुर्वशि गर्वितासि भवती रम्भोतिथिर्मेनके
क्वासौ पश्य वपुर्विमुञ्चति पुरः स्वर्गापगायास्तटे।
मुग्धे किं तव जाह्नवी न विदिता यस्यां विशन्तो जना-
स्त्रैलोक्यं तृणवद् विहाय झटिति ब्रह्मास्पदं सर्पति।।

463. मत्स्यकूर्मवराहाणां जातौ याति स्वकेशवः।
जले जलतले पङ्के शङ्के सङ्क्रीडितुं तव।।

464. कुतो वीचिर्वीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि।
त्वदुत्सङ्गे गङ्गे यदि पतति कायस्तनुभृतां
तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः।।

465. शाकेन कुक्षिम्भरिरम्भसा वा कन्देन मन्दाकिनि वा तवाङ्कः।
आराध्य गोविन्दपदारविन्दमैन्द्रं पदं दूरमधः करिष्ये।।

ततो यमुनाव्रज्या

466. देव्याभूमेर्मृगमदसमो मण्डनं सिद्धसिन्धोः
सध्रीचीमं जयति यमुनायास्तटैकाग्रवृत्तीन्।
प्रेमोत्कर्षादिव पितृभृतेस्त्रातुराच्छिद्य हस्ता-
दस्तावाघं गमयति पितुर्मण्डलं चण्डरश्मेः।।

या माथुरां मृगमदद्रवदग्धवक्षः प्रक्षालनान्मलिनतेव कलिन्दकन्या।
तापत्रयाविविनि भूषितमध्यदेशां रोमावलीमिव विलोकयितासि भूमेः।।

– मुरारेः

नदीव्रज्या

467. कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नते भविता।
तटिनि तटक्लमयाते न पातकमेकं चिरस्थायि।।

468. अयि कूलनिचूलमूलच्छेदनदूः शीलवीचिवाचाले।
वकविधसपङ्कसावालचिरात् काले विभावितासि।।

469. क्वापि कस्यचित् कुतोऽपि कारणात्[1]
चित्तवृत्तिरिह किं गुणागुणिः।
उन्नतं यदवधीर्य भूधरं
नीचमब्धिमुपयाति जाह्नवी।।

अथ समुद्रव्रज्या

470. कृष्णस्योरसि कौस्तुभः शतमखद्वारे करी शूलिनो
मौलौ चन्द्रकला किरीटममृतैर्मेदस्विनो निर्जराः।
कर्णोत्तंसितपारिजातमुकुलाः स्वर्धाऽसि वामभ्रुवो
यस्यैतानि विचेष्टितानि जयसि क्षीणोद तुभ्यं नमः।। -धर्म्यशोकस्य

471. इतो वसति माधवः पुरमिदं तदीयद्विषामितः
परमनिर्वृता शिखरिपत्त्रिणः शेरते।
इतश्च बडवानलस्तदनुपत्तनं भोगिना-
महो विततमूर्जितं भरसहञ्च सिन्धोर्वपुः।।

472. मर्यादाभङ्गभीतेरमृतमयतया धैर्यगाम्भीर्ययोगात्
क्षुभ्यन्ते वा कदाचिन्नियमितसलिलाः सर्वदैते समुद्राः।
आहो क्षोभं व्रजेयुः क्वचिदपि समये दैवयोगात्तदानीं
न क्षोणी नाद्रिकन्दानरविशशिखिनौ सर्वमेकार्णवं स्यात्।।
-वधिरकविराजस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पद्येऽस्मिन् छन्दोभङ्गः।

473. उच्चैरुन्मथितेन तन्नियमितं दैवेन धिक्कर्मणा
लक्ष्मीर्यस्य निरस्यतां जलनिधेर्जातं किमेतावता।
गाम्भीर्यं किमयं जहाति किमयं पुष्णति नाम्भोधरान्
मर्यादां किमयं भिनत्ति किमयं न त्रायते वाडवम्। -लक्ष्मीधरस्य

474. अयं वारानेको निलय इति रत्नाकर इति
त्रितोऽस्माभिस्तृष्णावलिनरमनोभिर्जलनिधिः।
क एवं जानीते निजकरपुटीकोटरगतं
क्षणादेनं ताम्यत्तिमिरकरमायास्यति मुनिः।। - कालिदासस्य

475. तावद्वेला वरय विषमां वर्तनाभीनिकुञ्जे
क्रोडत्ताम्यत्तरलविषमग्राहरौद्रः समुद्रः।
दृष्टो यावन्न खलु चुलुकाभूतनिष्पन्नमूर्ति-
र्लोपामुद्रासरचरकरस्वस्तिकोत्सङ्गवर्ती।। -गोमटस्य

476. आहत्य लक्ष्मीमित एव पूर्व-
मत्रैव विश्वम्भरसुप्रसुप्तः।
एकः परं वेद स कैटभारि-
र्महाशयत्वं मकरालयस्य।।

477. आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं नाम साधितमनेन महार्णवेन।
क्षारीकृतञ्च वडवादहनेऽद्भुतञ्च
पातालकुक्षिकुहरे विनिवेशितञ्च।।

478. अम्भोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारानिधिर्वारिधिः
केन क्षारजले वृथैव भवतो नामामृतं निर्मितम्।
थू थू कृत्यवमद्भिरश्वगशतैरप्राप्तकण्ठं पयः
शुष्यत्तालुमलैर्विरम्य लवलोदन्वत्रया नश्यसे।। –हनुमतः

479. अप्राप्त्या कलितप्रभावविभवे सर्वाश्रयाम्भोनिधौ
वासो नान्यतपः फलं यदपरं दोषायमेको भवान्।
शम्बूकोऽपि यदत्र दुर्लभतरै रत्नैरनर्घैः समं
स्पर्धामेकनिवासकारणवशादेकान्ततो वाञ्छति।। – कविराजस्य

480. अये वा नां भर्तुः कुलिषकरकोपप्रतिभया–
दयं पक्षप्रेम्णा गिरिपतिस्त्वामेव नु गतः।
तदन्तर्वास्तव्यो यदि पुनरयं बाडवशिखी
प्रदीप्तः प्रत्यङ्गं ग्लपयति ततः कोऽस्य शरणम्।। – शतोकस्य

481. लोजाश्रीः शशभृत्कलङ्कमलिनः क्रूरो मणिग्रामणी–
र्मा यत्र भ्रमुवल्लभोऽपि सततं तत्कालकूटं विषम् ।
इत्यन्तः स्वकुटुम्बदुर्नयपरामर्शाग्निना दह्यते
बाढं वाडवनामधेयदहनव्याजेन वारां निधिः ।। –लक्ष्मीधरस्य

482. धिगस्ते गाम्भीर्यं धिगमृतमयत्वं च जलधे–
र्धिगेतत् ह्राद्यीयं पृथुरतरकल्लोलभुजता।
यदेतस्यैवाग्रे कवलिततनुर्दाहदहनै–
र्न नीवारापानी सलिलचुलकेनाप्यपहृता।। –कलिकाकारस्य

483. आश्चर्यं वडवानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि-
र्यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य हृदये कल्पः समुत्पद्यते।
एकस्याश्रयघस्मरस्य पिबतस्तृप्तिर्न जाता जलै-
रन्यस्यापि महान् मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि तोयव्ययः।।

484. धिगर्जामुन्मुञ्च त्यज वर लतामत्र न मना-
महङ्कारः कोऽयं कतिपयमणिग्राहगुलकैः।
भृशं मे रौदभ्या सह मणिमयप्रस्थनिचितो
महामौनस्थैर्यादथ भुवनमेव स्थगपति।। - नारायणदत्तस्य

485. एकेनैव पयोधिना जलमुचस्ते कोटिशः पूरिता
जातो नास्य कुशाग्रनीलतुहिनस्वल्पोऽपि तोयव्ययः।
आहो शुष्यति दैवदृष्टिवलनादम्भोधिरम्भोमुचः
सम्भूयापि विधातुमस्य रजसः स्तौमीत्यमप्यक्षमाः।।

486. किं ब्रूमो जलधेः श्रियं स हि खलु श्रीजन्मभूमिः स्वयं
वाच्यः किं महिमापि तस्य हि खलु द्वीपं मही विश्रुतिः।।
त्यागः कोऽपि न तस्य बिभ्रति जगद्यस्यार्थिनोऽप्यम्बुदाः
शक्तेः किं च कथाऽपि यस्य भवति क्षोभे न कल्पान्तरम्।।

ततोऽन्यापदेशव्रज्या

487. अये मुक्तारत्न प्रमर बहिरुद्योतय गृहान्
अपि क्षोणीन्द्राणां कुरु फलवतः स्वानपि गुणान्।
किमत्रैवात्मानं जरयसि सुधाशुक्तिकुहरे
महागम्भीरोऽयं जलनिधिरिति त्वां गणयति।। - मुरारेः

488. स्वप्रत्या कलितप्रभावविभवे सर्वाश्रयाम्भोनिधौ
वासो नाल्पतमः फलं यदपरं दोषाय मे को वने।
शम्बूकोऽपि यदत्र दुर्लभतरै रत्नैरनर्घैः सह
स्पर्धामेकनिवासकारणवशादेकान्ततो वाञ्छति।।

489. पद्माकरः परिमितोऽपि वरं स एव
यस्य स्वकामवशतः परिभुज्यते श्रीः।
किं तेन नीरनिधिना महता तटेऽपि
यस्योर्मयः प्रकुपिता गलहस्तयन्ति ।। – दामोदरस्य

490. यद्वीचीभिः स्पृशसि गगनं यच्च पातालमूलं
रत्नैरुद्योतयसि पयसा यद्धरित्रीमिव त्वम्।
धिक्तत्सर्वं तदखिलनिधेर्यद्विमुच्याश्रुधारा-
स्तीरे नीरग्रहणरभसैरध्वगैः सञ्जितोऽसि।।

491. श्रुतं दूरे रत्नाकर इति परं नाम जलधे-
र्नचास्माभिस्तृष्णानयनपथगम्यस्य मणयः।
पुरो वः सम्प्राप्तास्तटभुवि सलीलांशुवसता-
मुदग्राः कल्लोलाः स्फुटविकटदंष्ट्राश्च मणयः।।

492. व्याप्याशाः शयितस्य वीचिशिखरैरुल्लिख्य खं प्रेङ्खतः
सिन्धोर्लोचनगोचरस्य महिमा तेषां तनोत्यद्भुतम्।
संश्लिष्टाङ्गुलिरन्ध्रलीनमकरग्राहावली नीरदा
यैर्नायं करकुण्ठितोदरलघुर्दृष्टो मुनेरञ्जनौ।। –अभिनन्दस्य

493. उपाध्वं तत्पन्था: पुनरपि सरोमाङ्गतिलकं
यदासाद्य स्वच्छं विहरति विलीनक्लमभरा।
इति स्तुक्ष्मा पारेर्जठरमकरैः कृष्णपयसो
न वृत्तिः कल्याणी न पुनरवतारः कथमपि।।

494. कस्य दृष्टिर्न क्षिपयसि न पयसि तव कथय के निमज्जन्ति।
यदि सन्मार्गजलाशय न क्रीडनक्रोडमधिवसति।। -वीरस्य

495. अये वारां भर्तुः कतिपयपयोविन्दुविभवै-
रमीभिर्या गर्वं व्रजति रसने पाहि कृतिनः।
न किं लोपामुद्रासहचरकरक्रोडकुहरे
भवान् दृष्टः क्लिष्टः प्रबलजलजं तु व्यतिकराः।।

496. रे पद्माकर यावदस्त्रिभवतो मध्यं पयः पूरितं
तावच्चक्रचकोरकङ्ककुररश्रेणीः समुल्लासय।
पश्चात्त्वं समबद्धकोटचटुलत्रोटी पुटव्याहति-
त्रुद्यत्कर्कटकर्परव्यतिकरैर्निन्दास्पदं यास्यति।।

497. शेते यत्र हरिर्विशन्ति गिरयो मज्जन्ति दिग्दन्तिनो
मत्स्याः सन्ति तिमिद्मलप्रभृतयो गर्भं दधत्यम्बुदाः।
यस्या येन खरांशुशीतकिरणा उन्मज्जतोन्मज्जतो
....[1]

498. ....[2] वेलातटे शाखिनां
यल्लक्ष्मीरनपायिनी भगवती माहात्म्यमस्यैव तत्।
एतस्मिन् क्षुभिते तु वीचिचलनैर्विश्वं निपीय स्थिते
सूर्याचन्द्रमसोरपीहनकथा केऽमी तटान्तक्लमाः।। -धातोकस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

499. ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीः पयो मानुषी
मुक्तौ द्याः सिकताः प्रवाललतिका शैवालसम्भासुधा।
तीरे कल्पमहीरुहः किमपरं सर्वत्र नामाम्बुधे-
र्दूरात् कर्णरसायनं निकटतस्तृष्णापि नो शाम्यति।।

500. एतस्माज्जलधेर्जलस्य कणिकाः कश्चिद् गृहीत्वा ततः
पाथोदाः परिपूरयन्ति जगतीं रुद्धा सुधावारिभिः ।
अस्मिन् मन्दरकूटकोटिघटनाभीतभ्रमत्तारकाः
प्राप्यैकां जलमानुषीं त्रिभुवने श्रीमानभूदच्युतः।।

501. दूरीभूतरतिश्चिरं मरकते मुक्तासु मुक्तस्पृहः
सावेदिन्दुमनीलभास्वरमणित्यक्तादरो विक्रमे।
त्वं संसेव्य समुद्रसंप्रतिपुनर्दृष्टः स्वभाग्यक्षयः
क्षोणीहंसकलानिषातसुलभामभ्यर्थये शुक्तिकाम्।। -इन्द्रदेवस्य

502. उत्साही परमेक एव जलधेर्यत् पूर्ववैरस्मृतौ
गर्जत्युद्धृतसिंहवाडववपुः क्रोधानलो दीपितः।
आस्थानां स्तुतयोर्ददत्प्रतिमुहुः कल्लोलहस्तैव सा
बन्धे सम्बलिवासवारिवलनः पातालयोर्धावति।। -वर्धमानस्य

503. सत्यं समुद्रमहिमानुगुणातरेयमौर्वानलोऽपि जलदेऽपि तवानुकम्पा।
एतत्परं विगणयत् क्व न रागमेहि विश्वोपकारि न विनाशि जलं करोति।।

504. यत्क्रूरैर्मकरैः क्षणो न गगनं पातालमूलं क्षणा-
दुल्लोलाः कलयन्ति यस्य विषमाः त्रातुं हि मौर्वानलः।
यत्रासौ विषतस्तवास्तु चरितं दूरे न सांयात्रिकः
त्रातुं साहसिकत्वमेव मनसः कम्पायनः कल्पसे।। -उमापतेः

505. देवासुरैरकरुणैः प्रसभेव ताव-
दुच्चैःश्रवप्रभृतयोऽपि हृता महाब्धेः।
अम्भः कथञ्चिदपि यत्परिशिष्टमासीत्
पीतं कथं तदपि कुम्भसमुद्भवेन॥

506. बद्ध एष मथितोऽयमुदन्वान् लङ्घतोऽयं स्वयमेव निपीडितः।
अत्र स ज्वलति सन्तमौर्वः सर्वथा महतेव विपत्तिः वाडवः॥

507. विस्तारो यदि नेदृशो न यदि तद् गाम्भीर्यमम्भोनिधे-
र्नस्याच्छायसि सर्वसत्त्वविषयस्तादृग् दयानुग्रहः।
अन्तः प्रज्वलता पयांसि दहता ज्वालावलीं मुञ्चता
के न स्युर्वडवानलेन बलिना भस्मावशेषीकृताः॥ - केशवस्य

508. तिष्ठन्त्यत्र महार्घरत्ननिचयाः सुस्थेह गम्भीरता
मर्यादेह कृता नयैव महती भातीह धैर्यस्थितिः।
सोऽप्यस्तीह महोदधौ भगवति ज्वालाकरालाकृति-
र्दुवारप्रसरः शिखीजलकरः शङ्के किमप्यद्भुतम्॥ -शङ्करदेवस्य

509. सप्ताप्यम्बुधयो धराधरशतं विश्वस्तदैव क्षणं
सम्भूयापि न तत्र कुम्भजमुनेः प्राणाहुतिं तर्पति।
यद्यस्यापि मृषा निषेषणघृणा द्राक् पीतवान्नोदधिं-
प्रभ्रश्यज्जठराशुशाणिककणो जागर्त्ययं वाडवः॥ - चित्रपस्य

510. अयमलघुषिपाकस्फारजिह्वाकलापो
ज्वलति हि दिनमध्ये वाडवो हव्यवाहः।
मुहुरुपचितसारो वारिभिर्निम्नगानां
त्रिभुवनमपि किन्न प्लावयत्यम्बुराशिः॥ -धर्मपालस्य

511. धिग्वाडवं दहनमर्थितयाचिपक्ष-
मत्येति यः स्वजठरप्रतिपूरणाय।
धिक्कारिराशिमपि वस्तु तथा गतस्य
शत्रोर्जलैरपि न पूरयतेऽभिलाषम्।। -केशवाचार्यस्य

512. तावद् व्याप्तदिगन्तरोऽयमपरे श्रीकौम्भसामाश्रयो
गम्भीरोऽयमहो पतिश्च सरितामप्येष रत्नाकरः।
यावत्कुम्भसमुद्भवेन मुनिना सावज्ञमुत्पश्यता
नैराशो स हि सागरः करपुरीपात्रादरे शायितः।। -शङ्करदेवस्य

513. वन्द्यं तज्जरुरं समीनमकरग्राहाकुलस्तोमधिः
पार्श्वापार्श्वमपूरितान्तरवियद् यत्र स्वनन्भ्राम्यति।
अन्यः कोऽपि स कुम्भसम्भवमुनेरास्तां शिखी जाठरो
यं सञ्चित्य दुकूलवह्निसदृशः सन्दृश्यते वाडवः।। -श्रीकेशवाचार्यस्य

514. भूयो रत्नानां निवसतिश्चोदधिर्दुर्धरो यो
लोपामुद्रादयितमपहायाञ्जलौ कस्य दृष्टः।।
....
....[1]।। -शङ्करस्य

515. अयं बद्धोऽस्माभिर्जलधिरिति दोदर्पदलितं
ददत्यन्तर्मोदं स्फुरदधरबिम्बे रघुपतौ।।
मुनिः कश्चित्तिर्यग्वलितवदनार्थस्थितसुधा-
रसार्द्रं नीरक्ताङ्गुलिपुलकमैक्षिष्ट निभृतम्।। -वासुकेः

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

अथ यशोव्रज्या

516\. देव स्वस्ति वयं द्विजास्तत इतस्तीर्थे प्रतिष्ठा च वः
कालिन्दीसुरसिन्धुसङ्गमपयः स्नातुं समीक्षामहे।
तद्याचे महिसप्तविष्टपशुचीभावैकतालव्रतं
संयक्षस्व यशः सितासितपयो भेदाद् विवेकोऽस्तु वः॥

517\. किं वृत्तान्तैः परगृहगतैः किन्तु नाहं समर्थ-
स्तूणी स्थातुं प्रकृतिचपलो दक्षिणाभ्यः स्वभावः।
गेहे गेहे विपणिषु तथा चत्वरे पानगोष्ठ्या-
मुन्मत्तेव भ्रमति भवतो वल्लभा हन्तकीर्तिः॥ -विद्यायाः

518\. सा चद्रादपि चन्दनादपि दरव्याकोषकुन्दादपि
क्षीराब्धेरपि शेषभोगिफणिनश्चण्डीसहस्रादपि।
कर्णाटी सितदन्तपत्रमहसोऽप्यत्यन्तमुद्योतिनी
कीर्तिस्ते भुजवीर्यनिर्जितरिपोर्लोकत्रयं भ्राम्यति॥ -वार्तिककारस्य

519\. त्वद्यशो राजहंसस्य पञ्जरं भुवनत्रयम्।
अमी पानकरङ्काभाः सप्तापि जलराशयः॥ - डिम्बोकस्य

520\. यत्क्षारञ्च मलीमसञ्च जलधेरम्भस्तदम्भोधरैः
कृत्वा स्नाप्य च निर्मलञ्च निहितं यत्नेन शुक्तौ तथा।
येनानर्घ्यतया च सुन्दरतया चेदं यशोभिस्तव
स्पर्धामेत्य विराजते ननु परीतामोऽस्तु ते मौक्तिकः॥ -अचलसिंहस्य

521\. दृष्टं सङ्गरसाक्षिभिर्निगदितं वैतालिकं श्रेणिभि-
र्न्यस्तं चेतसि सङ्गमैः सुकविभिः कर्णेषु सञ्चारितम्।
उत्कीर्णं कुशलैः प्रशस्तिषु सदा गीतिञ्च नाके सदा
दारेरुज्जयनीभुजङ्ग भवतश्चन्द्रावदातं यशः॥

522. उत्कल्लोलस्य लक्ष्मीलवणजलनिधिर्लङ्घितः क्षीरसिन्धोः
को विध्यः कश्च गौरीगुरुरिति मरुतामभ्युदस्तौ विवेकः।
नीतीकर्कत्वमर्कप्रवहणहरयो हारितोत्सङ्गलक्ष्म्या
राजन्नुद्दामगौरै रजनिचरवनी वल्लभस्त्वद्यशोभिः।। - अभिनन्दस्य

523. स्वस्ति क्षीराब्धिमध्यान्निजदयितभुजाभ्यन्तरस्थाब्जहस्ता
क्ष्माया मक्ष्यामकीर्तिः कुशलयितमहाभूभुजं भाजराजम्।
क्षेमं मन्ये युगान्तावधि तपतु भवान् त्वद्यशोघोषणाभि-
र्देवीनिद्रादरिद्रः स सफलयतु हृदिर्यो हि वर्हिर्ममेति।।

524. त्वत्कीर्तिर्जातजाड्येव सप्ताम्भोनिधिमज्जनात्।
प्रतापाय जगन्नाथ याता मार्तण्डमण्डलम्।।

525. का त्वं कुन्तलमल्लकीर्तिरहह क्वासि स्थिता न क्वचि-
त्सख्यस्तास्तव कुत्र देव वद वा लक्ष्मीस्तथा कान्तयः।
वाग्याता चतुराननस्य वदनं लक्ष्मी मुरारेरुरः
सन्निर्मण्डलमैन्दवं मम पुनर्नाद्यापि विश्रामभूः।।

526. आसीदुप्तं यदेतद्रणभुवि भुवता वैरिमातङ्गकुम्भा-
भ्युक्ताबीजं तदेतत्त्रिजगति जनयामास कीर्तिस्त्रयं ते।
शेषो मूलं प्रकाण्डं हिमगिरिरुदधिर्दग्धपूरालवालं
ज्योत्स्नाशाखाप्रतानः कुसुममुडुचयो यस्य चन्द्रः फलञ्च।।

527. अद्य स्वर्गवधूगणे गुणमयस्त्वत्कीर्तिमिन्दूज्ज्वला-
मुच्चैर्गायति निष्कलं किमदशामादास्यते चन्द्रमाः।
ग्रीवाकर्णललाटमुक्तयवसो ग्रासाभिलाषो वद-
स्वाभिन्नं क्व मृगः कियन्ति दिवसाऽन्ये तस्य वर्तिष्यते।।

528. अभयमभयं देव ब्रूमस्तवासि लतावधूः
कुवलयदलश्यामागतो रुरस्थलशायिनी।
समरसुलभां कीर्तिं भव्यामसूत यशस्पशा-
वपि वमयितुं रागादाशा भ्रमत्यखिलञ्जगत्।। -अमरसिंहस्य

529. यामावृणोति धरणीतलमातनोति
पातालमूलतिमिराणि तिरस्करोति।
हारावली हरिणलक्ष्महराट्टहास-
हेरम्बदन्तहरिशङ्खनिभं यशस्ते।।

530. देवस्त्वद्यशसि प्रसर्पति समैर्लक्ष्मीसुधोच्चै रवः
चन्द्रैरावतकौस्तुभस्थतिमिराण्यन्यच्च दुग्धोदधौ।
किन्त्वेकः परमस्ति दूषणकणो यन्नोपयाति भ्रमात्
कृष्णं श्रीः शितिकण्ठमद्रितनया नीलाम्बरं रेवती।। -कविराजस्य

531. ऐरावणन्ति किरणाः फणिनोऽप्यशेषाः
शेषन्ति हन्त विहगा अपि हंसितारः।
नीलोत्पलानि कुमुदन्ति च सर्वशैलाः
कैलाशितुं व्यवसिता भवतो यशोभिः।।

532. रामः सैन्यसमन्वितः कृतशिलासेतुर्यदम्भोनिधेः
पारं लङ्घितवान् पुरा तदधुना नाश्चर्यमुत्पादयन्।
एकाकिन्यपि सेतुबन्धरहिता सप्तापि वारान्निधीन्
हालाभिस्तव देव कीर्तिरखिला यस्मात्समुल्लङ्घते।।

533. न चेत् चित्रं यत्ते विततकरवालोग्ररशना
महीभारं वोढुं भुजभुजगराजः प्रभवति।
यदुद्भूते नैदं नवविषलतातन्तुशुचिना
यशोनिर्मोकेन स्थगितमवनीमण्डलमभूत्।। –संहरश्रियः

534. शेषे कैलाशशैलस्तदुपरि वृषभस्तस्य पृष्ठे पुरारिः
तस्मिन्निन्दुः सितांशोरुपरि सुरसरित्पुण्डरीकाणि तस्याम्।
एतानि त्वद्बलौधभ्रमिनमदरतिक्लान्तभोगीन्द्रभोग–
भ्रंशीनि त्वद्यशोभिः सह नहि तुलना देव गन्तुं क्षमन्ते।। –गोवर्धनस्य

535. भागीरथीनिर्झरशीकराणां
वृन्दानि निन्दन्ति भवद्यशांसि।
तैरेव मन्ये धरणीकृतोऽयं
हिमालयो नाम नगाधिराजः।।

536. क्षीरोदीयन्ति सद्यः सकलजलधयो वासुकीयन्ति नागाः
कैलाशीयन्ति शैला दिवि च दिविषदः शङ्करीयन्ति सर्वे।
शोष्माकीर्णे समन्तात्प्रसरति सुतरां देवकीर्तिप्रताने
साघोषा का च भूमाः किमिति न सहसा मौक्तिकीयन्ति सर्वाः।।

537. लक्ष्मीस्ते सुभगा न मुञ्चति सदा क्षोणीन्द्र वक्षस्थलं
वक्त्रस्था च सरस्वती प्रकुपिता कीर्तिर्दिगन्तं गता।
स्वातन्त्र्यं नहि गीयते क्वचिदपि स्त्रीणामिति व्याकुलं
तामन्वेष्टुमिव प्रतापसहितं पश्चाद्ययौ ते यशः।। –पञ्चाननस्य

538. कीर्तिस्ते नृप दूतिका मुररिपोरङ्के स्थितां भारतीं
माञ्चाकृष्य ददौ तवेति गिरिशः श्रुत्वार्धनारीश्वरः।
ब्रह्माभूच्चतुराननः सुरपतिश्चक्षुः सहस्रं दधौ
स्कन्दो मन्दमतिश्चकार न करस्पर्शं स्त्रिया शङ्कितः।। -कालिदासस्य

539. यस्याश्चर्यनिधेर्यशो जलनिधौ विद्योतदिङ्मण्डले
रोदस्योपरि पूरणव्यसनिनि व्योम प्रतिस्पर्धते।
दिङ्नागैर्व्यसनायितं दिनकृता दीप्तेन रत्नायितं
ताराभिः सफलायितं हिमरुचा हिण्डीरपिण्डायितम्।।

540. क्ष्माचक्रं कियदेकमेतदवनिप्राचीरतीरं कियद्
ब्रह्माण्डञ्च कियत्कियन्ति भुवनान्याकाशमेतत्कियत्।
जङ्घालाः कलयन्तु नाम भवतः स्फूर्जद्यशोवर्तिकाः
पर्यन्तं मम दुन्दुभेर्यदि पुनर्जानन्ति जानीमहे।।

541. श्रीरत्नानभिरार्जितार्जितयशः संशुद्धमुक्तामणी-
मादायैव विधिर्विधित्सुरधुनी हारं त्वदीयैर्गुणैः।
नीरन्ध्रा नवलोकयानवहिते तथ्यं गुणानां भवेत्
तेऽपि स्वे कुशलाङ्गणे मम किरस्तास्ताः कुतस्तारकाः।।

542. कुन्दानां कुसुमालिकेतकरजे मुक्तारविन्दं विषं
कैलाशः कुटजाङ्कुराणि करकाकान्तिस्मितं कौमुदी।
किञ्चेन्दोः किरणाः करेणुदशनाः कर्पूररेणुच्छटा-
स्त्वत्कीर्तेरिदमेकदेशकथनं कार्यन्नु जानाति कः।।

543. वीरक्षीरसमुद्रसान्द्रलहरीलावण्यलक्ष्मीजुषः
त्वत्कीर्तेस्तुलनां कलङ्कमलिनो धत्ते कथं चन्द्रमाः।
स्यादेवं त्वदरातिशौधशिखरप्रोद्धूतशस्याङ्कुर-
ग्रासव्यस्तमतिः पतेद्यदि पुनस्तस्याङ्कशायी मृगः।। -हनुमतः

544. भ्राम्यन्ती गिरिराजभूपरिसरे सर्वस्वभूता श्रुतेः
क्रोडे द्वीपवती विधाय परितो यान्ती सदा सागरम्।
त्वत्कीर्तिः सुरनिम्नगा च तदुभे तुल्ये विशेषत्विषा
ब्रह्माण्डात् पतति स्म सा तव पुनः कीर्तिः समारोहति।।

545. त्वत्कीर्तिः शशिनः समीपमगमत्कान्तिप्रतिस्पर्धया
स्पर्शात्तस्य कलङ्किनः पुनरियं स्नातुं गता चाम्बुधिम्।
तत्पीतं कलशोद्भवेन मुनिना पीतोज्झितत्वात्पयः
पुण्यं ब्रह्मकमण्डलोः कलयितुं ब्रह्माण्डमभ्युद्ययौ।।

546. दृप्यद्वैरिविलासिनीजनमुखाम्भोजानि सङ्कोचयन्
नेकः सज्जनकैरवाणि सकलान्युद्भावयन्नंशुभिः।।
मद्दारिद्र्यमखण्डितंस्तु भवता गायन्ति यल्लाञ्छनं
जातस्त्वद्भुजसागरादयमसौ जीयाद्यशश्चन्द्रमाः।।

547. मान्यो राज्ञामिहाज्ञावशगवसुमतीधेनुदोहोपदेष्टा
वैश्याश्चापाग्रहेलाहतिविषयसमुत्सारिताः शैवशैलः।
यस्योद्गार्यभ्युदारां विकटतटदरीमारुतापूर्णरन्ध्र-
व्याकूजत्कीरकालीमुखरितकटकः कीर्तिमद्यापि विन्ध्यः।।
- योगेश्वरस्य

548. निःसृत्याहवसागरादथ पुनः निःसृत्य पृथ्वीतलं
गत्वाधो हिमशैलमीश्वरशिरः सीतांशुलेखामपि।।
गङ्गैव स्मृतजल्पभूमिरमरैः साश्चर्यमालोकिता
कीर्तिस्ते प्रतिलोमलङ्घितवियद्ब्रह्माण्डमारोहति। -वाचस्पतेः

549. कैलाशे च हिमालये च चरणौ विन्यस्य याभ्यां दिवं
त्वत्कीर्तिर्यदभूत्समागमलवस्तेनानयोः पाण्डिमा।
तस्या एव सुदूरनिर्गमवशाद्यः कुक्रमप्रच्युतः
प्रस्वेदाम्बुकणाकृतिः स्फुरति ना किञ्चैव दुःखोदधिः।।

550. लीलालोलकराङ्गुलीहतरवाद् वीणागुणप्रोञ्चर-
द्गान्धारध्वनिसंवलन्मृदुकलस्निग्धस्वरोद्गारिभिः।।
लोलन्मौलिभिरर्धमीलतनुना नेत्रैर्वलद्भ्रूलतै-
र्गीयन्ते गगने चरैः सुरपतेरग्रे भवत्कीर्तयः।। -सुवाहस्य

551. भोगीन्द्रः प्रमदातुरङ्गगृहिणी सङ्गीतगोष्ठीषु ते
कीर्तिर्देव शृणोतु विंशतिशती यच्चक्षुषा वर्तते।
वक्त्रीभिः सुरसुन्दरीभिरभितो गीतान्तकर्णद्वयी
दुस्थः श्रोष्यति नाम किं स हि सहस्राक्षो न वा चक्षुषा।। -मुरारेः

552. दिङ्नागैः कमठाधिपेन फणिनां नाथैर्न यत्नाच्चिरं
व्यूढा यावद् भीमरेण नियतं नास्त्येव भेदोत्तरम्।
त्वत्कीर्तिः श्रुतिविस्मयेन तु यदि प्रत्यङ्गरोमाञ्चिता-
स्ते धुन्वन्ति शिरांशि किं खलु तदा भावीति न ज्ञायते।। -धातोकस्य

553. त्वत्कीर्त्या असकृज्जगन्ति रभसाद् देव भ्रमन्त्याश्चुत-
स्तातं कस्तु हिमांशुरस्खलदियं मुक्तावली तारका।
अभ्रस्यालघुशुभ्रमम्बरमिदं व्योमाङ्गणे कौमुदी
तच्चिन्वन्नयमेषितः सहचरः सूर्यः प्रतापस्तवः।। -प्रियाकस्य

554. आशाः पृष्ठगता विधाय तदनुत्यक्तो सुवर्णाचलं
यद्गृह्णाति जगत्त्रयं तव गुणैः स्यूतां त्रिदण्डीमिमाम्।
तेन प्रव्रजितेन तत्र भवती कीर्तिस्तव भ्राम्यति
ब्रूहि त्वं विदिताखिलाञ्च यदसौ नासादितं प्राप्स्यति।।

555. अनन्तासौ कीर्तिः करिमुमुदराला क्षितिपते
त्रिलोकीयं क्षुद्रा तदिह कथमस्याः स्थितिरिति।।
सुधेयं वः शङ्का कलयति हि कं दर्पणतलं
विशाला किं तत्र स्फुरति न करीन्द्रप्रतिकृतिः।। -पञ्चाननस्य

556. यस्याधो गगनं रसातलमुपर्यम्भोधरोऽभ्यन्तरे
यत्प्राक्पश्चिमदक्षिणोत्तरदिशः कृत्वान्यथा वर्तते।
यस्य ध्वान्तमनुष्णरश्मिरुचयो लीनास्तथार्कोपला-
देव त्वद्यशसोऽद्भुताद्भुतमतस्तस्य स्तुतौ के वयम्।।

557. आचन्द्रार्कविसर्पि यस्तव यशोराशेरसेव्य श्रिया-
मप्राप्य प्रतिमध्वतामपि वरप्रत्याशया सेवते।
हंसो ब्रह्म पदं वृषस्त्रिनयने देवेन्द्रमुच्चैश्रवाः
शेषा विष्णुपदाम्बुजं गिरिसुता पादद्वयं केशरी।।

558. यत्कम्बोः क्रकचावदारणमयं शेषस्य मुल्लीमपि
क्लेशश्चन्दनशाखिनामपि वने निर्वासनप्रक्रिया।
पूर्णेन्दोर्मुखकालिमा विधितिरस्कारेण यद् भ्रामणं
तन्मन्ये विधिना भवद्भुजयशः स्पर्धासु दण्डः कृतः। -कविशेखरस्य

559. देवैर्दुग्धपयोधिपाथिसि पुरा चैतां सुरत्यादित-
स्तस्याश्चर्यमुदेति कारणगुणात् सर्वत्र कार्ये गुणः।
एतच्चित्रमपारपौरुष तव प्रौढारवीणां गणाः
नेत्रेन्दीवरकज्जला विलपयो राशेर्यशश्चन्द्रमाः।।

560. कीर्तिः कुमुदकर्पूरकरकाकानिति तस्करी।
अभूदेवमकूपारपारसञ्चारिणी तव ।।

561. तथापि कोकिला रौति मधुमत्तः कुहूरिति ।
एका ....[1] ।।

562. एका गङ्गा प्रयागे मलयपरिमले चन्दनं मौक्तिकाली
कान्ताकण्ठे सुधांशुर्वियति सरसि च श्वेतमज्जस्तथान्ये।
कालिन्दी कालसर्पा मरकततरलो लाञ्छनं भृङ्गमाले-
त्येवं ते यत्र कीर्तिः परिणमति सुता तत्र शत्रोरकीर्त्या।। -श्रीरामस्य

563. ध्यायन्ती निर्माय नायकगुणं त्वा कीर्तिरम्भोनिधे
भ्राम्यन्ती विपिनान्तरेषु विरहव्यग्रेव पाण्डुच्छविः।
चन्द्रं निन्दति चन्दनं न सहते द्वेष्टि प्रतामैन्दवीम्
दूरादेव निराकरोति करकाकर्पूरहारस्रजः।। -शरणदेवस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

564. कण्ठे कालस्त्रिपुरविजयी पङ्किणीसिंहसिंह-
हन्ता वक्षः तव किल मृगश्चामिकायामिनीशः।
मन्था क्षोभैः क्षुभितमभितो वारि च क्षीरराशे-
स्त्वत्कीर्तीनां कथमपि तुला केलयो न स्खलन्ति।। -शालूकस्य

565. येनाकारि विरोधिसौधवडभीसंरूढशस्याङ्कुर-
ग्रासव्यग्रतुरङ्गकन्धररथप्रस्थानधस्तो रविः।
आसीनाः प्रतिपोतमार्गमभितः सांयात्रिकानां मुखा-
दाकर्ण्य प्रतिसिञ्जगुर्जलनिधौ यत्कीर्तिमन् देवताः।। -मुरारेः

566. मातुः खेदमयं ततान पृथुकः क्रोडेन धात्र्या प्रदौ
रागान्धस्तरुणः पुरन्दरपुरी स्तौत्यस्तकण्ठग्रहः।
ज्यायानप्यभिनत्पितामहपदं नित्या विनीतस्तनू-
जन्मा ते यशसां गणस्तदुचितब्रीडोऽसि तत्कीर्तनैः।।

-विद्रूपस्य

567. भूचक्रं कियदेतदावृतमभूद्यद्वा मनस्याङ्घ्रिणा
नागानां कियदास्पदं यदुरसा लङ्घन्ति गूढाङ्घ्रयः।
एकाहाद्य तनोरुदञ्चति कियन्मात्रं तदप्यम्बरं
यस्यातीव यशः क्रिया त्रिभुवनव्याप्यापि नो तृप्यति।।

-उमापतेः

568. अपनय मोहं राजनेन तवासिना
कटुकक्रीडाश्चर्यं कथं क्व च शिक्षितम्।
यदरिरुधिरं पायं पायं कुसुम्भरसारुणं
झटिति वमति क्षीराम्भोधिप्रवाहसितं यशः।। -दक्षस्य

569. अहो जम्बास्पृष्टैरभिनवमृणालै रसधुपैः
प्रसूनैरुत्फुल्लैश्च मृगमदैः श्रेणियमजैः[1]।
नवैर्मुक्ताहारैरनिहितमहानीलतरलै-
र्यशोभिस्ते श्रीमन् विदधति विदूषं दशदिशः॥ -सुरभेः

570. प्राप्तं केयं मृणालं कुमुदमपि जले दारितं कम्बुदित्वं
शून्याविद्धं च मुक्ताफलमलिभिरपि ध्वंस्यते पुण्डरीकम्।
श्रीखण्डं खण्डखण्डीकृतमिति विपदस्त्वद्यशः कान्तिचौरी-
भिर्द्रेष्टालोक्य भीतः क्षरदमृतरसश्चन्द्रमाः क्रन्दतीव॥

571. निस्पन्दं पर्वतेन्दुः क्षितितलमिलितः सर्पराजो द्विजाना-
मीशो नक्तञ्च विष्णुः सितवसनकृताच्छादनः सीरपाणिः।
भद्रः श्रीकोष्ठरूपो गलितमदमसीम्लानवक्त्राग्रदन्ती
वै लक्ष्मां वीक्ष्य कीर्तिं तव बहु किमभूद्भूतनाथस्तपस्वी॥

572. इन्दोर्लक्ष्मत्रिपुरजयिनः कण्ठमूलं मुरारे
दिङ्नागानां मदजलमसीभञ्जिगण्डस्थलानि।
अद्याप्युल्लीवलयतिलकश्यामलिम्नावलिप्ता-
न्याभासन्ते वद धवलितं किं यशोभिस्त्वदीयैः॥ -इति यशोव्रज्या

अथ मदनव्रज्या

573. कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानान्दिकः सूत्रधारः॥

-राजशेखरस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'श्रैर्मलजैः'।

574. अवगामिनि मन्मथसङ्गरकृशतनुः सुभटमपाटयत्[1]।
इति मुदेव लवङ्गलतालये कुसुमवृष्टिरकारि मरुद्गणैः।।

575. स जयति मदखेलोच्छृङ्खले प्रेमरामा
ललितसुरतलीलादैवतं पुष्पचापः।
त्रिभुवनजयसिद्धौ यस्य शृङ्गारमूर्ते-
रुपकरणमपूर्वं नाल्पमिन्दोर्मधूनि।। -उत्पलराजस्य

576. कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽग्रकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णो नयनः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः।।

577. अयं स भुवनत्रयप्रथितसंयमः शङ्करो
बिभर्ति वपुषाऽधुना विरहकातरकामिनीम्।
अनेन किल निर्मिता वयमिति प्रियायाः करं
करेण परिताडयन् जयति जातहासः स्मरः।। -वाचस्पतेः

578. हस्तन्यस्तशरासनस्य पुरतो देवस्य चेतोभुवो
ब्रह्मा त्वं क्व च केशवस्तृणमिव त्रैलोक्यमालोक्यते।
स्त्रीभावं गमितस्य यस्य शिरसा सिन्दूरमुद्रामिमा-
माज्ञामुद्वहते चराचरगुरुर्देवार्धनारीश्वरः।। - वसुकल्पस्य

579. वन्दे देवमनङ्गमेव रमणीनेत्रोत्पलच्छद्मना
पाशेनायतिशासिनासु निविडं संयम्य लोकत्रयम्।
येनासावपि भस्मलाञ्छितवपुर्देवस्त्रिशूली बला-
त्प्रेमक्रुद्धनगात्मजाङ्घ्रिविनतिक्रीडारते दीक्षितेः।। -ललितोकस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ श्लोकेऽस्मिन् छन्दोभङ्गः।

590. परिजनपदे भृङ्गश्रेणी पिका मृदुवदिनो
हिमकरसितच्छत्रं मत्तद्विपो मलयानिलः।
कृशतनुधनुर्बली लीलाकटाक्षशरावली
मनसिजमहावीरस्योच्चैर्जगन्ति जगज्जितः।। – विद्यापतेः

581. रत्या विश्लेषितः कामः प्रेमाविज्ञाय शम्भुना।
सङ्गतेन च पार्वत्या हृदि न्यस्तो मुदेऽस्तु वः।। – हंसभट्टस्य

582. गोविन्दनन्दनतया च वपुः श्रिया च
मास्मिन्नृपे कुरुत कर्मधियं कवीन्द्राः।
अस्त्रीकरोति मदनः समरे खलु स्त्री-
रस्त्रीजनः पुनरनेन विधीयते स्त्रीः।। – खण्डनस्य

583. सीताया हृदि यच्छिरीषकुसुमप्रायेण फाणोच्चकैः
पौलस्त्यस्य सदैव कुष्ठकुलिशे वज्राधिके वक्षसि।
आपुङ्खं निममज्ज तत्कथमहो नैतद्विजानीमहे
कः शाखी भुवि यस्य पुष्पमभवत्पुष्पायुधस्यायुधम्।।

584. गोधूली रजनी च मङ्गलविधौ कामस्य पाणिग्रहे
चन्द्रो राजत दर्पणं हि निनदं मेघस्य टङ्कारवः।
पुष्पाणाञ्च गणं हि तारकगणा विद्युच्छटालिम्पनं
क्रीडंस्तत्र महोत्सवे त्रिजगतीक्रीडां दधातु स्मरः।।

585. स्मितपरिचिता वृष्टिर्वाचामपाङ्गतरङ्गितं
नयनयुगलं पादन्यासा नितम्बभरालसा।
इह हि सुतनो लीलारसैः कृतं पदमङ्गके
वहतु मदनः शोभामात्रं धनुर्ध्वन्ययं प्रति।।

586. जयति कुसुममाला कार्मुका शक्तगुञ्जद्-
भ्रमरविततमौर्वीमुक्तपुष्पाङ्कुरास्त्रः।
त्रिभुवनकृतरक्षा विस्फुरद्दक्षयज्ञो-
न्मथनगिरिशधैर्यध्वंसनः पुष्पधन्वा।। -उमापतेः

587. नहि पञ्चापि भूतानि भवेयुर्भवभूतये।
यदि न स्युरमी पञ्च पञ्चेष तव सायकाः। -उमापतेः

588. बाणाः पुष्पमया धनुर्नवनवोन्मीलन्मृणालीमयं
मौर्वी तत्र च मञ्जुगुञ्जनमिलद्भृङ्गानि मालामयी।
अङ्गं व्योममयं मनोमयमहो लक्षं प्रदारः पुन-
र्मर्मच्छेदमयः स कस्य जगतां कार्यैषधन्वी स्मरः।।

589. शनैश्च तच्चन्द्रकरे विसर्पत्यन्तर्नभोमण्डलवारिपूरे।
समीनचिह्नग्रहशङ्कयैव विवेश लोकस्य मनो मनोभूः।।

590. आमूलं निदहामि तीव्रदहनैः कुर्यां कुठारैस्तिला-
नल्पाल्पं प्रखरोपणैश्च बहुशः पिष्टानये पङ्कताम्।
किं किं वा न करोमि तं यदि मते जानासि चेदुच्चतां
कः शाखा सखि यस्य पुष्पमभवत्पुष्पायुधस्यायुधम्।। -वल्लभस्य

591. पुष्पास्त्रं त्रिजटेशयामिममपि तत्कामी कृतो रावणः
सीतेशं करलोचनानलहतः पूर्वं गतो भस्मताम्।
बाणाः सन्ति शपामि तान् सखि न किं तिष्ठत्यमीषां तरुः
कः शाखी सखि यस्य पुष्पमभवत्पुष्पायुधस्यायुधम्।। -वल्लभस्य

592. वज्रं जीर्यति वज्रिणोऽपि च हरेश्चक्रं च चक्रं भवेद्-
दण्डं खण्डशतं यमस्य सुतरां पाशश्च नाशं गतम्।
लङ्केशोरसि यत्र मन्मथशरो भग्नो न मग्नोऽद्भुतं
कः शाखी सखि यस्य पुष्पमभवत्पुष्पायुधस्यायुधम्।।

-वल्लभस्य

593. शिशिररश्मिसुवाहिनि मारुते सपदि शीतभयादिव सत्वरः।
मनसिजः प्रविवेश वियोगिनां हृदयमाहितशोकहुताशनः।।

594. कामिनीकज्जलपङ्कादुत्थितो मदनमत्तवराहः।
कामिनीहृदयपल्लवमध्ये जीवनं तरलमाशु चकार।। -कस्यचित्

595. भ्रूसाङ्गा कृष्टमुक्ताः कुवलयमधुरस्तोमलक्ष्मीमुखायै
क्षेमीयाः कृष्णसारा नरहृदयभिदस्तारकक्रूरशल्याः।
ते दीर्घापाङ्गमुख्याः स्मितविशदिमलाः पक्ष्मलाः स्त्रीकटाक्षाः
पायासुर्द्योतिवीर्यास्त्रिभुवनजयिनः पञ्चबाणस्य बाणाः।।

596. मनसि कुसुमबाणै रेभिरे कास्त्रिलोकीं
कुसुमधनुरणङ्गस्ताडयत्यस्त्रिशद्भिः।
इति विततविचित्राश्चर्यसङ्कल्पशिल्पो
नमति मनसिजन्मा जन्मभिर्मानिताङ्गः।।

597. धनुर्माला मौर्वी क्वणदलिकुलं लक्ष्ममबला
मनोभेद्यं शब्दप्रभृतय इमे पञ्चविशिखाः।
न यान् जेतुं यत्त्वं त्रिभुवनमदेहस्य विभवः
स वः कामः कामान् दिशतु दयितापाङ्गवसतिः।।

598. याच्यो न कश्चन गुरुं प्रति नैव कान्ता
सेवाविलोकनविमोहनचुम्बनानि।
आत्मा निवेद्य मितरव्रतसारजेतॄन्
वन्दामहे मकरकेतनदेवदीक्षाम्।। - वल्लभस्य

इति मदनव्रज्या

इति प्रसन्नसाहित्यपद्यरत्नाकरव्रज्यायां तृतीयोल्लासः

* * * *

वसन्तव्रज्या

599. आरक्ताङ्कुरदन्तुरा कमलिनी नायामिनी भामिनी
स्तोकान्मुक्ततुषारमम्बरमणेरीषत्प्रगल्भं महः।
अप्येते सहकारसौरभमुचो वाचालिताः कोकिलै
रायान्ति प्रियविप्रमुक्तयुवतीमर्मच्छिदो वासराः।। –सङ्घश्रियः

600. वर्धन्ते मलयानिलस्य सुचिरादागच्छतः सम्प्रति
प्रत्युत्थानप्रियेव पान्थवनिता निश्वासवातोद्गमाः।
किञ्चित्सञ्चितपञ्चभास्वरकलासङ्कीर्णकण्ठोदरः
स्वैरं रौति च सम्भृतश्च समयोन्माद्याकुलः कोकिलः। –शङ्करदेवस्य

601. एताः प्रौढकुसुम्भकेसरभरव्यासङ्गपिङ्गालकाः
कर्णारोपितकर्णिकारकलिकालङ्कारलक्षश्रियम्।
कान्ताः सुन्दरि सिन्धुवारसुमनो विन्यस्य कण्ठस्रजः
शक्ताः पञ्चशराज्ञया समरताश्चेतः समुत्कर्षितुम्।। –नीलाम्बरस्य

602. शीतेनास्तमितं मनाक् स्पृहयति ग्रीष्मातपाभ्यां जनः
स्तोकस्तोकमुपैति हन्त मलयक्षोणीभृतो मारुतः।
चूतैः कोरकितं गतं हिमजलैर्देवोऽपि जेतुं जगत्
कन्दर्पस्तिलकप्रकाशसुभगो मौर्वी मुहुर्मूर्च्छति।।

603. कृशाङ्गी वामाङ्गैर्व्रजति तनुतां चैत्ररजनी
जनोन्मादो दीर्घो भवति कलकण्ठीकलरवैः।।
अथैतस्मिन् यूनां नियतमुपदेशात्स्मरगुरोः
नियामास्तद्द्वैतं भुवनमिदमाभाति सकलम् ।। – भासदासस्य

604. नवकुसुमरजोभिर्मण्डलीकृत्य भूमिं
मधुदिवससमुत्थं मन्मथं स्थापयित्वा।
पतितसुरभिपुष्पैः शाखिनः पूजयित्वा
पिककुलकलरावैस्तोत्रमुच्छोषयन्ति।। –वसन्तराजस्य

605. प्रावारः प्रीतिगात्रं प्रिय इव चरणोपान्तलग्नो निशान्ते
दूरादेवेक्षणीयः परपुरुष इवासक्तियोग्यो न बाहुः।
वैश्यानां हीनवृत्ते पुरुष इव रवौ मन्दमन्दानुरागः
सम्भुक्ता दाक्षिणात्यैर्युवतिरिव नरास्तानवं याति रात्रिः।।
–धोयीकवेः

606. पूर्वायाः सानुबन्धान् प्रवहति पवने देवदारुद्रुमाणाम्
श्रीखण्डार्द्रेश्च सत्योऽभ्युदयनिप्रान्तरं यः श्रमति तस्मिन्।[1]
अन्योन्याघातलीला वलयितत‍रुणा रोपभूमिश्च रोधे[2],
प्रत्युन्मीलन्ति मध्ये प्रतिदिवसनयो[3] व्योम्नि संमूर्च्छनानि।। –उमापतेः

607. निद्राशेषनिमीलितेक्षणतया प्राप्तो वसन्तोऽद्य मे
हर्षामर्षरसादसौ निजधनुः पञ्चेषुरन्विष्यते।
चूताः कोरकगर्भनिर्भरदरोद्भिन्तक्षुरग्रन्थयो
यद्यायाति च काकली पिकवधूकण्ठोपकण्ठं मुहुः।। –प्राज्ञभूतनाथस्य

608. एकद्वेषरसालशाखिषु मलागुल्मीरितं कुड्मलैः
कर्णाकर्णिकया मिथः कथममी घूर्णन्ति विश्वेऽध्वगाः।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पङ्क्तौ छन्दोभङ्गः।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'रोहीणि'।
3. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मुहुर्नयो'।

609. निद्रैः क्वापि किल श्रुतैरवि[1]कलव्यस्तान्यकुष्टारुतम्
विश्वक् मूर्च्छति दुःस्सहो विरहिणीगेहेषु हाहारवः।।

–पीताम्बरस्य

610. त्यजति पवनः सायं सायं हिमानि शनैः शनैः
सरसि सरसि प्रातः प्रातः नववनं नवमम्बुजम्।
तरुषु तरुषु ग्रन्थिर्ग्रन्थिर्मुकुलाङ्कुरदन्तुरो,
रुजति रुजति स्वस्थावस्थं जनं जनमुत् कथा।।

–अभिनन्दस्य

611. आदेष्टा दयितैकदैवतविधे भृङ्गस्य गुञ्जाधिपः
स्वाध्यायः पिकसामगस्य विरहिप्राणैकयात्राक्षणः।
मानव्याधिमहौषधं मृगदृशां सर्वावलोकोत्सवः
पुष्पाणामयमेव ते स्मरशरागाराधिकारी मधुः।। –उमापतेः

612. किञ्चित्तीव्रमये तमाहितरसः किञ्चिन्निदाघोदयः
किञ्चित्कोरति कन्दनं कमलिनी किञ्चित्समूढाङ्कुरा।
किञ्चित्कोकिलकूजितं च मधुरं किञ्चिन्मरुद्दक्षिणः
चेतस्त्वेकमकिञ्चिदुत्सुकमिदं तस्याः समुत्कण्ठते।।

613. साकन्दाकुरकोरकोदरभुवः सानन्दमिन्दीवरैः
पीयन्ते मधुविन्दवः सहचरीचञ्चूपुटास्वादिता।
किञ्चान्दोलितवीरुधो विरहिणां वृन्दानि मन्दानिलै–
र्वैलक्ष्यं त्रवपाणयः पिककुहूकारैर्हसन्ति क्रमाः।। – सूर्यधरस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'श्रुतमविष्ट'।

614. उत्पुष्पेष्वपि मञ्जसु प्रतिपदं पुष्यन्ति भूमेरुरः
सञ्जानेऽपि परिश्रमं न मदनः कोदण्डमुल्लञ्चति।
[1]...
....।। -शशिघोषस्य

615. उद्भिन्नं भूरुहाणां किसलयसकलैर्विद्रुमद्रौणिशौणै-
र्मृङ्नागानां तु बन्धी स्फुरति परिमलः कोऽपि पुष्पाङ्कुराणाम्।
उत्खेलत्कोकिलालीवहलकलकुहूबद्धकोलाहलाभैः
सिक्ता चोर्वी परागप्रवरपरुषिता विन्दुभिर्मारुरन्दैः।।

616. मुद्यन्मुक्ताविकल्पा वकुलसुमनसः स्वच्छनीलाश्मकाञ्ची-
संकाशा भृङ्गपंक्तिश्च्युतबलवलितं केसरं किंशुकाली।
गौरीणां केतकीनां दलमपि विगलत् काञ्चनान्तं सकान्तं
चिह्नैरेतैः प्रतीये मलयजपवनैर्नो प्रयुक्ता मधुश्रीः।।

617. व्योमक्रीडापि काली कलकलमुखरं चम्पकामोदवाही
वायुः शीतातपार्ती रजनिदिनकरो नावदन्ते मयूखाः।
आकीर्णं वारिपद्मैः क्षतकुसुमरजः पक्ष्मला भूतधात्री
भूतग्रामे निषिक्तः स्फुरति सुरभिणा कोऽपि शोभाविभागः।।

618. नैवेके वयमेव कोकिलवधूकण्ठोच्छलत्पञ्चम-
ध्वानाद्बोधितपञ्चमार्गणगुणास्फालेन लोमाश्रितः।
पश्यैते तरवोऽपि सुन्दरि जरत्पत्रव्यपानन्तरो-
न्मत्ता पाटलकोटिसम्पुटदलप्रादुर्भवत्कुड्मलाः।। विनयदेवस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

619. कान्तेन प्रहितो नरः प्रियसखीवर्गो निबद्धस्पृह-
चित्तेनोपकृतः स्मरो न सुमनाः स्पष्टं गतः पाणिना।
आमृष्टो मुहुरीक्षितो मुहुरहिप्रातो मुहुर्लोचितः
प्रत्यङ्गं च मुहुः कृतो मृगदृशा किं किं न चूताङ्कुरः।। -वाग्भटस्य

620. कान्ता हित्वा विरहविधुरारम्भखेदालसाङ्गी
मामुल्लङ्घ्य व्रजति पथिकः कोऽपि यद्यस्ति शक्तः।
इत्याशोकी जगति सकले पल्लवीचारिकेव
प्राप्तारम्भे कुसुमसमये कामदेवेन दत्ता।।

621. स्वस्ति श्रीमलयाचलान्स्मरसखः श्रीमान्वसन्तानिलः
क्रीडावेश्मसु कामिनः कुशलयद्येनाश्रवक्रीतरत्।
एषोऽहं मुदितानि कोकिलकलध्वानारवं प्राप्तवान्
युष्मामिः प्रियकामिनीपरिगतैः स्थातव्यमस्मादिति।।

622. मन्दं दक्षिणमर्दयन्ति पवनं पुंस्कोकिलव्याकुलं,
सङ्घूर्णन्ति वनस्थलीकिसलयोत्तंसैर्निषण्णालिभिः।
चन्द्रं सुन्दरयन्ति मुक्ततुहिनप्रावारया ज्योत्स्नया,
वर्धन्ते च विवर्धयन्ति च मुहुस्तेऽमीश्वरं वासराः।।

623. मुग्धाताम्रैर्नवकिसलयैः सम्भृतोदारशोभां,
प्रादुर्भूतभ्रमररमणी यौवनोद्भेदचिह्ना।
सीमन्तिन्यः कुसुमधनुषा वर्धसख्यस्य मासः
स्निग्धस्मेरैः मुखमधिगुणं दृष्टिपातैः पिबन्ति।। - वागुरस्य

624. शीलीमुखैरद्य मनोज्ञपक्षै-
विंषोपलैर्या दिवकज्जलाभैः।
नितान्तपूर्णायुतकुन्दकोषा,
विभान्ति घूणा इव मन्मथस्य।। -शुभाङ्गस्य

625. सपदि सखीभिर्निभृतं विरहवती स्नातुमत्र।
मज्जन्तो सहकारमञ्जरीणां शिखोऽङ्गभङ्गग्रन्थयः प्रथमे[1]।।
- राजशेखरस्य

626. चन्द्रः समुल्लसति कूजति कोकिलोऽपि
मन्दनिलो वहति हन्ति मनो मनोभूः।
चूतो दुनोति हृदयं नवमञ्जरीभि-
र्दूती गता न पुनरेति नमः शिवाय।।

ततो ग्रीष्मव्रज्या

627. विश्लेषो जनितः प्रियैरपि जनैरुज्जृम्भितं नालिकै-
र्मित्रेणापि खरायितं वरुणया दीर्घायितं तृष्णया।
गुर्वी वल्लभता जनैरधिगता दोषाकरः सेव्यते
हा कालः किमयं कलिर्नहि नहि प्राप्तः स घर्मोदयः।।

628. सर्वाशारुधिदग्धवीरुधि सदा सारङ्गवद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दूरुहि।
शुष्यन्स्रोतसि तप्तभूमिरजसि[2] धारायमानाम्भसि
ज्येष्ठे मासि खरार्कतेजसि कथं पान्थ व्रजन् जीवसि।।

1. मूलपाण्डुलिपौ अत्र छन्दोभङ्गः।
2. मूलपाण्डुलिपौ अत्र छन्दोभङ्गः।

629. गुरुर्गर्भारम्भः क्लमयति कलत्रं यदि भुंजः
समग्रोष्माचूडं पचति पिचुमन्दं च दिवसः।
इदानीं नीहारस्तिमितजगतः प्रीतिजनितां
निशाशेषो नित्यं नुदति मधुमासान्तमुखरः।। – राजशेखरस्य

630. सान्द्रं क्षीणप्रततविनतच्छिन्नभुग्नोन्नताभिः
प्रायः काश्मीरजरुचिजुषो दाववह्नेः शिखाभः।
वायुः सञ्चारिण इव शिखोद्यानने दिग्वधूनां
धूमोद्गारैरगुरुमलिनैः सान्तरान् पत्रभङ्गान्।।

631. शीतं श्रीखण्डकाण्डं निविडयति फणी भोगनालेन लीन-
च्छायावृक्षस्य मूले रचयति चमरी रम्यरोमन्थलीलाम्।
सोष्माश्मं मानुषीयं वितरति कमितो घर्मितस्याङ्कपालिं
केलीकस्तूरिकैणी प्रसरति चरितुं सारणिग्रन्थिपर्णा।। –राजशेखरस्य

632. दत्वा ग्रीष्मावतारे लिखितनिजयशोलाञ्छनं छत्रसूत्रं
ज्येष्ठामूलीयमासे जलमवटतटः प्लक्षयक्षप्रयासु।
आषाढामाद्यजानाः प्रथितगुरुतमान् ग्राहयत्यग्रहारे
साम्भः कुम्भं करम्भं नु मथित घटीं कर्करीं कर्कटीञ्च।।–योगेश्वरस्य

633. यानोन्मादयितः स्थितः परभृतव्यापाररम्यो मधु-
स्तावत्पुष्पवती हतास्मि विधिराजाताधुना नीरुजाः।
इत्थं पाटलभा विलप्य सुचिरं गच्छद्द्विरेफारवैः
शोकेनैव फलच्छलेन विधृता मूर्धा जटा कानने।।

634. ग्रीष्मार्तिच्छिदुरच्छदाः पथि पथिच्छायोपजातार्थिनो
भानौ भास्वदकाण्डचण्डमहसि प्रीणन्त्यमी शाखिनः।
उद्गच्छद्गतशब्दमागतमिलत्सुप्तं सराघूर्णित-
प्रोत्तिष्ठत्स्थितजाग्रदध्वगशतं स्वच्छोपभोग्यश्रियः।।

635. वाति स्वैरं परिसरमरुद् वस्त्रधूलीकदम्बः
स्त्रीणां स्तानामलकसुरभिग्रासससिन्धूपकण्ठः।
सद्यः सिक्ताः शयनसुखदा भूमयः प्राङ्गणानां
सेयं प्रादुर्भवति दिवसच्छेदरम्भाननश्रीः[1]।।- नीलाम्बरस्य

636. परिमलितदलानां बिभ्रतां कण्डशेषा-
मनुविपिनमिदानीं कालरम्यामवस्थाम्।
तलमवनिरुहाणां जर्जरच्छायमारात्
परिहरति कुरङ्गो जालमाशङ्कमानः।। - क्षमीश्वरस्य

637. पार्श्वाभ्यां शिरसा निमीलितदृशः कामं निमज्जक्रमा-
दंशो पृष्ठपुरश्च पक्ष्यति तलं गाढं स्पृशन्तौ मुहुः।
एते कुञ्चितजानवो नवजले निघ्नन्ति घर्माहता
भूयः पक्षपुटाभियातरभसां सम्पर्कणां पत्रिणः।।

ततो प्रावृट्-व्रज्या

638. उत्फुल्लार्जुनसर्ववासितपयः पौलस्त्यशङ्कामरुत्
प्रङ्खोलस्खलितेन्द्रनीलशकलं स्निग्धाम्बुदश्रेणयः।
धारासिक्तवसुन्धरासुरभयः प्राप्तास्त एतेऽधुना
घर्माभ्यो विषमागमव्यतिकरश्रीवाहिनो वासराः।। -भवभूतेः

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'पक्षीः'।

639. एणीयाति विलोक्य बालसुलभान् शय्याङ्कुरानिच्छया
छत्री कुड्मलकानि रक्षति चिराद्दण्डभ्रमात्कुड्मलम्।
बुद्धिर्धावति रुष्टकीटपटलश्रेणीशिखण्डीशिरो
दूरादेव वनान्तरं विषधरग्रासाभिलाषातुरः।।

640. गम्भीरं गर्जितेन त्रिभुवनविवरं व्याप्य भूकम्पदेनं
वाचीमाक्रम्य विष्वक् पथि पिबति पयो मेदुरे कालमेघः।
इत्थं धाराकदम्बस्तवकितगहनाः प्रोषितैरुन्मुमूले
मूर्च्छाश्यामायमाना यममहितगलैः कृष्यमाणा इवास्याः।। -बाणस्य

641. देवो वर्षत्यजस्रं मनिमुशलमहो साम्बु[1]धारासहस्रै-
श्शीतैः वाति प्रकामं बहलजलकणाक्षोददक्षे समीरे।
तिष्ठन्तो जीर्णगेहे बहविकलगलाहारिणि ग्रामनद्याः
संविष्टाः कुड्मकोणे कथमपि रजनीमध्वगाः प्रेरयन्ति।।-कस्यचित्

642. फुल्लद्वाराः कदम्बाः प्रसवमुकुलिता यावदेतेन हस्ता
निर्मुक्तव्यालनीलद्युतिनवजलदव्याकुला विन्ध्यपादाः।
काले कालाम्बुवाहाः कुलगगनगलद्वारिधाराकराणि
कादम्बामोदहृद्ये वहति च मरुति प्रेमबन्धानुकूले।।

643. तन्वीनां सुन्दरीणां स्तनकलशगलत्तारहारावलीना-
मग्रः कण्ठग्रहोऽपि व्यथयति हृदयं किं पुनर्विप्रयोगः।
[2]..
....-विद्यायाः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मम्बु'।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः न प्राप्यते।

644. मातर्मुञ्च शुचं सरस्वति शिवं कालिन्दि मन्दाकिनि
प्राप्तोऽस्मीति वतायुपर्णिततनुर्मेघोऽस्मि ते कौशिकि!
इत्येवं स्तनिताम्बरैरिव चलल्लीलावलानि द्विपां
घर्मान्ते मिलिताविलस्य जलदेनामापि कूलङ्कषा।। -राजोकस्य

645. नादोन्मादितदर्दुरैर्जलधरैः संसक्तमुक्ताम्मभसो
दात्यूहं कलतोर्मिभिस्तत इतो वाचालकुञ्जोदराः।
धाराजर्जरकेतकीपरिमला धारानिलैः प्रोषितैः
सोढव्याः कथमुद्धृता घनमसश्यामास्त्रियामाङ्गनाः।। -कस्यचित्

646. व्याप्तैर्वारिधरैरकाण्डमलिनैः कृत्स्नं वियन्मण्डलं
नाक्षोबन्धितशीतदीधितिरसौ नापि त्विषामीश्वरः।
भग्ना सैव मलीमसैः किमधुना निर्मातृमर्मान्तरं
यत्सालङ्करकाः किरन्ति यदमी मुञ्चन्ति रत्युत्कटाः।।

647. चूडावर्वरके निपत्य कलिकाभावं प्रदत्वाशिषा
कुण्डापातवितन्वनिद्रगृहिणीवाष्पाम्बुसंवर्धिताः।
निर्वृष्टेऽपि बहिर्घनेन विरमाभ्यन्तर्जनद्वेश्मनो,
लूतातन्तुतदिच्छिदो मधुपयः पिङ्गाः पयोबिन्दवः।। -वराहस्य

648. नेतुं वाञ्छति नीत एव दिवसं गर्भालसा वायसी
रक्ता नीपलता स्वभक्तविरसा स्वाजादिनिः पाटलीम्।
तेजः सम्प्रति संहरन्ति शिखिनो दग्धव्यपारङ्गता
जम्बूमामुकलादुपैति शनकैरासन्तपाकाम्पिकः।। -जलेन्द्रसेनस्य

649. मज्जून्वती वत्सरं पथिकवधूनिधने बहुपरितोषः।
जलद रजनीचरोऽयं तदिच्छलादद्य हसतीव।। -शङ्करदेवस्य

650. प्रावृट्कालप्रभवमशनिश्वानमम्भोधराणां
श्रुत्वा भूयः कुलिशपतते नाशये वावनीद्धाः।
पत्राभोगोच्छ्वसिततनुभिर्व्याप्तशृङ्गारकाशै-
रात्मानीडेऽपि दधतितरां सान्द्रवीरुत्प्रतापाः।। -विक्रमादित्यस्य

651. धारानिपातनवरो द्विजपञ्जरस्थ
दात्यूहडम्बरकरम्बितकण्ठकूजाः।
आडम्बकाण्डपटवारितसीकरेषु
धन्याः पिबन्ति मुखतामरसं वधूनाम्।। - श्री शुभाङ्गस्य

652. शीताम्भस्तिमिताः सृजन्ति सलिलान्यावद्धधारं घना-
स्तल्काराध्वनिमीलितानि नयनान्यस्येति निद्रागमः।
निद्रामुद्रितलोचने प्रतिगृहं मूकायमाने जने
निर्द्वन्द्वोच्छलदुच्चलद्दुरवैः कोलाहलिन्यो निशाः।।

653. केदारे नववारिपूरिततटे किञ्चित्कणाद्दर्दुरे
शम्बूकाण्डजपिण्डषाण्डरतरप्राप्तस्थलीवीरणे।
डिम्बादण्डकपाणयः प्रतिदिशं पङ्कच्छटा चर्चिता
शुभ्रश्शुभ्र इति भ्रमन्ति रभसां त्वं वापि मत्स्योत्सुकाः।।

654. समन्ततो विस्फुरदिन्द्रनीलमणिप्रभाविस्फुरितान्तराणि।
मर्त्यावतीर्णस्य विडौजसोऽयं मीलांशुकच्छत्रमिव प्रवाहः।।

655. एतस्मिन् मदजर्जरैरुपचितैः कञ्चूरवाडम्बरै-
स्तैर्नित्यं मनसो दिशन्ति निभृतं धाररवे मूर्च्छति।
उत्सङ्गे ककुभो निधाय रसितैरम्भोमुदां घोरयन्
मन्ये मुद्रितचन्द्रसूर्यनयनं व्योमापि निद्रायते।।

656. गम्भीराम्भोधराणामविरलनिपतत्वारिधारानिनादा-
न्निद्राती: हन्त साक्षाद्दृढगृहपटलै रूढकूष्माण्डवल्भ्यः।
दौर्भ्यामालिङ्गमाना जलधरसमये पत्रखण्डे निशायां
धन्याः श्रृण्वन्ति सुप्ताः स्तनयुगतरितारस्थला कामिनीनाम्।।

657. सुरपतिगिरिकारा घनपटलाक्रान्ततारकालोकाः।
लम्बपयोधरभारा पावृडियं वृद्धवनितेव।।

658. आसारोपरमे प्रगाढतिमिराः विस्मारयन्त्यो निशाः
पान्थस्त्रीमनसा स्मरानलकणा उत्तालशङ्कास्पृशः।
पिष्ठानां प्रसभं घनाघनघटासङ्घावृतो विद्युता
चूर्णाभाः परितः पतन्ति तरलाः खाद्योतकश्रेणयः।।

659. हस्तप्राप्यमिवाम्बरं विदधतः सर्वा इवाशातती
गर्जाभिः क्षणजर्जरीकृतघनानुत्तानधाररवाः।
क्वामग्नं स्थलमम्मिनामतितरो नामैकसौदामिनी-
नेत्रालोकविलोकिताखिलभुवो वर्षन्ति नक्तं घनाः।।

660. आक्रन्थाः स्तनितैर्विलोचनजलान्यश्रान्तधारद्युतिः
तद्विच्छेदतुरश्च शोकशिखिनस्तुल्यास्तडिद्विभ्रमैः।
स्वान्तर्मोदयिता मुखं तव शशी वृत्तिः समैरावयोः
तत्किं मामनिशं सखे जलधर त्वं दग्ध मे बोधनः।।

661. भुवां किमेता दिवमुत्पतन्ति
दिवाथवा भूतलमाविशन्ति।
चलाः स्थिरा वेति वितर्कयत्यो
धाराः कराग्रैरबलाः स्पृशन्ति।।

662. गायति हि नीलकण्ठो नृत्यति गौरीति तडित्तरलतारा।
आस्फालयति मृदङ्गं तदनु घनोऽयं महाकालः।।

663. काले वारिधराणामवनितया नैव शक्यते स्थातुम्।
उत्कण्ठितासि तरले नहि नहि सखि पिच्छिलः पन्थाः।।

664. स्वशितभुजगवेष्टितमभिनवमाभाति केतकीकुसुमम्।
आयसवलयालङ्कृतविषानभिवदन्ति नः पतितम्।।

665. मेघश्यामा दिशि प्रवृत्त .[1]......................तेजसि
श्रुत्वा हन्ति निमज्जदिन्दुमहसि प्रस्थानलीलारुषि।
पूर्णस्त्रोतसि शान्तचातकतृषि व्यालुप्तसूर्यत्विषि
प्राणान् पान्थ कथं दधासि निरसान्नेतादृशि प्रावृषि।।

666. क्षपालिङ्गादिविध्याद्रिमहालिङ्गस्तपयति धार्मिकः शुचिभिः।
जलदेन्द्रनीलशततोद्धृतैः स्पयति पयोभिः।।[2]

667. पिबति व्योमकटाहे संसक्तवलत्तडिल्लतास्सन्।
मेघमहामार्जारः सम्प्रति चन्द्रातपक्षीरम्।। -योगेश्वरस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते ।
2. पद्येऽस्मिन् छन्दोभङ्गः ।

668. आरोहवल्लीभिरिवाम्बुधारा राजीभिरार्द्रा निशि लम्बिनीभिः।
संलक्ष्यते व्योमवटङ्गमाभमम्भोधरश्यामदलप्रकाशम्।। –दक्षस्य

669. असौ नास्तीवेन्दुः क्वचिदपि रविः प्रोषित इव
ग्रहोडूनां चक्रं नभसि लिखितं प्रोण्डितमिव।
अहर्वारादिर्वा द्वयमपि विलुप्तं शुचिरयं
धनैर्वद्धव्यूहैः किमिदमिति घोरैर्व्यवसितम्।।

670. कामं कूले नदीनामुपरि च महिषीयूथनीलोपकण्ठे,
ग्राहन्ते सर्वदेवा अतितरशरभश्वासलोलावलाकाः।
अंशे विन्यस्तवीरो मृणमयमुरुघत्रण्डसंवित्कथञ्चित्,
कापोतं कौद्रवानां कवलयति कणान् क्षेत्रकोणैकदेशे।।

671. अयं सदाशाः परितः पिधत्ते,
रुणद्धि मित्रं वितनोति दुःखम्[1]।
विपन्नवं पल्लवयत्यजस्त्रं,
समन्ततो मेघचयः करोमि किम्? ।।

ततः शरद्व्रज्या

672. सेन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद्दधाना दिनखक्षताभम्।
प्रसारयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरप्यधिकं चकार।।

अथोपगूढे शरदाशशाङ्के प्रावृट् ययौ सान्ततडित्कटाक्षः।
कटाक्षसौभाग्यगुणोऽङ्गनानां भ्रज्यः परिभ्रष्टपयोधराणाम्।।

673. यद्यप्यहो शशिमुखी विमली वरश्रीर्वन्धूकपुष्परुचिराधरपल्लवापि।
धिग्मां तथापि गलितोरुपयोधरत्वादित्युच्चकैः शरदियं वहतीव तापम्।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'दुर्दिनम्' छन्दोभङ्गः।

674. ते हंसास्तिथिवत्सला जलरुहीकालेन पीतायुषां,
सञ्जीवौषधयो जराजलमुचां एते शरद्वत्सलाः।
येऽप्यभ्यागतखञ्जरीटसबलास्तोयाप्रसारक्रमाः,
स्तोकस्तोकतरङ्गितान्तपुलिनाः कर्षन्ति नद्यो मनः।।

675. रजः पादज्ञानां कुमुदसुमनो मण्डलभुवि,
स्मरश्चोच्चैर्मन्त्री किमपि जपतां हुङ्कृतिमयम्।
स्थिरे यूनां मानग्रहपरिहरे मूर्च्छितघनो,
द्विरेफाचार्याणां मधुकरपटीयान् कलकलः।।

676. अधः पश्यन् पार्श्वद्वयवलितशाची कृतगिराः,
शनैः पक्षस्थैर्यादिति मसृणचक्राकृतिगतिः।
चिराच्छिन्नस्तिर्यग् दुरिततरमाहारनिपुणो,
निपत्यैवाकस्माच्छलचरणमूर्धा निपतति।।

677. दूरात्प्रच्छः सनयचरणो नम्रलोलत्पतत्त्रिः,
कण्ठे नोच्चैर्मदकलरुचस्तोकवाचारचञ्चुः।
ईशाघर्मस्तिमितनयनन्यस्तसोत्कण्ठदृष्टेः,
किञ्चित्कालं नटति निकटे खञ्जरीटः प्रियायाः।।

678. मनोविनोदः स्यामीति तीक्ष्णं,
रविश्च सन्तप्त इवाचि सद्यः।
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः,
तोयः प्रसीदति मुनेरिव धर्मचिन्ता[1]।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ इत्थं पाठः प्राप्यते।
पङ्क्तिद्वयेऽपरं 'छन्दः', पङ्क्तिद्वयेऽपरं छन्दश्च। इदं विषमवृत्तम् ।

679. कामी दरिद्र इव शेषमुपैति पङ्क[1],

....

....

....।।

680. शुभ्राभ्रं गगनं क्वचित्प्रविकसत्काशावनाली क्वचित्,
तोयान्मुक्तमृणाग्रयं कजतिलाक्षेत्रान्तभूमिं क्वचित्।
किञ्च क्वापि चकोरचारुचरणन्यासाङ्कमुद्राश्रितो,
दृश्यन्ते तटिनीविमुक्तिपुलिनच्छेदा मनोहारिणः।। -सङ्ग्रामकस्य

681. किञ्चिद्यादति पीडुनादवसतः स्थैर्यं क्रमासादितै-
रन्योन्यस्य करावलम्बविधिभिः क्रामन्ति पन्थाः पथि।
शीर्यद्वेणुचलन्विपन्थनमपद्रष्टान्तदारूचये
शुष्यत्पूरगतिक्रमादुपचितोच्छाये जलात्सङ्क्रमः।। -धर्मपालस्य

682. आवर्तैः परिवर्तिता विषलता वाराविलासैः क्वचित्
स्रोतोभिः समतां गताः क्वचिदपि ग्राहा अभूता क्वचित्।
भ्रश्यत्स्वैरगतिक्रमोऽर्धपतितच्छेदावली दन्तुरा
जाताः सम्प्रति राजहंसयुवतीलीलाभुवो बालुकाः।

683. कान्तानां वदनस्य कान्तिमधुना धत्ते सुधादीधितिः
खेलाखञ्जनपङ्क्तयो मृगदृशां तन्वन्ति नैव श्रियम्।।
पद्मानि श्वसितस्य सौरभमभिद्रुह्यन्ति वासम्भुवा
अभ्यस्यन्ति च राजहंसवनिताः पीनस्तनीनां गतीः।। -वङ्गलक्ष्मीधरस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठः न प्राप्यते।

684. शनैः शान्ताहूतां सितजलधरच्छेदपुलिना
पुरस्तादाकीर्णाः कलविरतिभिः सारसकुलैः।
चिता चित्ताकारैर्दिशि विकचनच्छत्रकुमुदैः
नभः स्थाः स्पष्टं ते सरित इव दीर्घा दशदिशः।। -विशाखदत्तस्य

685. परावृत्ता हंसाः सपदि विततं कल्मषमपां
प्रसन्नः शीतांशुः प्रसृतपदकाः सूर्यकिरणाः।
दृशो दीर्घीभूता गगनमसिवर्णञ्च विपुलं
नियन्ता विन्ध्याद्रेर्विदितमुदितोऽसौ मुनिवृषा।। -योगेश्वरस्य

686. अयं मेघव्यूहे वलिनि परिपन्थिन्यपसृते
शरल्लक्ष्मा स्वैरं हसितमिव हर्षादविरतम्।
पयः पूरभ्रंशक्रमजलितसोपाननिरते
नदी तीरे धीरं चरति विशदः खञ्जनगणः।।

687. यस्मिन्नैष प्रभवति रविर्नाधिकारी कृशानु
र्निर्व्यापारद्युतिरुहुयतिः काकधातारकानी।
सद्यस्तातोश्चितवचनरानेकपालीकलालं
तन्मेघाद्यं तिमिरमधुना ध्वंसमत्येति भूयः।। -योगेश्वरस्य

688. पारावारे प्रक्रमपुलिनभ्युद्गमोत्तानपाण्ड-
लीलावर्तस्तिमितवलयव्यञ्चितो क्लेशनिम्ना।
क्रौञ्चीजानुद्वयसपयसामन्तरीपोदरेषु
स्वच्छा रेणिर्मदयति मनः शारदीनां नदीनाम्।। - अभिनन्दस्य

689\. उन्यश्रुवेजलवनाविव नापगाता
माश्यामसैकततरङ्गपरम्पराणि।
निम्ना वशिष्ठसलिलानि मनोहराणि
राधादिसिंहपदमुद्धृतलैकतानि।।

690\. सङ्गत्य सम्प्रति शरत्समयः प्रवासा-
दीषद् विहस्य विकसत्कुसुमच्छलेन।
अग्निज्वलेन कुमुदेन विलोकनेन,
ज्योत्स्नातपेन धवलेन तथांशुकेन।।

691\. चन्द्रेण सान्द्रतरचन्दनचित्रकेन,
श्यामाप्रकाममिह कौतुकमावहन्ति।
शरदः प्रवेशसमये [1]विहसन्ति नित्यं,
सरसीरुहेषु मधुसारससारकीन्द्राः।।[2]

692\. उन्मादितनिबिडकपाटसम्पुटानां वसन्देहम्।
सम्प्रति दिगङ्गनानां परं निराकृतघनानुपटलानाम्।

693\. खञ्जनकटाक्षिपाते न कर्पूरतलगगनमाभाति।
दर्शयन्ति महाघटे पुलिनानि शनैः शनैः।।
नवसङ्गमसव्रीडाप्राधानानीशयोषितः।
....[3]।। –गोविन्दस्वामिनः

694\. शालिभूपपरित्रासः किञ्चिदाकुञ्चितेक्षणः।
वृषः पिबति केदारे निःश्वासाकुलितं पयः।। –वाल्मीकेः

1\. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'नु द्विषन्ति' छन्दोभङ्गश्च पङ्क्त्याम् ।
2\. पङ्क्त्यामस्यां छन्दोभङ्गः ।
3\. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

695. सान्द्रस्थूलघनोपरोधविषमाः शक्या न तारा पुन-
स्तोयात्तीर्णविवर्तनक्रजठरक्षुण्डस्थली बालुका।
व्यक्तव्याघ्रपदां कटाङ्किनिचितोन्मुद्रार्द्रपङ्कोदराः
सन्त्रासं जनयन्ति कुञ्जसरितः काचाननीलोदकाः॥

696. हारच्छायां वहति कुचयोरन्तराले मृणाली
कर्णोपान्ते नवकिसलयैरच्युतः कर्णिकारः।
या सीमन्ते मणिभिररुणैः सा छविर्बन्धुजीवैः-
र्वैद्यः शोभां दिशति रमयावर्तया शालिसौम्यः॥ -बन्धुशीलस्य

697. दूरापायप्रकटविटपाः पर्यटूखञ्जरीटाः
क्रान्तप्रान्ताः प्रशमविलसद्राजहंसावतंसाः।
अभ्यानन्दं ददति विचरच्चक्रवाकोऽग्रचञ्चु-
ग्रासत्रासप्रबलशफरस्मेरतीरास्तटिन्यः॥ - डिम्बोकस्य

ततो हेमन्तव्रज्या

698. दलानां मूलेषु स्तनितपतितं केसररजः
समीरो नेदानीं हरति हरितालद्युतिरियम्।
कुमुद्वत्याः कोषे मधुशिशिरमिश्रं मधुलिहो
लिहन्ति प्रत्यूषे विरलविरसं भिन्नरुचयः॥

698. आवाति स्फुटितप्रियङ्गुसुरभिर्नीहारवारिच्छलाः
प्रच्छन्नं कमलाकेरषु विकिरन् प्रच्छन्नमेघच्छटाः।
प्राप्तः कुन्दसमृद्धिदर्शनरसप्रीतिप्रकर्षोल्लसन्-
मालाकारमधूकपोलफलके स्थैर्यक्षमो मारुतः॥

700. क्षेत्रोपान्तपलायमानशशकास्त्वन्तं निरीक्ष्यापरा
नाक्राद्याति प्रसेनकर्षकजला स्रावत्सकोलाहला:।
हस्ताभिश्च तडागरूजलगुडैर्वृद्धैरवृद्धैः सह,
त्यक्ताः शालिचिकर्षितामितहतो धावन्त्यमी पामरा:।।

701. माषीणामुषितं यवेषु यवसश्यामा रविः शीर्यते,
ग्रामान्तश्च मसूरधूसर इव श्यामं यमानीवनम्।
पुष्पाख्याः शतपुष्पिकाः फलवृतः सिद्ध्यन्ति सिद्धार्थकाः,
जाता वास्तुकरास्तव स्तवकितास्तम्बा चुकुस्तुञ्जरी।। – शुभाङ्गस्य

702. भूषान्तामसतावभाञ्जिककपीश्वद्बालभानुच्छवी,
लिप्तत्वं च कठोरकीरहरिजोन्मेषो निमांसीलता।
एतत्तर्कितबालवानरवधूहस्ताङ्गुलीनन्दिनः,
स्पर्धावन्ति फलानि बिभ्रति परीणाहाभिरामश्रियम्।। वसुकल्पस्य।।

703. केशानाकुलयन् दृशो मुकुरयन् वस्त्रं चलादाक्षिपन्,
आजन्वन् पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेशकम्प्रीगतिम्।
वारं वारमुदारसीत्कृतरवैर्दन्तच्छदं पीडयन्,
प्रायः सुन्दर एष सम्प्रति मरुत्कान्ता सुकान्तायते।

704. आभोगिनः किमपि यं प्रतिवत्सरान्ते,
सम्पन्नशालिफलकप्लवितोपशल्पाः।
ग्रामस्तुषारतरमन्थरगोमयाग्नि–
धूमावलीवलयिनः फलिनो विभान्ति।। –अभिनन्दस्य

705. भद्रं ते सदृशं यदध्वगशतैः कीर्तिस्तवोद्गीयते,
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिनो दानेन कर्णो जितः।
इत्यालोच्य चिरं तृषाकृपणया दूरागतेन स्तुतः,
पान्थेनैकपलालमुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः।। –योगेश्वरस्य

ततः शिशिरव्रज्या

706. दुर्लक्ष्याङ्गं गमनकवले धूमधूमे पतन्ती,
कानीयाग्नेः पटमयगृहाक्ष्मसलीलां तनोति।
प्रादुर्भावांस्तिरयति रविस्त्वदध्वगानामिदानीं,
सर्वाङ्गीणं द्विषति पलितं लोमलग्ना हिमानी।।

707. रात्रिं सर्वां हुतवहपरिष्वङ्गभाजोऽपि मन्ये
जाघाद्वन्द्वास्त्वरयितुमयं शङ्क शक्नोति वादान्।[1]
....
....।।

708. धन्यानां नवपूगपूरितमुखश्यामाङ्कजालिङ्गनं
प्राप्तावेकसुखप्रमोदवपुषां काम्यस्तुषारागमः।।
अस्माकं तु विदीर्णदण्डितपटी प्रच्छादितो घाटित-
क्रोडस्वीकृतजानुवेपथुमतां चेतः परं सीदति।

709. इदानीमर्घन्ति प्रथमकलमच्छेदमुदिता
नवीनान्नस्थाली परिमलयुते हालिकगृहा।
उदञ्चद्दोर्वल्लीरुणिनवलयामिर्युवतिभि-
र्गृहीता प्रोक्षिप्तभ्रमितमसृणोत्कीर्णभुवना।। –योगेश्वरस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

710. दिग्द्वारेषु हिमावृतिः प्रतिदिनं स्पन्द्रोऽपि सान्द्रायते
प्रालेयोपहतद्युतिर्दिनपतिर्मन्दोऽपि संलापते।
भर्तुर्मान्द्यशुचेव पश्य दिवसः क्षीणोऽप्ययं क्षीयते
तत्सङ्कोचनिरङ्गुलेव रजनी दीर्घापि दीर्घायते।।

711. केचित्कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरकुचद्वन्द्वं निधायोरसि
श्यामावक्त्रसरोरुहं सुकृतिनश्चुम्बन्ति नन्दन्ति च।
....
....[1]।।

712. काच्छिीतसमर्पिता इव भुजैराच्छाद्य वक्षःस्थलं
पातालातलभस्मलीनवपुषो निर्नुन्ति सांशैः श्रियम्।
....
....[2]।।

713. शरत्काले चण्डः परमपरितापप्रतिहतैः
करस्पर्शो यस्य क्षणमपि जनैर्नाभिलषितम्।
स एवायं शूरः शिरसि निवहाक्रान्तकिरणः
प्रभालाद्वेषेऽस्मिन् खलु नु नियता देवगतयः।। –श्रीधर्मपालस्य

714. विष्पन्तं न परिस्तृणाति वियति ज्योत्स्नावितानं शशी
नोद्गानाति मधुव्रता न तरवः तन्वन्ति पुष्पाञ्जलिम्।
नैवाद्यापि निवर्तते किसलयं वल्लीयुतामोदरं
दूरारम्भमनङ्गरङ्गरचनं लोकस्तु पर्युत्सुकः।। – अभिनन्दस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

715. पथिकवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशापतिः
गलितविभवा देवार्घद्युतिमशिवारवेः।
अभिनववधूबोधस्वादुः करीशतनोनपात्
सरलजलाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः॥

716. सुखसेव्यहव्यवाही हिममयकञ्चुकितमातरिश्वानः।
अपचितयामा यामा मधुरितमिहिरासवा दिवसाः॥

ततो वयः सन्धिव्रज्या

717. भ्रुवः काचिल्लीलापरिणतिरपूर्णा नयनयोः
स्तनाभोगो व्यक्तस्तरुणिमसनारम्भसमये।
इदानीं बालायाः किममृतमयः किं विषमयः
किमानन्दः साक्षात् वहति मधुरः पञ्चमरवः॥

–वीर्यमित्रस्य

718. तन्वानालकभञ्जनानि कवरीपाशेषु शिक्षारसो
दन्तानां परिकारनीविनिहनं झल्लास्यहास्यग्रहः।
तिर्यक्लोचनवेष्टितानि वयसां शेषोक्तिसंक्रान्तयः
तस्या ग्लायति शैशवे पतिकलं कोपेष्वकेलिक्रमः॥

719. विधत्ते सोल्लेखं, कतरदिह नागं तरुणिमा
तथापि प्रागल्भ्यं किमपि चतुरं लोचनयुगे।
यदाधत्ते दृग्भ्योऽप्यखिलगुरुभावव्यतिकर-
मनोवृत्तिं द्रष्टुं प्रथयति च दृश्यं प्रतिजनम्॥

–राजशेखरस्य

720. एतद्दधाति नवयौवननर्तकस्य,
कश्मीरजच्छुरिततारकयुग्मशोभाम्।
मध्ये समुच्छमितवृत्तिमकागुपङ्क्ति,
लब्ध्वाध्यनीलकुचकुड्मलयुग्ममस्याः।।

721. यौवनसमारम्भे रामावयःस्थली कुसुमेषोः।
मकरध्वजपताकेवेयं राजति रोमावली रम्या।। -लहउचन्द्रस्य

722. चलितशिशुदशानां यौवनारम्भलेखा-
परिचयपरिचुम्बत् प्रेमकौतूहलानाम्।
उचितसहजलज्जा दुर्लभा बालिकानां
गुरुजनभयभाजां केपि तेऽङ्गे विलासाः।। -गङ्गेश्वरस्य

723. आकण्ठार्पितकञ्चुकां च न शिरोहस्ताङ्गुलिर्मुद्रणा-
मात्रामुद्रितहास्यलास्यमनसा पञ्चालिकाकेलया।
वारं वारमुदञ्चितः सखि मया चूतद्रुमाणां वने
पीतः कर्णदरीप्रणालचलितः पुंस्कोकिलानां ध्वनिः।।

724. तस्मिन्नद्य पुनः प्रतिप्रणयिनी प्रत्यङ्गमुत्कम्पितं
तापश्चेतसि नेत्रयोस्तललिमा कस्मादकस्मान्मम।
दूरं मूलविधौ तथास्तनमुरस्तिर्यक् कटाक्षे दृशा,
वासत्ताण्डवपण्डिते स्मितसुधाछेकोक्तिमुक्तं न ते।।

725. चेतः कन्दलितं स्मरव्यतिकरं लावण्यमङ्गैर्वृतं
तन्व्यङ्ग्यास्तरुलम्बि सर्पति शतैरन्यैव काचिद् गतिः।
कालाधायि किलैति काङ्क्षितुमलङ्कर्तुं निजैर्भूषणै-
रामाभिश्चिरमुद्यते हृदि लिहन्ति श्वासनिद्रां मुहुः।।

726. स्निह्यत्तारकमत्यदृष्टिविरहे यः सम्मुखं वीक्षितो
नम्रः स्वेदमुखी भवत्विति वयः सन्धिश्रिया इङ्गितः।
....
....[1]।।

727. प्रेयस्या परमर्पितान्तरवहिर्वृत्तेः पुनश्च क्रमः
....
....
....[2]।।

728. वैरस्यं नहि चापि विभ्रमकलानिर्माणशिक्षावसः
प्रत्यङ्गं स्मरकेलिमुद्रितमहो बालापयोविभ्रमः।
....
....[3]।।

729. पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संस्थिता लोचनाभ्याम्
श्रोणीबिम्बं त्यजिततनुतां सेवते मध्यभागः।।
धत्ते भक्ष्यः कुचसचिवतामद्वितीयत्वमास्यं
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन।।

730. बाल्यं यदृश्यास्त्रिवलीतटिन्यास्तटे विनष्टं सहचापलेन।
तदर्थमुत्थापितचारुवैद्यकल्यौ स्तनौ पाण्डुतरौ तरुण्याः।।

731. उदञ्चन् प्रत्यग्रस्तनमुकुलपीठद्वयमसौ
स्मरस्यातिश्चार्थ्यं तरुणिमसहायस्य सुतनुः।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।
3. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

दद‍ौ प्रस्वेदाम्भः कनकरसरोमावलिधिया
तथानाधीपीडो परिलिखितदूर्वाङ्कुरमपि।।

732. अद्यारभ्य मनोभवक्षितिभुजा जीव्ये नवव्याजयो
दत्ता भूमिरियं नवेन्दुवदनातारुण्यवैदग्ध्ययोः।
तत्त्वं शैशवगच्छकान्तिदपरा शान्तादिकारो भवान्
किं नो पश्यसि सीमपट्टकमिदं सिन्दूरमुद्राङ्कितम्।।

733. अनाहूतैरेव प्रियसहचरीणां शिशुभयाद्,
वचो वै पाञ्चाली मिथुनमधुना सङ्गमयितुम्।
उपादत्ते नो वा विरमति न वा केवलमियं
कपोलौ कल्याणी पुलकमुकुलैः कूर्णवयति।। -मुरारेः

734. दीर्घत्वं नयने गुणञ्च वदने किञ्चिद्विकारं भ्रुवो
लोपं सम्प्रति शैशवे कुचतटद्वन्द्वे तथा सङ्गिताम्।
वृद्धिं श्रोणितटे च साधु विदधत् धूमल्लवं यौवनं
तद्वैयाकरणायते प्रतिदिनं प्रत्यङ्गमेणीदृशः।।

735. गते चान्यं चेतः कुसुमधनुषा सायकहतं
भयाद्वीक्षे वान्तस्स्तनयुगमधूलिर्जिगमिषुः।
सकम्पाता सा चेत् चलितनयनं कर्णकुरकं
कृषं मध्यं भक्तोवलिरलषितः श्रोणिफलकः।।

736. दृशोर्लीलाचार्यः कुचकलशयोगं स्वमगुरु-
र्निदानं वक्रोक्तेरधिककरणं भो रतिपतेः।
कुलं शृङ्गाराणां त्रिवलिवलयस्य प्रियसुहृत्
मृगाक्ष्याः प्रस्तावः पतति मधुरो यौवनमयः।। - कामदेवस्य

737. यूनां पुरः सपदि किञ्चिदुपोह्य लज्जां
वक्षो रुणद्धि मसृणं नवदौर्लताभ्याम्।
प्रौढाङ्गना प्रणयकेलिकथा सुबाला
सुश्रूषुरन्तरथ बाह्यमुदास्त एव।।

738. प्रत्यङ्गं हरिणीदृशः स्मरमहाराजे चिरं शासति
प्रत्यक्षं[1] यदमी हरन्ति विदुषामप्यन्तरस्थं मनः।
किञ्चैतत्कुचयोर्निचोलनिवृताः सारे परो निग्रहः
काञ्चीदामनिबन्धनानि नियतं नीतो हि नीवीस्थलः।।

739. इदमुपहतसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव निबद्धं पाण्डुपत्रोदरेण।।

740. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। –कालिदासस्य

741. पदं दत्त्वैव प्राक् प्रथममपि पृच्छं खलु तदा
त्वये मासाः खेदं हृदयनिहितं ज्ञानव्रतमपि[2]।
मुरारेः पादाभ्यां विनिधनकुचाभ्यां नु विदृशः
भ्रुवोर्लीनेवात्योदरहसितमभ्यस्यति मुखम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'प्रत्यक्तं'

2. श्लोके छन्दोभङ्गः।

742. दृशोर्वक्रः पन्थास्तरुणिमसमारम्भसचिवः
इदानीं मे तस्याः कुवलयदृशः प्रत्यहमयम्।
नितम्बस्याभोगे नयति मणिकाञ्चीमधिगतां
....[1]।।

743. मध्यं बद्धवलित्रयं विजयते निःसन्धिबन्धो मम
द्वित्वारिस्तनपूरमन्दरमुरो मुग्धाः कपोलश्रियः।
किञ्चिन्मुग्धविलीननीरजदृशस्तारुण्यपुण्यातिथौ
तस्याश्चन्दनपङ्कलेपनविधौ क्षामं वपुर्वर्धते।।

744. स्तनोद्भेदः किञ्चित्त्यजति तनुतायाः परिचयं
तथा मध्यो भागस्त्रिवलिवलयेभ्यः स्पृहयति।
नितम्बेषु स्वैरं विलसति विलासव्यसनिता
कृशाङ्ग्याः प्रत्यङ्गं कृतपदमिवालिङ्गललितम्।।

745. यत्प्रत्यङ्गं तटमनुसरत्युर्युयो विभ्रमाणां
क्षोभं धत्ते पदमपि हलः स्निग्धलावण्यपङ्कम्।
उन्मल्लग्नं स्फुरति च मनाक्कुम्भयोर्द्वन्द्वमेतं
तन्मन्येऽस्याः स्मरगजसुरा आहते हृत्तरङ्गम्।

746. अस्ति मयमस्ति कौतुकमस्ति च मन्दाक्षमस्ति चोत्कण्ठा।
बालानां प्रणयिने भावः कोऽप्येष नैक रसः।।

747. प्रगल्भानामन्ते निवसति शृणोति स्मरकथां
स्वयं तत्तच्चेष्टाशतमभिनये नार्पयति च।
स्पृहामन्तः कान्ते वहति न [2]स्मरस्येति निकटं
तथैवेयं बाला हरति च तथैवेयमधिकम्।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।
2. पद्येऽस्मिन् छन्दोभङ्गः।

748. अन्योन्यान्तरनिर्गताङ्गुलिदलश्रेणीभवन्निश्चल-
ग्रन्थिप्रग्रथितं करद्वयमुपर्युत्तानमाबिभ्रती।
सोऽयं विश्रमतोरणप्रणयिता दृष्टा भरोत्तस्मिते-
नौच्चैर्बाहुयुगेन शंसति मनोजन्मप्रवेशोत्सवम्।। -शतानदस्य

749. बिभ्रत्या वपुरुन्नयत्कुचयुगं प्रादुर्भवेद्विभ्रमो
बालाया लसदङ्गसन्धिविरमद्वाल्यं चलत्युत्तलम्।
अन्तर्विस्फुरति स्मरो बहिरपि क्रीडा समुन्मीलति
स्मेरं लोचनवक्रिमा विलसति श्रीः काचिदुज्जृम्भते।। -रुद्रस्य

750. गतिर्मन्दा सान्द्रं जघनमुदरक्षाममतनुः
तवाभोगः स्तोकं वचनमतिमुग्धञ्च हसितम्।
विलोलद्भ्रूवल्ली वलनलयलोलञ्च नमनं
क्व जातं बालायाः कुचविषयमक्षोरियमगात्।।

-स्वर्लोकस्य

751. स्तनतटमिदमुत्तुङ्गं निम्नो मध्यं समुन्नतं जघनम्।
इति विषये हरिणाक्ष्या वपुषि नवैक इह न स्खलयति।।

ततो युवतिवर्णनव्रज्या

752. यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषान्तरांशः परं
याः प्राणान् वरमर्पयन्नति पुनः सम्पूर्णदृष्टिं प्रिये।
प्रत्यन्ताभिमतेऽपि वस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मक-
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षणाः प्रकृतयो रामाः प्रसीदन्तु नः।।

753. एकमेव बलिं बद्ध्वा जगाम हरिरुन्नतिम्।
अस्यास्त्रिवलिबन्धेऽपि सैव मध्यस्य नम्रता।।

निजनयनं प्रति विवैरं भुवि[1]बहुशः प्रभाविता कापि।
नीलोत्पलेऽपि विमृशति करमर्पयितुं कुसुमलवी।। -धरणीधरस्य

754. गुरुतां जघनस्तनयोः स्रष्टुर्मुष्टोऽन्तमय्यतुलितरतः।
भग्नाङ्गुलिः सन्धयति निर्गतलावण्यं किल त्रिवलीम्।

755. त्वं गण्डस्थलपाण्डुदेहि न वनं देहित्वदोष्ठारुणं
बिम्बं देहि नितम्बिनि त्वदलकश्यामञ्च मे यामुनम्।
इत्यक्षुण्णमनो मवाहततडिद् व्रीडः पुरन्ध्रीजनो
धन्यानां भवनेषु पञ्जरशुकैर्हा विष्णुर[2]भ्यर्थ्यते।। -वाग्भटस्य

756. नलिन्यब्जं चक्षुस्सरसरसमेतन्[3]नवदलं
नवं बन्धूकस्य नवकुसुममेतत् स्तुतिधरः।
ममाप्यत्र क्लान्तिः प्रथममभवत् भृङ्ग किमुते
हृतं यत्नैरेभ्यो विरमति रयं भ्राम्यति मुधा।।

757. मनसिजविषयास्त्रं नेत्रविश्वासपात्रं
तव मुखमनुकर्तुं तन्विनां द्वन्द्वयोश्च।
इति जनितविरोधोद्भूतरेखादिवायं
हरति तुहिनरश्मिः पङ्कजानां विकासम्।। -घर्माकरस्य

758. यद् गीयते जगति शस्त्रहता व्रजन्ति
नूनं सुरालयमिति स्फुटमेतदद्य।
सूच्यग्रमात्रपरिखण्डितविग्रहेण
प्राप्तं मनः स्तनतटे तव कण्टकेन।।

---

1. मूल पाण्डुलिपौ पाठः 'वुनि'।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'हरिमभ्यर्थ्यते' छन्दोभङ्गः।
3. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'सरसीरुहमेते' छन्दोभङ्गः।

759. सत्यं शरैः सुमनसां हृदयं तवैतत्
लोलाक्षि निर्भरमभूत्तु मनोभवेन।
आमोदमुण्वणमकृत्रिममुद्वहन्ति
श्वासाः स्वभावसुभगं कथमित्यथैते।।

760. सुतनु तव शरीरं गर्तसुत्याद्यनाभि-
मध उपरि निधाय त्वं स्तनं रोमराजिम्।
स्तनयुगभरभङ्गाशङ्कितेनैव धात्रा
त्रिवलिवलयमध्यं वाद्यमालोकयामः।।

761. मुहुः शस्त्रच्छेदे मुकुरमथपाषाणकषणैः
मुहुर्ज्योतिः क्षेपैः पयसि परिपातैः प्रतिमुहुः।
तवेदं तन्वङ्ग्याः कथमपि नितम्बस्थलमिदं
मया लब्धं पूरं परिरटति काञ्चीपरिकरः।।

762. चञ्डीशदर्पदलनात् प्रकृतिं स्मरस्य,
वामं भ्रुवां वदनमेव हि राजधानी।
निश्शङ्कमङ्कुरितपुष्पितकान्तिदेशे
तत्राधुना तुहिनधाम्नि मृगाश्चरन्ति।। - सरोकस्य

763. अधीरक्ष्मापीनस्तनकलशमास्कन्दनसहः,
क्रमादुदूरूद्वन्द्वं कलयसि च लावण्ययुगलम्[1]।
भुजाश्लिष्टो हर्षादनुभवसि हस्तायितकला
निजं वीणादण्डं प्रकटय फलं कस्य तपसः।। - वाचस्पतेः

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'द्वन्द्वम्' छन्दोभङ्गः।

764. इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः।
अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।। -भवभूतेः

765. नितम्बश्रीः कर्णासुगतमितमानं जनयति
स्तनाभोगो मुग्धे हृदयमपरस्यापि हरति।
तवाक्ष्णोः सुस्पष्टं स्मरकरशरेन्दीवलदलम्
मुखं तत् पूर्णेन्दुः प्रथममलिखत् प्राञ्जलपदम्।। -वल्लभस्य

766. किमयममृतवर्ती किन्तु लावण्यसिन्धुः
किमथ नलिनलक्ष्मीः किं नु शृङ्गारवल्ली।
इति नवहरिणाक्ष्याः कान्तिमालोकयन्तो
जगदखिलमसारं भावमालोकयामः।।

767. श्वालीनचूचुकशिलीमुखमुद्गतैकरोमावलीविदलतालमिदं प्रियायाः।
उत्तुङ्गसङ्गतपयोधरपद्मयुग्मं नाभेरधः कथयतीति महानिधानम्।।

768. हन्त नाम जगत् सर्वमविवेकि कुचद्वयम्।
प्राप्तश्रवणयोरक्ष्णो ना मुक्तं जनमारणम्।।

769. तन्वङ्गीनां स्तनं दृष्ट्वा शिरः कम्पयते युवा।
तयोरन्तरसालग्ना दृष्टिमुत्पाटयन्ति च।।

770. अनेनचाम्भोरुतवाननेन
तुषारभानोः कलयाञ्चितस्य।
ऊनस्य नूनं परिपूरणाय
ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः।।

771. अहो प्रमादी भगवान् प्रजापतिः
कृपातिमध्ये घटिता नितम्बिनी।
यदि प्रमादादलिने न भिद्यते
कथं पुनः सह्यति रूपमीदृशम्।।

772. उत्पादः सफलस्तनुः सुकृतिनीधन्यः प्रणेता विधिः
प्राप्तं वाद्य चिरार्गितस्य तपसः सम्यक् फलं वाञ्छितम्।
लावण्यामृतसिन्धुसारसलिलस्तावेव मुग्धा मुहु-
र्नेत्रोपान्तविलोकनेन तरुणि त्वन्नाम यद्वीक्ष्यसे।।

– रत्नपालस्य

773. किं ध्यायं दनुजद्विषं किमु महातीर्थेषु पुण्यक्षणे
कैरः पापचयैः सकारणयतिः प्राणव्ययं लम्भितिः।
धूतेयं दशनाङ्गपाशकयुगं हाराभिरामोल्लसद्
तीरन्ध्रस्तनमण्डलद्वयमिदं मृद्वह्नि मूर्ध्नाति ते।।

774. स्वयम्भुवे चन्दनचर्चिताय
हृदि स्थिताय स्खलदम्बराय।
नखक्षतेन्दुद्युतिभूषणाय
नमोऽस्तु तस्मै कुचशङ्कराय।।

775. एतस्याः स्तनके नाम मनसिजो बली।
सप्तद्वीपकरग्राही भवान् यत्र करप्रदः।। – विक्रमादित्य–कालिदासयोः

776. विनमतु फलजातं स्वादु हृद्यं तरूणां
तदपि न पदवीं न धास्यसि श्रीलयस्य।
असमनिजमहिम्ना तेन चैतन्नितुङ्गं
स्तनयुगलजिगीषा साहसेनार्जितश्रीः।। – लङ्गदत्तस्य

777. वक्षोजयोः सदृशमद्रिपतेः फलं यत्
तत्कर्णयोः कुलमलङ्करणं करोति।
तेनामुना भवदुपद्रवगौरवेण
राजा भवत्तरुणितालतरुस्तरूणाम्।।

778. अधरयुगेन विडम्बितबिम्बागुरुतरकुचयुगं तुङ्गम्।
नितम्बाचञ्चलनयनविभत्सितहरिणीचेतो हरति मुनेरपि तरुणी।
-मयूरस्य

779. स्त्रीमुद्रा मकरध्वजप्रणयिनी सर्वार्थसम्पत्करी
ये मोहादवधीरयन्ति कुधियो मिथ्या छलान्वेषिणः।
ते ते नैव निहत्य निर्दयतया नग्नीकृताः खण्डिताः
केचित्पञ्चशिलीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे।।
-नीलपटस्य

780. नितम्बिनी तां स्तनपर्वतेषु मयूरपादं निहितं निरीक्ष्य।
रोमावलीभीतविभुङ्गभङ्गिनी गभीरनाभीविवरं विवेश।।[1]

781. कुचो लेभं हारं घनकठिनपीनोन्नततया
नितम्बो विस्फारः कनकमयकाञ्चीमलभत।
यदेतस्या मध्यं त्रिवलिनिगडैर्बद्धमभवत्
न कोऽपि क्षीणानां जगति कुरुते सम्भ्रमपदम्।।

782. मण्डलाभोगिनः तुङ्गास्तनास्त्रीरसमसाधवः।
यतो दत्ते करेऽद्यापि गोवलीग्रहणोद्यतः।।
-विक्रमादित्यकालिदासयोः

1. पद्येऽस्मिन् तृतीयपादे छन्दः परिवर्तनम्।

783. दमनकतरुशाखालम्बितो लङ्घयुग्म-
तुहिनकिरणबिम्बे खञ्जरीटप्रचारः।
विकचकमलकोषे दाडिमीबीजपङ्क्ति-
त्रितयमिदमपूर्वं दृष्टमेकत्र चित्रम्।।

784. वापी कापि स्फुरति परितस्तत्परं सूक्ष्मपद्भ्यां
सोपानालीमधिगतवती काञ्चनीमैन्द्रनीलिम्।
मुग्धे शैलो सुकृतियुगलो चन्दनं छद्मदेशो,
तत्राभ्यातां सुलभममृतं सन्निधाना सुधांशोः।। –दक्षिणाभ्यासस्य

785. कमले कदलं कदले पुलिनं,
पुलिने गगनं गगने कलशम्।
कलशे शशिनं शशिनि भ्रमरं,
विदधौ विधिरद्भुतचित्रकरः।।

786. अपि चक्रमदश्चक्रे पश्योपरि न किञ्चन।
दुर्घण्टाघण्टनिर्माणचातुरीधातुरीदृशी।।

787. आदौ वागमृतं ततो मुखशशी लावण्यलक्ष्मीस्ततो
मत्तैरावणकुम्भसन्निभकुचो जातानि मौनिक्रमात्।
एतस्या नवयौवनादृमथना ज्वालावपुर्वारिधे-
र्जातं तच्छकटाक्षत्र्क[1]क्षणविषं सह्यं न शम्भोरपि।।

788. बाहोरश्वगलाङ्कटस्तटयुगं बालादितम्भस्थली-
माविष्णोरविकाशगण्डयुगलं पूतिक्रियालोकनम्।
स्वेबाहू कटरे कटाक्षमविवे वाणीगतिर्मन्थरा-
मेतस्यास्त्रिवलीतरङ्गवलनां वक्तुं न शक्ता वयम्।।

1. पद्येऽस्मिन् सन्धिदोषः।

789. भ्रातः किं हृदि दृश्यते मृगदृशो वक्षोजपद्मद्वयं
वर्धिष्णोऽर्धविकासिना कथमहो ज्ञातं तया धीमता।
किं तत् कोमलकोशकान्तकमलव्यातोषविच्छेदकै-
र्नेत्रेन्दीवरलाञ्छनो मुखशशी प्रायो यदस्याः पुरः।।

790. निस्सीमस्तिमिताम्रितद्रवमुचो वाक्यं किमाचक्ष्महे
याच्ञा यामनुदक्षतां पतति नो भूमौ पिकानास्पदम्।
किं ब्रूमो वदतं यदीयपदवीलोभादिवार्भोऽस्म्यहं
सूर्यावंशशतान्यनीकरदशा बभ्राम काशं शशीं।।

791. मध्ये स्यास्तनिमा स्तने च गरिमा गण्डस्थले पाण्डिमा,
नेत्रे चञ्चलिमा भ्रुवोः कुटिलिमा वाचि स्फुरद्वक्रिमा।
इत्थं सम्भृतयौवनं नयनयोर्लावण्यविन्दं वपुः
प्रेयस्याः प्रणयैकपात्रमभवत् ब्रीडाक्रतं[1] राजते।।

792. उषसि गुरुसमक्षं लज्जमाना मृगाक्षी,
रतिरुतमनुकर्तुं कीटराजे प्रवृत्ते।
तिरयति सुतलीलानर्तनच्छद्मताल-
प्रचलवलयलीलाकोलकोलाहलेन।।

793. उत्तारतालतरणायतचञ्चलाक्षी,
संयम्य बाहुयुगलेन कुचौ जनस्था।
उद्वर्तनग्रसनलम्पटतीर्थकाकं,
संवेष्टितेन वलयेन निराकरोति।।

794. दम्पत्योर्निजजल्पितं गृहशुकेनाकर्णितं यद्वचः
तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदितं तस्योपहारं वधूः।

1. अत्र असन्धिदोषः, सन्धौ सति छन्दोभङ्गः।

कर्षालङ्कृतपद्मरागसकलं विन्यस्य चञ्चू पुटे
व्रीडार्तः प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम्।।

795. नायं हारस्य मध्ये तरलमरकतो नाभिदेहः कृशाङ्ग्याः
नाप्येषा चात्र यामा रमणरुचिशुचिः पद्धतिर्मौक्तिकानाम्।
नाभीलावण्यवाप्यामयमसमशशी[1] स्प्रक्ष्यतेऽत्राभिदग्धो
भग्नस्तस्यैव वाल्या पतनसमुदिता श्रीकरश्रेणिरेखा।।

796. तन्वङ्गि स्तनकुड्मलस्तनि यदि स्वर्गः स किं शृङ्गवान्
त्वं किं वाऽधरमाधुरी यदि सुधा श्रद्धासुधा स्वर्गिणाम्।
त्वामालिङ्ग्य निसर्गसुन्दरि चिरानन्त्ये यदि स्यान्मन-
स्त्वद्वेदान्तिकपोलकाव्यकथया धिग्विप्रलम्भं मनः।।

–गोधीकस्य

797. अन्योन्यसङ्घट्टविमर्दबुद्ध्या
मनोभुवा वीक्ष्य कुचे सयुग्मम्।
नितम्बबिम्बामयभङ्गभीत्या
वापी वदच्चापि मनोभवेन।।

798. सन्त्येव त्रिवलीतरङ्गतरला लावण्यलीलापगा
यासु स्वैरवतीषु कामुकमनोमीना निरुत्तामिका।
उत्तुङ्गस्तनचक्रवाकयुगलं कन्दर्पबाणानलै-
र्दग्धानामवगाहनाय विधिना नाभीसरो निर्मितम्।।

799. परिपीतः शतवारान् सहस्रं परिचुम्बितम्।
मुमेन्दुवीक्षितो लक्षं पद्मलक्षा पुनर्नवः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'ससाम'।

800. तन्वङ्ग्याः स्तनपर्ववातवितरद्गङ्गेन हारावती
रोमाली नवनीलनीरदरुचिः सेयं कलिन्दापगा।
जातं तीर्थमिदं सुपुण्यजनकं तत्रानया सङ्गमे
चन्द्रो मज्जति लाञ्छनापगतया नूनं नखाङ्कच्छलात्।।

801. निर्मायास्याः कथमपि मुखं वेधसाऽपि स्मरार्ति-
प्रत्युन्मीलत्करकिसलयो कम्प एवाविरासीः।
येनोद्भेदस्तनभिदपुरः क्षाममत्यन्तमेतत्,
मध्यः पीनः कथमपरथा स्यादयं वा नितम्बः।। - शरणस्य

802. किं वा शशाङ्कहृदयेन किमु प्रसन्न-
श्रीखण्डसारसकलेन ललाटमस्याः।
शिल्पं विधे करकरालकलक्ष्मलेखा
येषां भुवां भुजगगीतिकथा तदेतत्।। -रामरक्षितस्य

803. केनाम्रकारादथ दृश्यभाल-
स्तथार्धचन्द्रास्फुटसंशयोऽयम्।
एतां समाससनिबन्धजये मनोभूः
एतत् परं कथय वल्लभखण्डितायाः[1]।।

804. एतत् चतुर्गुणितसायकपञ्चबाण-
बाणावलिः गगनविभ्रममातनोति।
....[2]
....।। - कामदेवस्य

---

1. पद्येऽस्मिन् पूर्वार्धे उपजातिः।
उत्तरार्धे च वसन्ततिलका।।
2. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठो न लभ्यते।

805. मृगमदतिलकान्तभङ्गिरस्या
यदि न ददाति भवत्करे कृपाणम्।
स्मितमधुरमुखं प्रसादलक्ष्मीः
किमु मृगलाञ्छनं वाञ्छसि प्रियायाः॥ – रामरक्षितस्य

806. सुकौसुमीमन्मथचापयष्टि-
रत्नांशुका विभ्रमवैजयन्ती।
ललाटरङ्गाङ्गणनर्तकीय-
मनञ्जना भूम्युपयातदृष्टिः॥ – राजशेखरस्य

807. विरमति रतिपाणौ लोलरोलम्बकीट-
व्रणविवरसहस्रक्षुण्णमेतत् तनुस्ते।
यदि न कुसुमकेतुभ्रूलतां कापि यूना-
मुपरि जयपताका सुभ्रुवो विश्वजेत्री॥

808. आकर्णचापमपि संयमि नः सकाशं
चक्रे[1] च तत्र मृकुटे कुलटाकटाक्षम्।
लज्जानुरागतनुलङ्कुलयोषिदक्षि-
साक्षादिदं विषमनङ्गभुजङ्गमस्य॥ –कविचूडामणेः

809. प्रियानेत्रमुखच्छायाहृतलावण्यशेषयोः।
समानदुःखयोरैक्यं युक्तं यक्षगचन्द्रयोः। –कविराजस्य

810. वैश्वजैत्रकुसुमेषु दूनयोः स्वरं धत्ते तव पृषोदरि लाललासिनीः।
पतति कथमन्यथा पुनः श्वाससाधकहृता वियोगिनः[2]॥
– रामरक्षितस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'करोति कुटिल' छन्दो भङ्गः।
2. छन्दः स्पष्टता न जायते।

811. कलङ्को नो वीणे विरम रणितात् कोकिलसखे,
सखेदो मा भूस्त्वं द्रुहिणविहितस्ते परिभवः।
सुधे मुञ्च स्पर्धां मधुरमधुसंसर्गसरसाः
स्फुटन्त्येता मुद्राः किमपि कमनीया मृगदृशः।।
-सूर्यधरस्य

812. नैवोदञ्चय पञ्चमक्वणततं सांसारिके सारयन्
तद्धीरो भव कीरवन्धक चिराद् तन्द्रीमतन्द्रीं कुरु।
उन्मीलत् तव भारसं भवरसप्रत्युन्मिषत् दुःक्रियं
प्रक्रान्तस्मितकौमुदी सहभुवो वाचः सुताः सुश्रुवः।।

813. इयमनिवेदशतपङ्क्तिरुचिरतिचिरतरकान्तिसमकान्तिः
उत्पादयति नितान्तं तव मन्मथवेदनाः पुंसाम्। -दामोदरस्य

814. दशनमणिलतानितान्तचिन्तामणिमिलयां निर्माय वेधसैव।
तव सुरतिः त्वदंशुवल्ली फलति मनोगतवाञ्छितानि यूनाम्।।
- रामरक्षितस्य

815. इमां विधातुं भुजवल्लिमुज्ज्वला,
गृहीतसीमा विधिना नतभ्रुवः।
कठोरभावा स्वयमेव केवलं
मृणालमन्तस्तरलं कुतोऽन्यथा।। - मोदुकस्य

816. गृहीतो सह पूर्वं परिणतविधौ कङ्कणधरः
चिरं स्वच्छस्पर्शैरमृतशिशिरैः यः परिचितः।
स एवाऽयं तन्व्यास्तदितरकरौ पश्य सुभगे-
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दरनिभः।।

817. हरकोपानलपृष्टविरुदस्मरशाखिनः।
अयमाभाति तन्वङ्ग्याः पाणिपथपल्लवः।। –पाणिनेः

818. मृद्वाङ्गि कथिता तन्वि पीनो सुमुखि दुर्मुखैः।
अत एव स्तनावेतौ हृदयान्तरनिःसृतौ।।

819. दग्धे मनोभवतरौ बाला कुचकुम्भसम्भृतैरमृतैः।
त्रिवलीकृता न वल्ली जाता रोमावलिवल्ली।। –राजशेखरस्य

820. दयिताबाहुपाशस्य कृतोऽयमपरो विधिः।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपराजितः।।
– काश्मीरकश्यामलस्य

821. दयितामुखशीतांशोर्द्वावेव कमलीमसी।
तस्या रराज रोमाली निम्ननाभी यथाऽनुगा।। – वटोकस्य

822. मयूरपादमारोप्य तन्वङ्ग्यास्तनपर्वतैः।
रोमराजी भुजङ्गीव नाभीविलमविशत्।। –कस्यचित्

823. यौवनगजमदधारा राजति तरुणि रोमराजीयम्।
अनवद्यवदनशशिधारा विगलितशशलक्ष्मलेखेयम्।।
–गदाधरस्य

824. सस्रोतोमुधस्तव वपुषि नाभीमभिपरिस्फुरन्ती।
रोमाली मनसि मम शङ्कां जनयति।।

825. मुखदोरालोकाच्च कितकुचचक्रद्वयमुखादलीना।
श्यामेयं मुदति जननी विगलति।। –महादेवस्य

826. वपुरनुपमनाभेरुर्ध्वं विधाय मृगी
दृशोर्ललितललितैरङ्गन्यासैः पुरा बभूव सा।
तदनु सहसा खिन्नेनैव प्रजापतिमानमृश-
पृथुलपृथुला स्थूलस्थूला जघनस्थली।।

827. जघनदेश निवेदय निवेदय रतिनिर्भरं हसितानां मणिकाभनिर्भरं पुनः।
तदपि पाटलकुड्मललाघत्रं मज्जसि नर्मकलासु विलासिनाम्।।
– रामरक्षितस्य

828. स्मरविजयविलासदलकाञ्ची मणिमयतोरणकेतुखण्डलीलाम्।
तुलयति तव कम्बुकण्ठि जङ्घां सरससमुदं चन्दननागशाखिशाखाम्।।
– लोलिम्बस्य

829. नैसर्गिकी सत्यमियं गतिर्नो
मुष्टो न दन्ती सुखितो न हंसः।
इतीव जङ्घायुगलं तदीयं
चक्रे तुलाकोपधिरोहणानि।। –चण्डीदासस्य

830. निर्जितदाडिमरागं विजितस्थलकमलिनीविलासभिदम्।
तव तरुणि चरणयुगलं कस्य न मानसमलङ्कुरुते।।

831. घनमसृणविमिश्रभावकाङ्क्षैः स्फुटमनुरागमिवोद्गिरन् मृगाक्ष्याः।
चरणमिममवेहि मोहनास्त्रं सुखसुन्दरः प्रतिबिम्बितः स्मरस्य।।
– लोलिम्बस्य

832. पल्लव इव मानशतेरौर्ध्वज इव मदनस्य चञ्चला क्षीणाम्।
नाधन्ये शिरसि कृतो जयति रणितमणिनूपुरश्चरणः।। –कस्यचित्

833. धिगेतानम्भोजाः ततचरणयोर्ये समतया
वराद्वा लज्जान्तर्न खलु दिवसा चामपसरे।
वराटं कण्ठेन प्रियसखि लभेतां व्रजमिदं
तुलाकोटिं हेम्नां सुमुखि तव किञ्चैष चरणः।।

834. त्वद्वक्त्रेन्दुजितः शशी तव गिरा दूती कृतः कोकिलः
त्वन्निःश्वाससमीरसौरभपरिक्षिप्तो मरुद्दक्षिणः।
त्वद्बिम्बाधरचूतपल्लवरुचिः कङ्केलिवल्ली प्रिये
त्वद् वेण्या हृदयं निहन्यत अये त्वं किं न मां वक्ष्यसि।।

835. बहुच्छिद्रो वासः पिकयुवतिरम्याक्षर......[1]
युगीना वीणापि प्रणुदति परीवाद.......[2]।
अदृष्टिश्छिद्राणामपरिमितमाधुर्यसदसां
सुवाचां वाचस्ते सुतनु तु भयो हा भवति कः।।

836. कस्मिन्नर्पितमानसः सुरवरे केन व्रतेन क्व वा
तीर्थे कुत्र दिनेशसङ्गहरिणा प्राणव्ययं प्रापितम्।
यन्नाभीद्रवविन्दवः स्तनतटे पत्राङ्कुरप्रक्रिया-
मायान्तस्तव तन्वि विश्वनयनव्यामोहनं बिभ्रती।।

837. जगद्वधूमूर्धसु रूपदर्पमुदेन यातापि पदारविन्दम्।
तदीयसिन्दूरपरागराशेः ततः प्रवालप्रबलारुणं तत्।।

–श्रीहर्षस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'प्रार्पित' छन्दोभङ्गः।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

838. लावण्यवारिधिजलं ननु केयमस्याः
शैवालवल्लितपितालतलं प्रसूते।
किञ्चारविन्दममरं विकसन्ति यत्र
बन्धूककुन्दतिलकासितपङ्कजानि।। -विक्रमादित्यस्य

839. त्यज मनसिज चापाकर्षणक्लेशमुच्चै-
स्त्रिभुवनविजयस्ते साधितः वेधसैव।
इयमनुनयलीलासङ्गिनीरन्ध्रपीन-
स्तनभरदवनम्रा निर्मिता यन्मृगाक्षी।। - कालिदासस्य

840. राजन्ति कान्तिनखरक्षतयो मृगाक्ष्या
लाक्षारुणद्रवमुचः कुचयोरुपास्ते।
अत्तः प्रवृद्धमरकरध्वजयाचकस्य
शङ्के विभिद्य हृदयं निरगुः स्फुलिङ्गाः।।

841. त्वेन्नेत्राञ्चलचन्द्रिकानुकृतयस्तेनेति नक्तन्दिवं
नित्यापत्तुरितत्त्वमेति न पुनश्चोत्तानमिच्चन्द्रमाः।
....
....[1]।।

842. अवनम्रमुखिव्यक्तमेतेनैवास्य लाघवम्।
तपस्यतीव चन्द्रोऽयं त्वत्युखेन्दुजिगीषया।।

843. कृशशम्भुजटाजूटे तटिनीतटमाश्रितः।
प्रायःस्तनतटीभूमिः प्रकामफलदायिनी।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

844. यस्यामग्रे करन्दत्वात् योज्यते न खलाङ्गलम्।
अमीषां मण्डलाभोगः स्तनानामेव शोभते।।

845. एषामुत्पाद्य सोत्कम्पा राजानोऽपि करप्रदाः।
....[1]।।

846. लक्ष्मी वक्षसि कौस्तुभस्तलयिनी प्रेम्णाकरोदच्युतो,
देहार्धे वहति त्रिविष्टपगुरुगौरी स्वयं शङ्करः।
शङ्के पङ्कजसम्भवस्तु भगवानद्यापि बाल्याधिपः
सर्वाङ्गप्रणयप्रियां कलयितुं दीर्घं तपस्तप्यति।।

अनुराग-व्रज्या

847. आकर्ण्यान्तविसर्पिणः कुवलयच्छायामुखश्चक्षुषः
क्षेपा एव तवाहरन्ति हृदयं किं सम्भ्रमेणामुना।
मुग्धे केवलमेतदाहि तरवो वक्तुं तु मुक्त्या शुभं
बाहोर्मूलमलीकमुक्तकवली बन्धुच्छलाद् दर्शिता।।

848. पिबन् वारिप्रणाशाल्यां तस्यां निहतेक्षणः।
स्मरत्यगस्त्यं पथिकस्य चतुरस्सापि सागरान्।।

849. दृष्टादृष्टिधुरे ददाति कुरुते नालाप्यमाभासिता-
शय्यां तां परिवृत्य तिष्ठति पलादालिङ्गिता वेपते।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान् निर्गन्तुमेवेहते
यातानि व्यतयैव यूनि सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

850. कृच्छ्रेणोरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्या नितम्बस्थले
मध्येस्यास्त्रिवली तरङ्गविषये निस्पन्नतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव शम्भति शरैरारुह्य पीनस्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने।। -श्रीहर्षस्य

851. अलमतिचपलत्वात् त्वत्प्रमायोपमत्वात्
परिणतिविरसत्वात् सङ्गमेनाङ्गनायाः।
इति यदि सकृतत्वात्तत्त्वमालोचयन्तः,
तत इह हरिणाक्षीं विस्मरत्यन्तरात्मा।।

852. हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिङ्कराः।।

853. सा सुन्दरीति तरुणीति तनूदरीति कान्तेति कान्तवदनेति मुहुर्मुहुर्ये।
कान्तामयं विरहिणीमनुगर्भकामाः कामोऽति यं जपति मन्त्रमिवान्तरात्मा।।
- वीर्यमित्रस्य

854. सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः
सा पीना न बिभर्ति याऽधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्।
आक्रान्ता जघनस्थले न गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयं,
दोषैरन्यजनाश्रयैर्न पटवो जाताः स्म इत्युच्यते।। -धर्मकीर्तेः

855. अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्नमन्दै-
र्धिगविकसितदन्तैर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमिदमशरणं पक्ष्मलाक्ष्याः कटाक्षैः-
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मीलितं च।।

856. यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननन्तद्,
आवृत्तकुन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या।
दग्धोऽमृतेन च विधेश्च नु पक्ष्मलाक्ष्या-
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः।।

857. परिच्छेदव्यक्तिर्भवति न पुरस्थोऽपि विषये-
भवत्यद्यत्वेऽपि स्मरनमनमाभागविवशम्।
न सन्तापच्छेदो हिमसरसि वा चण्डमशिवा,
मनो निष्ठाशून्यं भ्रमति च किमप्यालिखति च।।

– भवभूतेः

858. अपास्तद्विद्रुमच्छायो मेरुमार्ग इवाधरः।
करोति कस्य नो बाले पिपासाकुलितं मनः।। – दण्डिनः

859. सा यैर्दृष्टा न वा दृष्टा मुशिता समं सेवते।
हृतं हृदयमेतेषां चान्येषां चक्षुषः फलम्।।

860. सा बालेति मृगेक्षिणीति विकसत्पद्माननेति स्फुटं-
प्रोन्मीलत्कुचकुण्डलेति हृदयं त्वं धिक् वृथा ताम्यति।
मान्येयं मृगतृष्णिकास्वपि पयः पातुं समीहा तव,
त्यक्तव्यं सखि मा कृथाः पुनरपि प्रेमप्रमोदास्पदम्।। –धर्मकीर्तेः

861. सुवचनं वचनं प्रियसन्निधावनविलोकनमेव विलोकनम्।
अवयवावरणञ्च यदञ्जनव्यतिकरेण तदङ्गसमर्पणम्।।

862. अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकथोदयम्।
विनयवारितवृत्तिवृतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः।।

– कालिदासस्य

863. क्वासौ कृती कथय को मदनैकबन्धु-
रुद्ग्रीवमर्चयसि कस्य मृगाक्षि मार्गम्।
लीलाब्जकर्वुरितमध्यविनिद्रकुन्द-
दामाभिरामरुचिभिस्तरलैकपक्षैः।।

864. गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा।।

865. सावर्णो शिथिलीकरोति वसनं जागर्त्यपीयं रमा
स्वप्रभ्रान्तिपरिप्लुतेन मनसा गाढं समालिङ्गति।
दत्वाङ्गं स्वपिति प्रियस्य रतये व्याजेन निद्रां गता,
तन्वङ्ग्या विफलं विचेष्टितमहो भावानभिज्ञे जने।।

866. दूरादेव कृताञ्जलिर्न स पुनः पानीयपानोचितो,
रूपालोकनविस्मितेन चलितं मूर्धा न शान्त्या दृशा।
रोमाञ्चोऽपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादयो,
मुक्षेणो विधिरध्वगेन घटितो वीक्ष्य प्रपापालिताम्।।

867. बाणस्यैको जयति स क्षत्रः किं पुनर्द्वौ सुसंहतौ।
किं चित्रं यदि तन्वङ्ग्यास्तनाभ्यां निर्जितं जगत्।।

868. तान्येतानि वचामि यानि बहुशो धीतानि युष्मन्मुखाद्,
वक्ष्येऽहं बहुशिक्षिता क्षणमिति ध्यात्वास्मि मौनं गता।
गाढालिङ्गनमण्डलीकृतकुचं गाढं परिष्वज्य मां,
पीतानीव सहोदरेण हसता वक्रस्मितामेव मे।। - वराहस्य

869. आकृष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं
पीतं मया सभयमेव रतोत्सवेषु।
बिम्बाधरं दशसि चन्द्र मम प्रियाया-
स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्।।

870. मुहुरङ्गुलिसंवृताऽधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंशविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु।।

– कालिदासस्य

871. इदमप्युपकृतिपाक्षसुरभिमुखं ते मया घ्रातम्।
ननु कमलस्य मधुकरः सन्तुष्यन्ति गन्धमात्रेण।।

– कालिदासस्य

सामान्यशृङ्गारव्रज्या

872. हेमाद्रेः किमयं रुचिः किमथवा बालाब्जसिन्धोरियं,
किं वा सज्जनचेतसां कुलमिदं सौभाग्यपुञ्जश्च किम्।
ज्ञातश्शूलधरस्य कोऽपि शिखिना दग्धादनङ्गोद्गमात्,
सञ्जाता नवकन्दलीमृदुतरा मुग्धा मनोहारिणी।।

– राजशेखरस्य

873. केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने,
सच्छन्नं कुचयोर्युगं श्रुतिमले श्रोत्रे भ्रुवोः सन्तते।
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णं द्विजानां गणै-
रित्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते रागं करोत्येव नः।।

– विद्यायाः

874. यद् वक्त्रं च विलोचनं च दशनं चोष्ठं च पाणिं भुजं,
त्वन्निर्माणविधावसुन्दरधिया कृत्वा विधाताम्भसि।
अग्रे प्रोक्षितवान् क्वचिद् क्वचिदभूरिन्दुस्तदिन्दीवरं,
मुक्ता विद्रुममम्बुजं विषलतेत्येवं समाख्यापनम्।। -द्यूतोकस्य

875. निर्माल्यं नयनश्रियं कुवलयं वक्त्रं च दासः शशी
कान्तिप्रावर्णं ततो मधुलिहो यस्याश्च वाचः कलाः।
विंशत्यारचिताञ्जलिः करतलैस्तां याचते रावण-
स्त्वां द्रष्टुं जनकात्मजाहृदय हे मित्राणि मिश्रीकुरु।। -राजशेखरस्य

876. लोलां दृष्टिमितस्ततो विभजते सुभ्रूलताविभ्रमा,
मामुग्रे न विवर्तते वलिमता मध्ये न कम्रस्तनी।
हस्ताग्रं विधुनोति पल्लवनिभं सीत्कारभिन्नाधरा,
जातेयं भ्रमराभिलङ्घनतया वाद्यैर्विना नर्तकी।। -कालिदासस्य

877. चेतः कातरतां जहीहि सपदि स्वास्थ्यं समालम्ब्यतां,
दृष्टा सा स्मरवीरमार्गणपरित्राणौषधिः प्रेयसी।
यस्याः श्वाससमीरसौरभहतिर्भङ्गावलीवारण-
क्रीडापाणिविधूतकं कणकणात्कारो मुहुर्मूर्च्छति।। -गोनन्दस्य

878. न नीलाब्जं चक्षुः सरसिरुहमेतन्नवदलं
न बन्धूकस्येदं कुसुममधरस्तद्द्युतिधरः।
ममाप्यत्र भ्रातः प्रथममभवद्, भृङ्ग किमु ते
कृतं यद्वैरेभ्यो विरम विरम भ्राम्यसि मुधा।। -राजशेखरस्य

879. प्रयच्छाहारं मे यदि तव रहोवृत्तमखिलं
मया वाच्यं नीचैरिति गृहशुके जल्पति शनैः।
वधूवक्त्रं व्रीडाभरनमितमन्तर्विकसितं
हरत्यर्धोन्मीलन्नलिनमलिनावर्जितमिव।। - बिम्बोकस्य

880. यदेतद्धन्यानामुरसि युवतीसङ्गसमये
समारूढं किञ्चित् पुलकमिदमाहुः किल जनाः।
वयं त्वेवं ब्रूमः कुचयुगतटीचुम्बकशिला
समावेशाकृष्टः स्मरशरणलोकोत्कर इव।। -शतानन्दस्य

881. रहः क्षीरादेव प्रतिकलितसद्वृद्धिलुलिता
विलोक्यान्तर्नीला मणितरलभित्तौ विहसति।
मतिस्त्वेषास्माकं सपदि कतमेयं कुत इयं
स्वचेटीं कस्यैषा कितव कितवैर्लाति वदति।।

882. दरम्लानश्वासो लुलितकुसुमालङ्कृतशिरः
श्लथालोकं चक्षुः सरसनखलेखां कृतमुरः।
लसत्काञ्चीग्रन्थिस्फुरदरुणरलांशुजघनां
प्रियाङ्कोत्सृष्टाङ्ग्या विषमितमियं भावकनृणाम्।।

883. त्रिदशकुसुममश्वा सामोदशशी च कपोलयो-
रमृतमधुरे तिर्यग्भूते विषञ्च विलोचने।
यदिदममरैरन्तः सिन्धोः कथञ्चिदुपार्जितम्
युगपदाखिलं तन्मुग्धानां मुखेषु विभाव्यते।।

884. तत्पर्याप्तं स्तनगुणमुरो मुग्धकान्तं मुखं तत्,
लीलान्यासः स खलु कदलीगर्भभङ्गे समूर्धाः।
चेतस्तोकाः स्मितसुरभयो वाग्व्ययास्ते कटाक्षाः
तद् वैदग्ध्यं गत इव शिरः स्त्रीषु यत् कुन्तलीषु॥

885. आख्यानेषु श्रुतबहुतरोद्दामश्रृङ्गारलीला-
स्ते मार्गन्ति त्रिदशतरुणीकर्मणा दुष्करेण।
एषोऽनङ्गोऽनयत च गुरोर्गीतझङ्कारिणीनां,
पौरन्ध्रीणां विजयनगरे विभ्रमानात्मभूताः॥

886. नीलाब्जानां नयनयुगले द्राघिमादत्तपात्र-
कुम्भावेतौ कुचपरिकरः पूर्वपक्षी चकार।
भूविभ्रान्तिर्मदनधनुषो विभ्रमाबन्धवागी
त्वद्भुज्ज्योत्स्नाशशधररुचं भूषयामास तस्याः॥

887. गन्धोद्वहेति विकचेति मनोरसेति,
सा मालतिं प्रियगृहाणि कदाचिदेताम्।
गाढानुरागवलितः पिशुनोऽपि भोगी,
लीनो यमत्र सहसैव भुजङ्गराजः॥

888. जयन्ति मुक्तामणयो गुणाप्तये,
विसह्यते यैरपि वज्रभेदनम्।
नमो गुणेभ्योऽपि वधोर्घनस्तन-
स्थलीषु लीना परिरम्भयन्ति॥

889. परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात्,
किं शोषमायासि मृणालहारे।
तत्सूत्रतन्तोरपि तारकस्य,
तत्रावकाशो भवतात् किमु स्यात्।।

890. सप्रेमसादरसकौतुकसप्रसाद-
सावज्ञसैर्ष्यपरिवर्जितनर्तितभ्रूः।
तस्याः समस्तमदनः समदाननेन्दोः,
कन्दर्पदर्पदलनं वलनं तदक्षोः।।

891. चेतो हरन्ति मम तानि तवाधिकार-
तारुण्यसम्भ्रमसमुत्तरलानि तस्याः।
अन्तः प्रसूनधनुषा निभृतस्थितस्य
निश्वासभेदकुटिलानि विलोकितानि।।

892. आनन्दस्तिमिताः क्षणं क्षणमथप्रीतिप्रमीलत्पुटो,
वातान्दोलितनीलनीरजरुचः पीयूषधारामुचः।
एताः कस्य हरन्ति हन्त! न मनः किञ्चित्त्वपाङ्गं चल-
प्रेमप्रेरणमन्दमुग्धविलसत्तारोत्तरा दृष्टयः।।

893. स्मेरासितोत्पलदलैरुपमाभिरस्याः,
के यं नरा नयनयोरयशः पताकाः।
एनाङ्कबिम्बतुलनामृगशावकाक्षि,
नाद्यापि शाम्यति सुधामुखि किं वदन्ति।।

894. स्थाने मुग्धतमालकोमलतनोस्तस्या दृशोर्वेधसा,
वैदग्धीमुपसेव्यताकृतमधो तन्वी तदिन्दीवरम्।
साम्यं तद् वदनस्य कर्तुमनसाप्येते न च श्यामलं,
चक्रे यक्षति पत्रमत्र सुलभो बुद्धस्य बुद्धिभ्रमः।।

895. वाचः किन्नवकण्ठि मुद्रितमनारास्तां पिकेष्वादरः
कान्तिं गौरि विधेहि चन्दनरसैर्हेमश्चिरं पुष्यतु।
सैवाऽयं चयवक्रमिन्दुवदने राजन्तु पद्माकरा,
दृष्टिं संवृणु नीरजाक्षमदनः कामं शरान् मुञ्चतु।।

896. आश्लेषचन्दनरसोत्सवकौतुकानि,
क्रीडादुरोदरपणं प्रतिभूरनङ्गः।
भोगः समुद्यति जये च पराजये च,
यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव।।

897. [1]...
....जयारम्भसंभावनाभिः।
गीयन्ते वल्लवीभिः पथिकसहचरीप्राणयात्राप्रतापाः,
पातः प्रातर्वसन्तस्य परचितपदोद्गारिणो गीतिभेदाः।।

898. सुरक्तगीतित्वरिताधरान्तं
पश्यन्ति धन्याः मुखमायताक्षाः।
विलोलपत्रान्तरलग्नगुञ्जन्-
मधुव्रतं वृन्दमिवारविन्दम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठो न प्राप्यते।

899. अलसमुकुलिताक्षीं सुभ्रुवां वीक्ष्य तस्याः,
मयि विलुलितचित्ते मूकभावं प्रपन्ने।
प्रवणकुवलयान्तस्यारिणा षट्पदेन,
क्षणमनुगतनादान् गीतिमन्तः स्मरामि।।

900. अङ्गैरन्तर्विहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः,
पादन्यासो नयमपगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखा योनिं मृदुमभिनयः सद्धि कल्पानुवृत्तौ
भावाभावं नुदति विरसाद्रागबन्धः स एव।।

901. प्रहरविरतौ मध्ये बाहोस्ततोऽपि परेण वा,
किमु न सकलया ते बाहुप्रियमिहेष्यिसि।
इति दिनशतप्राप्यं सन्देशं प्रियस्य प्रिया
मनोहरनिगमनं बालालापैः सवाष्पसलिलैः।।

902. ....
....।[1]
स्त्री काचिदित्यपि विधाय मनो मदीयं
तामेव वामनयनां विषयी करोति।।

ततो दूतीवचनव्रज्या

903. लावण्ये प्रविधीयतेऽङ्गमपि ते संधार्यते जीविते
त्वद्ध्यानैः सततं कुरङ्ककदृशा किन्त्वेतदास्ते नवम्।
निःश्वासैः कुचकुम्भपीठलुठनप्रत्यङ्गमभ्यासनैः
श्यामीभूतकपोलमिन्दुरधुना यत्तन्मुखं यस्य ते।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।

904. सावेगा मुखलाञ्छने मुखमपि स्वं लाञ्छने दर्पणे,
त्रस्ता कोकिलकूजितादपि गिरं नामद्वयाभ्यां मनः।
चित्रं दुःसहदामिनीध्वनितभूवेषापि पुष्पायुधे,
बाला सा शुभसौभगं प्रतिपदं प्रेमाधिकं पुष्यति।।

905. विलिम्प्यन्ते तस्मिन् मलयजरसार्द्रेण सहसा,
दिशाचक्रं चन्द्रे स्वकृतमयि तस्या मृगदृशः।
दृशौ वाचः पाणौ वदनमवशः कण्ठकुहरे
हृदि त्वं हृष्टस्ते वदसि च गुणा एव भवतः।।

906. अम्भोरुहं वदनमीदृश इन्दुकान्तः,
पाथोनिधिश्च खलु भूतमयो विकारः।
आविबर्भूव सुभगे त्वयि दूरसंस्थे
चाण्डालचन्द्रधवलासु निशासु तस्याः।।

907. वक्त्रेन्द्रोऽत्र हरन्ति वाष्पपयसां धारां मनोज्ञां श्रियः
निःश्वासांश्च कदर्थयन्ति मधुरां बिम्बाधरस्य द्युतिम्।
तस्यास्त्वद् विरहेऽपि पङ्कलवणीलावण्यसंवादिनी-
छाया काऽपि कपोलयोः प्रतिदिनं तस्याः परं श्रोष्यसि।।

908. चन्द्रं चन्दनकर्दमेन लिखितं यन्मार्ष्टि दंष्ट्राधरा,
कामः पुष्पसरः किलेति सुमनो रङ्गं लुनीते च यत्।
वन्द्यं निन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वा गृहस्थाङ्गुलिः,
सोत्कम्पा सुभग त्वया वरतनुर्वाक् कूलतां लम्बिता।।

909. वपुः सारङ्गाक्ष्यास्तदविरलरोमाञ्चनिचयं,
त्वयि स्वप्नप्रान्ते स्नपयति परः स्वेदविसरः।
वलाकर्षत्त्रुट्यत्वलयजयकङ्कासु निनदे,
विनिद्रायाः पश्चादनवरतवाष्पाम्बुनिचयः।।

910. नो सौम्या गलितुं स्मरानलदशा यस्यास्त्वयि प्रस्थिते,
पत्रे साश्रुसखीजनोऽपरिचिते तल्पे लुठन्त्या मुहुः।
या लुप्तं कुचचन्दनेन सुतनोरद्यापि चन्द्रच्छला
सोदीर्णापि विशुद्धपाण्डुविसिनीपत्रं दिवि भ्राम्यति।।

911. प्रकटयति सा भङ्गं पश्यति सर्वं जगद्गतं शून्यम्।
आचरति स्मृतिराज्यं यातासारस्त्वबुद्धिरिव।।

912. ये निर्दहन्ति दहनश्च सितावलोकैः
क्रूरा द्विजिह्वकुटिलाः क्व विलासिनस्ते।
भीष्मादिभिः स्मरणमात्रविषैः शरैर्या
निःश्वासमास्यति नु कापि भुजङ्गभङ्गिः।।

913. अत्रैष स्वयमेव चित्रफलके कं प्रस्खलल्लेखया
सन्तापार्तिविनोदनाय कथमप्यालिख्य विख्यातवान्।
वाष्पव्याकुलमीक्षितः सरभसं चूताङ्कुरोऽप्यर्चितो
मृद्वी च प्रणता सखी सुमदनव्याजेन चाप्याहुतः।।

914. सा सुन्दरी प्रियवियोगहुताशनेऽस्मिन्
नौत्यत्र[1]वाष्पसलिलैर्निजदेहहव्यम्।
जन्मान्तरे विरहदुःखविनाशकाया
पुंस्कोकिलाभिहितमत्र पदैर्जुहोति।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'नत्युक्ष्म' ।

915. साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं,
चित्रार्पितामहमिमां बहु मन्यमानः।
स्रोतोवहां पथि निकामजलामचिन्त्य,
जातः सखे! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्।। – कालिदासस्य

916. दर्शनमुखमनुभवतः साक्षादवतन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि च प्राकृता कान्ता।।

917. प्रजागराद् खिन्नीभूतः सखे! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायां तस्याः स्वप्नसमागमाय।
वाष्पस्तु न ददात्येव द्रष्टुं चित्रगतामपि[1]।।

918. निष्ठुरं सत्यमेवेदं काष्ठं ते हृदयं यदि।
तथापि दीयतां तस्यै गता सा दशमीं दशाम्।।

919. उन्मीलन्ति नखैर्लुनीहि वहति क्षौमाञ्चलेनावृणु,
क्रीडाकाननमाश्रयन्ति वलयक्वाणैः समुल्लासय।
इत्थं रञ्जनदीक्षणानि च कुहूकण्ठीषु साङ्केतिक-
व्याहारा सुभग त्वदीयविरहे तस्याः सखीनां मिथः।।

920. सा रोमाञ्चति सीत्करोति पुलकत्युत्कम्पते ताम्यति,
भ्राम्यत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन किं ते रसात्,
स्ववैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा नान्तकः।।

921. निःपत्रं नलिनीदलं स्फुटमिदं निश्चन्द्रमा मेदिनी,
पाणिर्वारण एव चन्द्रमसहामुवध्वमुग्राञ्जलिः।
प्रव्यक्तः स किमिन्दुसुन्दरमुखी कन्दर्पदाहज्वरो,
यज्ज्वालाभिरति स्फुटन्ति हृदयव्यासक्तमुक्तास्रजः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ इत्थं पाठः प्राप्यते छन्दोभङ्ग।

922. सनीहारा हारा: सरससरसम्पन्नशयनं,
जनार्द्रा नैराद्रास्तपति तपनप्रायमनिल:।
त्वयि प्राणत्राणो गतवति सुदूरो वरतनो-
रनल्पान् मत्तापान् विदधति हिमांशो: परिकर:।।

923. अस्मिंश्चन्द्रमसि प्रसन्नमहसि व्याकोषकुन्दत्विषि,
प्राचीनं खमुपेयुषि त्वयि गते दूरं निजप्रेयसि।
श्वास: कैरवकोरकेतनमुखं तस्या: सरोजीयति,
क्षीरोदीयति मन्मथाट्टकमपि द्राक् चन्द्रकान्तीयति।।

924. धिक् चाण्डाल किमालपामि मधुपी झङ्कारवाञ्छामरून्,
माकन्दाङ्कुरसन्निपातजनित: तस्या: सकोटज्वर:।
ता: सन्तापरज: स चाङ्गजडिम: साहर्ति सञ्जागरा,
यद्याश्लेषरसेन शाम्यति पुन: त्यक्तोऽन्यथा हस्तक:।।

925. वाष्पैर्लिम्पति चाश्रुभि: कलुषिता गण्डस्थलीचिन्तया,
चेत: कातरितान्तरङ्गितमुर: श्वासोन्निभि: पीवरै:।
इत्थं त्वद् विरहे मदीयविरहे देवि! स्त्रिया मैव वा
जानीते परितापथित्वमथवा जानाति पुष्पायुध:।।

926. कोपस्य किं सविषयं तरलाक्षि यो य-
माज्ञाविधेयहृदयप्रणतो जनोऽस्ति।
बद्धोऽञ्जलिस्तदपि चण्डि मम प्रसीद
शाम्यन्तु तानि मदनालसजृम्भितानि।।

927\. सुभग सुप्रकृतप्राप्यो यदि त्वं सा,
वापि प्रियसहचरीणां धन्यानामुपैति विधेयताम्।
तदलमधुना निर्बन्धेन प्रसीद परं परं प्रणयमधुरः,
सद्भावो वा चिराय विवर्धताम्।।

928\. दोला दोलाः श्वसनमरुतः चक्षुषी निर्ववाते,
तस्याः शुष्यत्तरलसुमनः पाण्डरागण्डपित्तिः।
तद्गात्राणां किमिव हि वयं कुर्महे दुर्लभत्वं,
येषामग्रे प्रतिपदमसच्चन्द्रलेखाप्यतन्वी।।

929\. तस्यास्तापभुवं नृशंस कथयाम्लाना[1] दृशस्ते कथं,
पद्मिन्याः सरसं कुलं विनिहितं, यस्याः सभायामपि।
आदौ शुष्यति सङ्कुचत्यनु ततः चूर्णत्वमापद्यते,
पश्चान्नैव तथाददत् दहति च श्वासावधूतं सखी।।

930\. विषं चन्द्रालोकः कुमुदवनवातो हुतवहः,
क्षतच्छारो हारः स खलु पुटवाको मलयजः।
अये किञ्चिद् वक्त्रं त्वयि सुभग सर्वे कथमसि,
समं जातास्तस्याः विषम[2]विपरीताः प्रकृतयः।।

ततः सम्भोगव्रज्या

931\. रूढे रतिव्यतिकरे करणीयशेष-
मायासभाजि दमिते मुहुरातुरायाः।
प्रत्यक्षरं मदनमन्थर मर्दयन्त्याः
किं किं न हन्त हृदयं मलमङ्गनायाः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मौनी'।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः'महः'।

932. तैस्तैर्विजृम्भितशतैर्मदनोपदेशै–
मुग्धा विधाय ललितानि च तानि तानि।
अङ्के निलीय कवितुं शिथिलाङ्कमुद्रा–
निद्राति नातितपसः हलसम्पदेषा।।

933. यद्वीराभरभोग्यमास्यकमलं, यच्चेक्षुप्रत्युल्लसत्
पक्ष्मश्रेणिपदं तथा गजमनो राजश्रियामाश्रयः।
यद्वर्धिष्णुमनोभवप्रणयिता यन्मन्दमन्युग्रह–
स्तेनैवेह मनो हरत्यधरितप्रौढा नवोढा न किम्।।

934. समालिङ्गत्यङ्गैरपसरति यत्प्रेषितवपुः
विधातुं यद्दृश्यं घटयति घटालिङ्गनमपि।
तपोभिर्भूयोभिः किमु न कमनीयं सुकृतिना–
मिदं रम्यं बाल्यं मदनविवशाया मृगदृशः।।

935. इदममृतमयेयं सेयमानन्दसिन्धु–
र्मधुरमधुरपीयं किञ्चिदन्तश्चिनोति।
यदयमुदयलीलालालसानां वधूनां,
रतिविनिमयभाजाङ्केलिभिर्याति कालः।।

936. कोऽसौ सुन्दरि पुष्पसायकसखः, सौभाग्यवारान्निधिः,
कोऽसाविन्दुमुखि प्रसन्नहृदयः कः कुम्भिकुम्भस्थली।
यस्मिन् विस्मयनीयतप्ततपसी स्वैरं समुच्छृङ्खला,
विश्राम्याणि यतस्तव स्मरहरः कन्दर्पकेलिप्रियः।।।

937. अन्ते वासिसि रोग्धुमक्षमतया दोः कन्दलीभ्यां स्तनौ,
तस्योरःस्थलमुत्तरीयविषये सद्यो मया सञ्जितम्।
श्रोणीं तस्करधीर्विरोहति पुनः क्रीडाम्बुधौ मावधौ,
मज्जन्ती च नु धारयन् मनसिजो देवः स मूर्च्छागुरुः।।

938. अंशाअद्रिदुकूलया सरभसं गूढौ भुजाभ्यां स्तना-
वाकृष्टे जघनांशुके ह्रदमधः संसक्तमूरुद्वयम्।
नाभीमूलनिरुद्धनेत्रविमयिव्रीडानताङ्ग्या तया
दीपस्फूतनिवातवेपितशिखः कर्णोत्पलेनाहतः।।

939. जिह्वेमि जागर्ति गृहोपकण्ठे
सखीजनो वल्लभकौतुकेन।
तदंशुकाक्षेपमधीरियाणो
विमुञ्च्य काञ्चीगणयो रणन्ति।।

940. कान्ते कल्पमुपागते विलुलिता नीवी स्वयं बन्धनात्
वासश्च श्लथमेव भेदधवलं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम्।
एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः
कोऽस्यै काञ्चरतेऽपि कीदृगमिति स्वल्पापि नो मे स्मृतिः।।

941. आकान्तकान्तवदने मदनानुरागा
मुद्यर्चितं तु विपरीतरतेऽस्य दत्तम्।
तर्त्तर्कयामि कुहरैकतुलारुणेऽस्मिन्
निर्जित्य दासमकरोदिव तं मृगाक्षी।।

942. अधरगामिनि मन्मथसङ्गरे कृशतनुः सुभदं यदपातयत्।
इति मुदेव जलङ्गलतालये कुसुमवृष्टिविकारिणि मे रुचौ।।

943. अतिप्रौढा रात्रिर्बहलशिखदीपः प्रभवति
प्रियं मे प्रारब्धं स्मरविधिरसङ्गः पुनरसौ।
सखि स्वैरं स्वैरं सुरतमकरोद्दीधितिवपु-
र्यतः पर्यङ्कोऽयं रिपुरिह नु तत्कालमुखरः।।

944. जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीपः
सखीजनः पश्यति कौतकेन।
मुहूर्तमात्रं कुरु कान्त धैर्यं
बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुङ्क्ते।।

945. अजातरजसां बालां मालतीकलिकोपमाम्।
चुम्बति भ्रमरो रागान्तरतः कालमपेक्षते।।

946. धन्यासि यत्कथयसि प्रियसङ्गमेऽयं,
नर्मस्मितं च वचनं च रतिञ्च तस्य।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे तदीये,
सख्यः शपानि यदि किञ्चिदपि स्मरामि।। -विद्यायाः

947. जयति समरतन्तो लोलनापाण्डुगण्ड-
स्तनहतनिजवासस्वेदपूर्वानुजन्मा।
श्लथतनुभुजबन्धप्राप्तदीर्घप्रसारो,
मुखपरिमलमुग्धः कान्त यः श्वासवातः।।

948. मनोजन्मप्रौढव्यतिकरलतापाशविधिसु,
प्रियः प्रायो दद्याद् दयितहृतचेतोद्भवविधिः।
सहोङ्कारोजृम्भास्मरपरवशा कापि विमुखं,
सुधायोगं धत्ते जगति वि[1]रसं प्रौढयुवती।।

949. समाकृष्टं वासः कथमपि हठात् पश्यति मयि,
क्रमादाराद्द्वन्द्वं जरठशरगौर्या[2]मृगदृशः।
तया द्वेष्टिं दत्वा महति मणिदीपो निपुणया,
निरुद्धं हस्ताभ्यां झटिति मम नेत्रोत्पलयुगम्।।

950. अनल्पं सन्तापं जनयति मनोजन्मजनितं
तथा शीतं स्फीतं हिमवति निशीथे श्लथयति।
तदेयं कोऽप्युष्मारमणपरिरम्भोत्सवमितः
पुरन्ध्रीणां रन्ध्रस्तनकलशजन्मा विजयते।।

951. नाधन्या विपरीतमोहनरसप्रेङ्खन्नितम्बस्थली,
लोल्लद्भूषणकिङ्किणीकलवरव्यामिंश्रकण्ठस्वनम्।
संरम्भश्लथकेशबन्धविगलद्मुक्ताकलापं हृतं,
श्वासच्छेदतरङ्गितस्तनयुगं प्रीणाति शृङ्गारिणी।। -विद्याधरस्य

952. सीत्कारवन्ति दरमीलितलोचनानि,
रोमाञ्चमुग्धमनुधर्मकणावलीनि।
एणीदृशां मकरकेतुनिकेतनानि,
वन्दामहे सुरतविभ्रमचेष्टितानि।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'क्षिपतिर्विरस'।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'गौर'· छन्दोभङ्गः।

953. मुहुर्व्रीडावत्याः प्रतिहसितवत्याः प्रतिमुहुः,
मुहुर्विश्रान्तायाः मुहुरतिनिविष्टव्यवसितैः।
समो भोगिस्तस्याः स्तिमितमलिकापूर्णदलकं,
मुखं लीलावत्या हरति विपरीतव्यतिकरे।। – सुरभेः

954. आस्तां दूरेण विश्लेषः प्रियतमालिङ्गितो मम स्वेदः।
किल सरित्पान्थो रोमाञ्चः किल पर्वतः[1]।।

955. आमीलन्नयनोत्पलं तरलितश्वासप्रसन्नस्तन-
द्वन्द्वादोलितहारवल्लिवलयोत्कम्पत्क्वणन्मेखलम्।
आनन्देन विशुष्य दामविहितव्याहारनिर्व[2]र्जित,
प्राक्कायं दृढबाहुबन्धमबलानां धन्यमालम्बते। –उमापतिधरस्य

956. क्लेशोल्लासितलोचनं श्लथपदं दोवल्लिकं प्रस्खलद्,
धर्मिल्लं श्वसितोत्तरङ्गमपरिस्पन्दं वहन्ती वपुः।
मुञ्चेति स्खलिताक्षरेण वचसा तन्वी यथा याचते,
विश्रामाय तथाधिकं रतिविधा बाहू तमुन्मीलतः।। –लक्ष्मीसेनस्य

957. सन्दष्टाधरमुग्धसीत्कृतिभुजा मूलान्तमज्जंस्तथा,
वेणीकम्पितपार्श्वमाननचयैः कण्ठस्फुरत्कूजितम्।
गाढालिङ्गनवामनीकृतकुचप्राग्भावनाविष्कृता,
स्फूतप्रौढनितम्बिनीरतमविश्रान्तं मनो वाञ्छाति।। –तस्यैव

958. रतान्ते श्रान्तायाः स्तनजघनमन्दालितदृशः
स्मरावेगव्यग्रे दरयति दुकूलं मृगदृशः।
क्षणं शोणौ पाणिः क्षणमपि कुचाग्रप्रियदृशोः,
क्षणं विन्यस्यन्त्या जगदपि न मूल्यं मृगदृशः।। –कविशेखरस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ इत्थं छन्दो भङ्गरूपे श्लोकः प्राप्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'व्याव' ।

959. सत्यङ्गादपरो विधिः स च मुधासेकः क्षणं नेत्रयोः,
तत्साम्राज्यगमञ्चितं तदपरं हेम्नः प्रतिष्ठास्पदम्।
यद्बालाबलवन्मनोभवभयत्रस्तं त्रयं मात्रया,
तत्कालोचितनर्मकर्म दयितावैदग्ध्यमभ्यस्यति।।

960. यत्तीव्राचलिते दृशोः सुकृतिनामेतावती भोगभूर्-
यश्चानन्तरुचः स्तुतस्य च मनागेतावदिन्दोर्महः।
किञ्चैतावदिह प्रियेतरमृतं यद् विभ्रमोऽयं गिरा-
मेतावान् मदनश्च यस्तव परीरम्भोत्सवाडम्बरः।। –तस्यैव

961. विकीर्णः धम्मिल्लः श्रमसलिलबिन्दुः तव च तै-
र्मुखेन्दुव्याकोशं श्वसितमिदमाहात्र भटिनम्।
अमुष्मिन्नारम्भे बलवलितमुक्ताभवमुरः,
परं तूष्णीमेते दधति रसनादाम्नि मणयः।। –नारायणस्य

962. छिन्नोऽर्धोरुकमेखलश्चरणयोः सङ्क्रान्तलाक्षारसं,
तल्पोपान्तमुदीक्ष्य सस्मितमुखी वैलक्ष्यसंभ्रान्तया।
तन्वङ्ग्या दृढदन्तुरोदरचलोश्चूलाधरः शृङ्गया,
क्षिप्ताः प्रेयसि कूटकोशकुटिलभ्रूविभ्रमा दृष्टयः।। –योगेश्वरस्य

963. सोत्कम्पश्च सितोत्तरं सपुलकस्वेदाम्बुगण्डस्थली,
खेलत्कुण्डलमस्फुटस्मितमिलन्मन्दाक्षमुक्षि क्षुतम्।
संभेदेऽपि मृगीदृशां सुकृतिनः कस्यापि कान्ताननं,
प्रभ्रश्यत्कवरीपरीतमुरसि स्मेरस्य विश्राम्यति।।

–अवन्तिजह्नोः

964. पर्यस्तप्रतिकर्मकीर्णकवरीभारं समुन्मीलितं
स्रग्दाम स्वयमन्यदेव यदुपक्रान्तं मया साहसम्।
सम्पन्नाः सखि केलिकर्मविधयः प्राच्याः परं दुर्वह-
श्रोणीबिम्बमहो[1]मनीषितसहस्रांशोऽपि नासादितः।। - शरणकवेः

965. गण्डोन्मीलत्पुलककमलश्वास[2]भिन्नाधरोष्ठी
दत्तज्योत्स्नाकुसुमितमुपस्रंसि कर्णावतंसम्।
प्रेमारम्भे दयितनयनद्वन्द्वसंवादवक्री-
भूते स्मेरं मुखमुपचितस्वेदमेतन्मृगाक्ष्याः।। - धोयीकस्य

966. विलुलितकवरीकस्वेदपूरार्द्रगण्ड-
स्थलमलयजपङ्काः पाण्डुकर्णावतंसम्।
रतिविनिमयकेलिच्छेदसञ्जातलज्जा-
मुकुलनयनमास्यं हन्त! पश्यामि तस्याः।। -लक्ष्मणसेनस्य

967. आन्दोलत्कवरीकमुल्लसदुरुश्वासोर्मिभालस्थलं,
घर्माम्भः करमंशपाणिविलुनत्ताटङ्करत्नद्युतिः।
स्वच्छन्दस्मरकेलिखेलदलनश्रोणीप्रमोदस्फुरद्
लीलालोलविलोचनं किमपि तन्मुग्धं वपुः सुभ्रुवः।।

968. व्याकीर्णा कवरी कपोलफलके कस्तूरिकापल्लवे,
व्यालुप्तश्रमनिःसहन् वपुरयं हारः स वल्मौक्तिकः।
निःशेषच्युतचन्दनस्तनमिति स्वच्छन्दमाराधितः,
पञ्चेषुस्तदलं विनाशनिकृतैरस्मात् परं साहसैः।। -शङ्करकवेः

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मरात्' ।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'छुत्वात्य' ।

969. जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीपः,
किन्त्वं मुधा हे पयसि प्रसीद।
मुहूर्तमात्रं कुरु धीर धैर्यं,
बुभुक्षितो नात्ति करद्वयेन।।

970. नखदर्पनिपातजर्जराङ्गी रतिकलहे विनिपीडिता प्रहारैः।
सपदि मरणमेव सा तु यायाद्यदि न विवेद धरामृतं पयोभ्यः[1]।।

971. मुग्धे तवास्मि दयिता पुरुषो भवन्त-
मित्युक्तया नहि नहीति शिरो विधूय।
स्वस्मात् करान्मम करे वलयं क्षिपन्त्या,
वादं विनाभ्युपगमः कथितो मृगाक्ष्याः।।

972. पततु तवोरसि सततं दयिता धम्मिल्लमल्लिकाप्रकरः।
रतिरसरभसकुचग्रहलुलिताककवरीगलितः।। –बाणस्य

973. विश्रान्तिर्नूपुरे जाते श्रूयते रसनाध्वनिः।
प्रायः कान्ते रतिश्रान्ते कामिनी पुरुषायते।।

974. शौण्डिकस्य वधूवाक्यं श्रुत्वा शकनिषूदनः।
ददौ लक्ष्यं पुनर्लक्ष्यं लक्षमक्षरसङ्ख्यया।। –तस्यैव

975. भावोद्गाढममूढकम्पपुलकैरङ्गैः समालिङ्गितं,
रागाचुम्बितमभ्युपैति वदनं पीतं च वक्रामृतम्।
जल्पत्येव मुहुर्नतिर्न निभृतं प्रध्वस्तचारित्र्यया,
निश्शेषेण ममापि यावदवधिर्वाचस्तु नाङ्गीकृताः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'पयस्य'

976. यत्पीनस्तनभारलालसलसद्वाष्पस्फुरद्गण्डया,
तन्वङ्ग्या रभसार्पितं सरभसं वक्त्रं मुहुः पीयते।
तत्श्लाघ्यं सुरतं च तन्नदमृतं तद् वस्तु तद् ब्रह्म तत्,
चेतो हारि तदेव तत्किमपि तत्तत्त्वान्तरे सर्वथा।।

977. अस्याः स्तनौ नियतमेव शुभाननायाः,
वेधाः सुधारसघटीयुगमाससज्ज।
येनोपगूहनमनोहरयन्तु पात-
निष्पीडनादमृतमुग्धनताधरेण।। -कविपञ्चाननस्य

978. हर्षाश्रुदूषितविलोचनया मयाद्य,
किन्तस्य तत्सखि! निरूपितमन्दमन्दम्।
माकञ्चकं चरति निष्कृतदेहयाच्चा,
ज्ञातानि तानि परिरम्भसुखानि किं वा।।

इति प्रसन्नसाहित्यरत्नाकरे व्रज्यायां चतुर्थोल्लासः

* * * *

"समाप्तिनिधनव्रज्या"

979. राजन्ति कान्तनखरक्षतयो मृगाक्ष्या,
लाक्षारुणद्द्रवमुचः कुचयोरुपान्ते।
अन्ते प्ररुढमकरध्वजपावकस्य,
शङ्के विभिद्य हृदयं निगृहस्फुलिङ्गाः।।

980. जयन्ति कान्तास्तनमण्डलेषु,
प्रियार्पितायार्द्रनखक्षतानि।
लावण्यसम्भारनिधानकुम्भे,
मुद्राक्षराणीव मनोभवस्य।।

981. ....[1]।
पेङ्खत्क्रीडाङ्गलितकवलीबन्धनव्याग्रपाणिः।
अर्धग्रासस्फुटनखपदालङ्कृताभ्यां कुचाभ्यां
दृष्टा धारानवनतमुखी सा मया मोहनान्ते।।
- राजशेखरस्य

982. व्याकीर्णत्कवरीनिपीतमधरो बिम्बाधरः पाटलो
नेत्रे प्रोषितकज्जले सचलिताः पूर्णालकश्रेणयः।
आश्लेषच्युतचन्दनः स्तनतटः श्रेष्ठाङ्कवेदोल्लते,
स्त्रीणामित्युपभोगिनः परिलसत्यङ्गेषु भङ्गीक्रमः।।

983. शतं वारानुक्तः प्रियसखि वचोभिः सुपुरुषं,
सहस्त्रं निर्वृत्तः चरणपतितः पार्ष्णिहतिभिः।
कियत्कृत्वौबद्धा पुनरिह न विद्मो भृकुटयः,
तथापि क्लिश्यन्तां क्षणमपि न धूर्तो वहयति।। -कस्यचित्

---
1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

984. व्रजसि यदि तदाभिधेहि किञ्चित् कुसुमसराह्निकमर्माक्षराणि।
प्रियतममलयानिलपुरस्ताद् वहति रसालपरागभूसराङ्गः ।।
– शङ्करधरस्य

985. गन्तव्यं यदि जीवनाथ तदियं मध्येऽत्र किं नीयताम्
त्वद्बाहुप्रणयं ममास्तु हृदयालम्बाय कौक्षेयकः।
तस्मादेव न मे भविष्यति भयं क्रुद्धस्य चेतो भुवः,
तत्कार्यं मधुदग्धमन्दमधुपी झङ्कारतारं धनुः।। – गदाधरस्य

986. पीनस्तुङ्गः कथितः स्तनान्तरे,
कान्तदत्तमबलानखक्षतम्।
आवृणोति विवृणोति चेक्षते,
लब्धरत्नमिति दुर्गतो जनः।।

987. किं भूषणेन रचितेन हिरण्मयेन,
किं भूषणादिरचितेन विशेषकेन।
अङ्गानि कुङ्कुमरुचीनि विलासिनीनाम्,
अङ्गेषु किं नखपदानि न मण्डलानि।।

988. नदनखपद्माङ्गं गोपयत्यंशुकेन,
स्थगयसि पुनरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्।
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्पन्
ननु परिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम्।। – माघदत्तस्य

989. प्रत्यूषे गुरुसन्निधौ गृहशुके तत्राप्यहो जल्पितम्
प्रस्तोतुं परिहासकारिणि पदैरर्धोदितैरुच्यते।
क्रीडासारिकया निलीय निभृतं डातुं न पात्रं वधूः,
प्रारब्धः सहसैव सम्भ्रमकरो मार्जारगर्जा रवः।।

990. प्रभाते पृच्छन्तीमनुरभसवृत्तं सहचरीं,
नवोढा न व्रीडा मुकुलितमुखीयं सुखयति।
लिखन्तीनां पत्राङ्कुरमनिशमस्यास्तु कुचयो-
श्चमत्कारो गूढं करजपदमासां कथयति।।

ततो विरहिणीव्रज्या

991. देवेन प्रथमं जितोऽसि शशिभिर्लेखाभृतानन्तरं,
बुद्धेनोद्धतबुद्धिना स्मररतः कान्तेन प्रान्तेन मे।।
त्वं त्वेतानवतंसि मामनिकृषां बालामनाथां श्रियं,
धिक्तां धिक्तव पौरुषं धिगुदयं धिक्कार्मुकं धिक् क्षरान्।।

– श्रीराज्यपालस्य

992. कर्णे यन्न कृतं सखी जनपदे यन्नादृता बन्धुवाक्,
यत्पादे निपतन्नपि प्रियतमः कर्णोत्पलेनाहतः।
तेनेन्दुर्दहनायते मलयजालेपः पुलिङ्गायते,
रात्रिः कल्पशतायते विषलताहारोऽपि भारायते।।

993. आहारे विरतिः समस्तविषयग्रामे निवृत्तिः परा,
नासाग्रे नयनं यदेतमपरं यच्चैततानं मनः।
मौनं चेदमितं च सूर्यमखिलं हा, विश्वमाभाति ते
तन्वङ्ग्याः सखि योगिनि त्वमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि।।

994. वत्से नैते पयोदाः सुरपतिकरिणो नो वकाः कर्णसङ्ख्याः
सौदामिन्योऽपि नैताः कनकमयमिदं भूषणं कुम्भपीठे।
नैतत्तोयं नभःस्थं पतति मदजलं श्वासवातावधूतं
तत्किं मुग्धे वृथा त्वं मलिनयसि मुखं प्रावृडित्यश्रुपातैः।।

995. केयूरीकृतकं कणावलिरसौ कर्णोऽर्पितात्तंसितो
व्यालोलालकपद्धतिः पथि पुरी बद्धाञ्जलिः पृच्छति।
यावत् किञ्चिदुदन्तमात्मकमितस्ता वत्स एवेत्थजा
व्रीडाचक्रितकण्ठतालमबलाः कैः कैर्नभिन्ना रसैः।।

996. मध्यासन्दसमुद्‌गता तदनु च द्वारान्तरालङ्गता
निर्याता च कथञ्चिदङ्गणभुवः प्रेयान्तनालोकितः।
हं हो वायसि राजहंसि शुकि हे हे सारिके कथ्यतां
का वार्तेति मृगीदृशो विजयते वाष्पान्तरालं वचः।।

– चित्राङ्गस्य

997. प्रिये प्रयाते हृदयं प्रयाते
लज्जा गता चेतनया सहैव।
निर्लज्ज हे प्राण कथं न यासि
महाजनो येत गतः स पन्था।।

998. कस्मादिदं नयनमस्तमितामितश्रीः–
विंश्रान्तपत्ररचनौ च कुतः कपोलौ।
शृङ्गारवारिसहकाननराजहंसि
कस्मात्कृशासि विरसासि मलीमसासि।।

–विष्णुहरेः

999. किमिति कवरी यादृक्तादृगृता द्युतिरीदृशी[1]
किमकज्जले मृगमदमसीपत्रन्यासः सं किं न कपोलयोः।
अयमयमयं किञ्चित्कामनयनस्मरेण
नरः शशिमुखिसखी हस्तन्यस्तो विलासपरिच्छदः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'दृवमसौ' छन्दोभङ्गः।

1000. श्वासास्ताण्डवितालकाः करतले सुप्ता कपोलस्थली
नेत्रे वाष्पतरङ्गिणीपरिषदः कण्ठे कलः पञ्चमः।
अङ्गेषु प्रथमप्रवृद्धफलिनी लावण्यसंवादिनी
पाण्डिम्ना विरहोचिता न गमिता कान्तिः कथागोचरम्।

–राजशेखरस्य

1001. दहति विरहे व्यङ्गानि व्याकरोति समागमे
हरति हृदयं हृष्टः स्पृष्टः करोत्यरागां तनुम्।
क्षणमपि सुखं यस्मिन्प्राप्ते गते च न लभ्यते
किमपरमतश्चित्रं यन्मे तथापि स वल्लभः।।

1002. कौऽसौ धन्यः कथय सुभगे कस्य गङ्गा सरिद् वा
तोयास्फालैः पतिकरखलत्कारिकङ्कालमास्ते।
यं ध्यायन्त्या सुमुखि लिखितं कज्जलक्लेदभाजि
व्यालुम्पन्ति स्तनकलशयः पत्रमश्रूण्यजस्रम्।।

1003. सन्तो नूपुरवादिनः प्रवलिनः प्रेङ्खा न वर्हिव्रजा
व्योम श्यामलयन्तु हन्त जलदाः श्रीकण्ठकण्ठत्विषः।
तत्तद् वै दिवसैः प्रयास्यति सखि प्राणो निरालम्बनः
किं बालं वितकुम्भिलस्य कुरुते क्रुद्धोऽपि दौः साधिकः।।

– मिश्रवासूकस्य

1004. वद विधुन्तुदं मानिनममीरितेस्त्यजसि किं द्विजराजधिया रिपुम्।
किं दिवं पुनरेति यदीदृशः पतित एष निसेव्य हि वारुणी।।[1]

1. विषमवृत्तम्

1005. त्वमविधेहि विधुं सखि मद्गिरा किमिदमीदृग् धिक् क्रियते त्वया।
न गणितं यदि जन्मपयोनिधौ हरशिरःस्थितभूरपि विस्मृता।।
–श्रीहर्षस्य

1006. पतन्त्यविरतं वारिधारा नृत्यन्तु कोकिनः।
मम कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति।।

1007. किं वृत्रैर्न विजृम्भितं स्तवकितं, किं तैर्न कं केलिभिः
सिन्दूरैरिव मुद्रितास्तत इतो जाते न किं किंशुकाः।
विस्मृत्यापि न कोकिलैः किमुरुतं किं दाक्षिणात्यानिलै-
र्घ्रातं तत्र निवृत्त एकहृदयो यत्रास्ति मे वल्लभः।।

1008. आजन्मव्यवसायिता क्रतुशतैर्नाराध्य पुष्पायुधम्,
केनाकारि पुरातनोदरि तनुत्यागः पयोदोद्गमे।
यस्यार्थे सखि लोलनेत्रनलिनीलोलायमानस्खलद्-
वाष्पाम्भः पतनान्तरालवलितग्रीवं पथः पश्यसि।। –धोयीकवेः

1009. सृष्टोऽसौ यदि तत् किमस्मि घटिता धिग् निर्मिता चेदहं,
तत् किं सङ्गतिरावयोः यदि च किं प्रेमास तावान् गतः।
तत् चेत् प्रेम तथाविधं विघटना कस्मादियं साऽपि चेत्,
सञ्जातं हतजीवितं कथमहो दैवस्य यामा गतिः।। – विद्याधरस्य

1010. अपि विकिर गिरं मदर्थमेकां किमिति न किन्नरकण्ठकुञ्चितासि।
तव मधुरवचोभिः कृताभिषेकैः सुतनु मनोरथभूरुहाः फलन्तु।–रामदासस्य

1011. विरम विरम दोषादेष दासोऽस्मि भोगात्-
सुतनु नहि ममास्ते साक्षिभूतं मृगाक्षि।
तव चरणनखाग्रारक्तरक्ताङ्गुलीभिः,
लिखितमपरमास्ते दासपत्रं शिरो मे।। – विरिञ्चेः

1012. किं वातेन विलङ्घिता न न महाभूतावृता किं धन-
भ्रष्टा किं धनसन्निपातलहरी पृष्ठादिदं किं धनम्।
तत् किं रोदिति मुह्यति श्वसिति किं स्मेरं च धत्ते मुखम्
धृष्टः किं कथयाम्यकारणरिपुः श्रीभोजदेवो भवान्।। -क्षित्रपस्य

1013. क्रोडः प्रागवलोकनेन मदनव्याधेः ततस्तारितः
सन्त्रायस्व तवैव मृत्युविगतो निःपीतवक्रासवः।
दासः केन न हेतुना यदि यदा रोषादयं ताडितः
किं जातं वदनावलोकवलितव्रीडायनं प्रेयसि।। -गोधिकस्य

1014. उच्छिप्यालकमालिकां विलुलितामापाण्डुगण्डस्थलीं,
विश्लिष्यद्वलयप्रपातभयतः प्रोलम्व्य किञ्चित् करौ।
द्वारस्तम्भनिषण्डगात्रलतिका वेलापि पुण्यात्मना
वर्त्मालोकनदत्तदृष्टिरबला तत्कालमालिङ्गिता।।

-राजशेखरस्य

1015. गर्जत्येकः परभृतयुवा पञ्चमध्वानगर्भ-
रात्रिस्वैरं मलययवनो दूरतो जीवितेशः।
सह्यालिङ्ग प्रियसखि पुनः क्वावयोर्दर्शनं स्यात्
पुंसानं मे मरणसमयाः काष्ठदेशे लुठन्ति।।

1016. अत्युद्गता मदनवह्निशिखावली या
सा वाद्यते किमिह चन्दनचर्चिताभिः।
यत्कुम्भकारपवनोपरि पङ्कलेप-
स्तापााय के बलमसौ न तु तापशान्त्यै।।

1017. अवधिदिवसोऽसौ नात्रिगतः किमतः परं,
वितर नयने पश्येतरं मे पुरः सखि साहसम्।
यमियं प्रौढज्वालाकरालितरोदसी,
मलयजरसारक्तैरङ्गैः प्रयास्यति कौमुदी।। –गोलकस्य

1018. भ्रातः किं भगिनि क्व चाद्य गमनं यत्रास्ति भर्ता स ते,
सत्यं सत्यमिदं ममाक्षरयुगं सद्यः स्वरूपं नय।
योऽसौ प्राङ्गणके त्वयाञ्जनशतैश्चूताङ्कुरः पालितः,
सत्प्राणान् मम हन्तु मुद्रित इतः प्राणेश्वर त्राहि माम्।।

1019. को धन्यः सखि स्वस्ततेन मनसा को वेधसा निर्मितः,
कः प्रेयान् मदनस्य कस्य फलितः प्राचीनपुण्यक्रमः।
एतत् स्वस्य कृते दिवानिशमहो श्रान्तस्खलद्वारिभिः,
मौनाल्लोचनगण्डकैस्तपयसे वक्षोज नित्यं हयम्।।

1020. रे रे वायस दक्ष दक्षिणगतेः पान्थस्य सङ्गार्थिनी,
का कस्यास्य विवेकशून्यमनसो मा देहि मुग्धे वलिम्।
भ्रान्त्या यः सुतवत्सलः पिकसुतं पुष्णाति यत्नैरहो,
सोऽयं पान्थ समागमं कथमहो ज्ञातुं समर्थः सखि।।

1021. पदोपान्ते कान्ते लुठति तु जनादित्यभवनाद्,
द्रुतं निष्क्रामन्त्या न किमपि मयालोचितमहो।
अयं श्रोणीभारः स्तनभर इह स्यादति गुरुः
न नाम्नः पात्रेच्छा [1]क्षणमपि विलम्बो न विहितः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'शक्ति'।

1022. किं खिद्यसे भुज मुधाधर ताम्यसि त्वं
चक्षुर्विमुञ्च शुचमस्ति हृदि त्रियामे।
आश्लेषचुम्बनविलेपनकेलयोऽपि
सेत्स्यन्ति वः स्फुटति मे हृदयं मुहूर्तात्।।

1023. अङ्गानि मे दहति नाम वियोगवह्निः
संरक्ष्यतां प्रियतमोऽद्य हृदि स्थितो यः।
इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुवारि-
धाराभिराभिरभिसिञ्चति चित्रभित्तिम्।।

1024. यदि प्राणान्मुञ्चेच्चिरविरहखिन्ना सहचरी
वसन्ताग्नौ मग्ना तदिह वद भागी भवतु वः।
वयो वा स्नेहो वा विषयविषयो वेति विमृशन्
तुहीति प्रव्यक्तं पिकनिकरझङ्कारमशृणोत्।।

1025. विज्ञप्तिरेखा मम जीवबन्धो
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः।
सम्पत्य योग्यस्थितिरेष देशाः
करा यदिन्दोरपि तापयन्ति।

– हारावत्याः

1026. कल्याणि चन्दनरसैः परिषिच्य देहे
द्वित्राण्यहानि कथमप्यति कामयेथाः।
अङ्के निधाय भवतीं परिरम्य दोर्भ्यां
नेताहमर्ककिरणे नहि शीतलत्वम्।। – केशवसेनस्य

1027. विधुरर्कति चन्दनमनलति रिपुरम्यति मित्राणि।
विधुरे वेधसि विकलचेतसि विपरीतानि भवन्ति।।

1028. सुश्राव शब्दं नहि नामरूपं
तथा न जग्राह किमप्यपश्यत्।
सा शून्यभावान् मनसो मृगाक्षी
सखीभिरुक्ताऽपि न किञ्चिदूचे।।

1029. अस्तव्यस्तसमीरकं पिततया दृष्टिं तिरस्कारिणीम्,
हस्ते नालकवल्लरीमकुटिलामानीय कर्णान्तिकम्।
तद्वीक्ष्य प्रियमार्गमध्वगवधूहस्ते गते भास्वती
छिन्नाशासु निवेशमेति शनकैः स्वप्तेक्षणा शंसिनी।।
– कविराजस्य

अथाष्टनायिकाव्रज्या

1030. खण्डिता विप्रलब्धा च वाससज्जाभिसारिका
कलहान्तरिता चैव तथा चोत्कण्ठिता परा।
स्वाधीनभर्तृका चान्या तथा पोषितभर्तृका,
संयोगे विप्रलम्भे च इत्यष्टौ नायिकाः स्मृताः।।

1031. निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो
नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः।
यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते,
सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः।।

1032. अहरिह ननु रागात् दूतिकां प्रेष्य पूर्वम्,
सरभसमभिधाय क्वापि संकेतकं वा।
न मिलति खलु यस्याः वल्लभो दैवयोगात्,
कथयति मनुजस्तां नायिकां विप्रलब्धाम्।।

1033. चाटुकारमपि जीवितनाथं कोपतः समवधीर्य पुनर्या।
निष्फलानुसयवद्भिर्वितानैस्ताप्यतेऽन्तकलहान्तरिता सा।।

1034. त्यक्त्वा गतः प्रियतमां विषयान्तरम्यः,
प्राणेश्वरः पृथुलकार्यवशेन यस्याः।
तन्वीं प्रयोगविषविह्वलिताङ्गयष्टिम्
तां प्रोषितप्रियतमां प्रवदन्ति सन्तः।।

1035. यस्याश्चित्ररतिक्रीडासुखास्वादनलालसः।
समायाति पतिः पश्चात् सा स्यात् स्वाधीनभर्तृका।।

1036. या दूतिकागमनकालमपारयन्ती
सोढुं स्मरज्वरभवार्तिपिपासितेव।
निर्याति वल्लभजनाधरपानलाभात्
सा कथ्यते मुनिवरैरभिसारिकेति।।

1037. नैवागतः समुचितं समयेऽपि सद्म,
प्राणेश्वरः प्रचुरकार्यसमादधानाम्[1]।
दुर्वारकामदहनप्रतिदीपिताङ्गी-
मुत्कण्ठितां तदिह शास्त्रविदो वदन्ति।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'नाम्ना'।

1038. वासवेश्मनि सुकल्पितशय्यायाः समागमविधिं विदधाना।
तिष्ठति प्रियसमागमसञ्जाताकलय्य वासकसज्जा।।

ततो मानिनीव्रज्या

1039. मानोन्नतैर्न[1] सहते ननु[2] पण्डितेति,
गम्ये विधौ कृतिरनेकमुखी सखीनाम्।
आकारमात्रमसृणेन विचेष्टितेन,
धूर्तस्य तस्य हि गुणानुपवर्णयन्ति।
–लक्ष्मीधरस्य

1040. वलयतु चपलादृष्टिरबला सखी मेखला,
स्खलतु कुचयोरुत्कम्पा मे विदीर्यतु कञ्चुकम्।
तदपि न मया सम्भास्योऽसौ न दयितः शठः,
स्फुटति हृदयं मौनेनान्तर्न मे सखि तत्क्षणात्।। –अमरुकस्य

1041. किं पादान्ते लुठसि विरम स्वामिनो हि स्वतन्त्राः,
कञ्चित् कालं क्वचिदपि वतस्तेन कस्तेऽपराधः।
आगात्कारिण्यहमिह मपाजीवितं तद् वियोगे,
भर्तृप्राणाः स्त्रिय इति नमु त्वं मयैवात्मनेयः।। – वाग्भट्टस्य

1042. यद्वक्राभिमुखं मुखं विनिहितं दृष्टिं कृता चान्यतस्
तस्यालापकुतूहलाकुरतरोः शौत्रेर्निरुढे मया।
हस्ताभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः,
सख्यः किं करवाणि यान्ति सदधो यत्कञ्चुके संयुधः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'नतेभ्या'।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'त्यति'।

1043. यद्गम्यं गुरुगौरवस्य सुहृदो, यस्मिन् लभन्तेतरां
यद्दाक्षिण्यप्रसादवैभवभिया नर्मोपचारिण्यपि।
यल्लज्जां निरुणद्धि यत्र शपथैरुत्पाद्यते प्रत्ययः,
तत् किं प्रेम समुच्यते परिचयस्तत्रापि कोपेन किम्।।

1044. मुग्धे मैथिलि चन्द्रसुन्दरमुखि प्राणप्रदानौषधि-
प्राणानुक्ष मृगाक्षि मन्मथनदीप्राणेश्वरप्रेयसि।
रामश्चुम्बति ते मुखं स च मुखे नैकेन चाहं पुनः,
चुम्बिष्यामि दशाननैरिह सुधां मुञ्चग्रहं मानिनि।।

1045. मानं म्लानं च खलु तरसा यन्मयासौ गृहीतः,
पाणिस्तस्यास्तरुणि चरणग्राहिणा तावकेन।
व्यूढा सा च क्षणमिह मया चेतसा त्वां वहामि,
स्वामी तस्यास्त्वदधरसुधाविष्टपुष्टं सहायः।।

– आचार्यश्रीगोपिकस्य

1046. मानं मानिनि मुञ्च मुञ्च कुचयोर्दोर्भ्यां दृढं पीडनम्,
संकोचं च विमुञ्च तञ्च पुरजं निद्रां च मुञ्चानृताम्।
इत्येवं समुदीर्य यश्च पतितः पादाम्बुजे योषितः,
किं किं यन्न करोति मन्मथशरः क्षुण्णो विभिन्नान्तरः।।

1047. मञ्जुश्रियौ तव तनूदरि पादपद्मौ,
वन्द्यः खसर्पणतया स्मरजित्कटाक्षः।
मैत्रोत्पले सुगमि भाविनि चारुभावे,
मत्कर्मणा तरुणि काञ्चिनि कं न चेतः।।

1048. पादान्ते पतितः प्रियः पततु तं प्रव्यक्तवाष्पोद्गमः
सञ्जातं मनसा च तां त्वमधुना त्वं युक्तमत्रागता।

एकान्ते तटिनी तटान्तविटपस्यान्तर्निशं जागरं
नासीत्कापि सखी तदा मम तमस्तामाचितायां निशि।।

1049. दासे कृतागसि भवे दुरितः प्रभूणां
पादप्रहार इति मानिनि नात्र दूये।।
उद्यत्कठोरपुलकाङ्कुरकण्ठकाग्रे
यत्खिद्यते पदमिदं तव साप्यथा मे।।

1050. किं किं मां समुपेत्य चुम्बसि बलान् निर्लज्ज लज्जा क्व ते
वस्त्रान्तं शठ मुञ्च मुञ्च शपथैः किं धूर्त निर्वञ्चसे।
भिन्नाहं तव रात्रिजागरतया यामेव या च प्रियां
निर्माल्योज्झितपुष्पदामनिकरे का वा धवानां रतिः।।

1051. यात यातु किमनेन तिष्ठतां मुञ्च मुञ्च सखि सादरं वचः।
पामरीवदनलोलुपो युवा नैवमेति कुलजामुखासवम्।।

1052. धौतमूलकमधौतमूलकं तुल्यमूल्यमिति पामरं वचः।
[1]..।।

1053. माकन्दसुन्दरि मुखेन्दुविनिन्दितायाः
शङ्के कलङ्कशङ्का तव किं न जातिः।
नेत्रोत्पलात्पतितकज्जलवाष्पविन्दु-
र्गण्डस्थले यदि पतेत्पतितं प्रमादः।।

1054. प्राचीनादचलामुदेष्यति न किं नीहारभानोर्गृहः
किं तेऽपि स्मरकिङ्कराः कतिपये वाह्यन्ति नो मारुताः।
तत्पुत्रि स्मरगन्धखिन्नितततनुः पादे लुठन्ती मया
द्रष्टव्यासि दृशानयैव दिवसः सप्तोञ्चितव्योमया।

1. मूलपाण्डुलिपौ एतदग्रे पाठो न लभ्यते ।

1055. दिशः शून्या मुग्धे स्पृशति च वचो नात्मविषयं
श्रुतिस्मृत्योर्लोपो विरहिण.........[1] द्विजपतौ।
क्षणस्थायीभावो हृदयनिहितश्चन्द्रवदने
त्वया व्यस्तं कस्माज्जनमतिमहो चण्डि विषमम्।।

1056. क्षीणोऽङ्कः शशिलाञ्छनः शशिशिखी नो नैव कोपस्तव
स्मेरं पद्मवनं मनागपि न ते स्मेरं मुखाम्भोरुहम्।
पीतं श्रोत्रमुखेन षट्पदरुतं पीतं न ते जल्पितं
रक्ताशक्तदिगङ्गणा रविकरैर्मान्द्यासि रक्तासि किम्।।

1057. कान्तिश्चान्द्रमसी मृगस्य नमते बाहू मृणालोपमौ
हंसा नाङ्गतपः सरोजवदनं हेम्नौ घटौ रे कुचौ।
इत्येवं परकीयमेव सकलं नामैकमात्रं तव
मानं मानिनि मा कुरु प्रियतमे रूपाभिमानं प्रति।।

1058. दूतोऽयं मदनानिलो मधुकरश्रेणी सुवर्णावली
पत्रं नूतनचूतपल्लवलसत्पुंस्कोकिलो वाचकः।
लेखस्तावदयं वसन्तनृपतेः सम्प्रेषितो मानिनि
मानभ्रंशकरस्मरेण लिखितः पूर्णेन्दुना मुद्रितः।।

1059. मानं मानिनि मा कृथाः प्रणयिनि प्रेमानुबन्धं कुरु
प्राणैः कण्ठगतैरपि व्यसनिनि व्रीडा किमद्यापि ते।
आकर्णान्तकजन्मकार्मुकलता शंशक्रबाणं स्मरो
रोषाकुन्तलयन्त्रिताधरतनुर्देवः पुरो वर्तते।। —वाचस्पतेः

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1060. न वक्ति प्रेमार्द्रं न खलु परिरम्भं रचयति
स्थितौ तस्यां नूनं करकमललीलां न सहते।
स्मितज्योत्स्नाकान्तं मुखमभिमुखं मे न कुरुते
तथाप्यन्तः प्रीतिं वपुषि पुलकोऽस्याः कलयति।। – शूलधरस्य

1061. त्वं दूरमभिगच्छन्ती हृदयं न जहासि मे।
दिनावसाने छायेव पुरो मूलं वनस्पतेः।। –कालिदासस्य

1062. भ्रूभेदाद्गुणितश्चिरं नयनयोरत्यन्तमामीलनं
रोद्धुं शिक्षितमादरेण हसितं मौनेति योगः कृतः।
धैर्यं कर्तुमपि स्थिरीकृतमिदं चेतः कथञ्चिन्मया
बद्धो मानपरिग्रहः परिकरे सिद्धिस्तु देवस्थिता।। –धर्मकीर्तेः

1063. यदा त्वं चन्द्रो भूरविकलकलापेशलवपुः
तदाऽहं जातार्द्रा शरधरमणीनां प्रतिकृतिः।
इदानीमर्कस्त्वं खररुचिसमुत्सारितरसः
किरन्ती कोपाग्नीनहमपि रविग्रावघटिता।। –अचलसिंहस्य

1064. कोपो यत्र[1] भृकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं
यच्चान्योन्यस्मितमनुतयोर्दृष्टिपातः प्रसादः।
तस्य प्रेम्णस्तदहमधुना वैशखं पश्य जातं
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मन्युमोक्षस्खलायाः।। –प्रद्युम्नस्य

1065. बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्या व्रतो रुध्यते
नन्वेतन्मम कातरोऽस्मि दयिता नास्माद्यतो रुद्यते।। –श्रीकुमारिलभट्टस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ छन्दो भङ्गः।

1066. गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्।। – बाणभट्टमयूरयोः[1]

1067. गतो दूरं चन्द्रो जलचरवनौ पाण्डरवपुः
दिशः किञ्चित् किञ्चित् तरणितरणैर्लोहितरुचः।
इदं निद्राच्छेदे रसति विरसं सारसकुलं
चकोराक्षि क्षिप्रं प्रजहि कठिनं प्रेम ललितम्।।

1068. मया तावद्गोत्रस्खलितहतकः प्रान्तविनया
न रुद्धो निर्गच्छद्दयमिति विलक्षप्रियतया।
अयं त्वाकूटज्ञः परिणतिपरामर्शकुशलः,
सखे! लोकोऽप्यासीद् लिखित इव चित्रेण किमिदम्।।

–बिम्बोकस्य

1069. असद्वृत्तो नायं न च सखि गुणैरेष रहितः
प्रियो मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः।
गृहाणैवं मुग्धे व्रजतु तव कण्ठप्रणयिना–
मुपायो नास्त्यन्यो हृदयपरिपापस्य शमने।।

1070. एतस्मिन् शयने पराङ्मुखतया पीनोत्तरं तास्यतो–
रन्योन्यस्य हृदि स्थितेऽप्यनुनये संरक्षतो गौरवम्।
पश्चादाकुलयोरपाङ्गवलनां मिश्रीभवच्चक्षुषे
भग्नो मानकलिः सहासरभसा व्यावृत्तकं सङ्ग्रहः।।

---

1. पाण्डुलिपौ श्लोकोऽयं 'महोदधोः' कथितः।

1071. कोपस्त्वया हृदि कृतो यदि पङ्कजाक्षि,
सोऽस्तु प्रियस्तव किमस्ति विधेयमन्यत्।
आश्लेषमर्पय मदर्पितपूर्वमुच्चै-
रुच्चैः समर्पय मदर्पितचुम्बनञ्च।। -सतानन्दस्य

1072. सखि कलितः स्खलितोऽयं
हेयो नैव प्रमाणमात्रेण चिरम्।
अतो भवतु भवत्या बाहुलता बन्धनं धूर्तः.....
....[1]।। -गोनन्दस्य

1073. मानव्याधिनिपीडिताश्च मधुना शक्नोति तस्यान्तिकं,
नो गन्तुं न सखी जनोऽस्ति चतुरो यो मां बलान्नेष्यति।
मानीशोऽपि जनो न लाघवतया लभ्येति मातः स्वयं,
कालो याति चलन्नु जीवितमपि क्षुण्णं मनश्चिन्तया।।

1074. सुतनु जहिहि कोपं पश्य पादानतं यं
न खलु तव कदापि[2] कोप एवं विधोऽभूत्।
इति निगदति नाथे तिर्यगामीरिताक्षी
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किञ्चित्।।

1075. देवादयं यदि जनो विदितोऽपराधी,
दासोचितैः परिभवैरयमेव शान्तः।
एषा कपोलफलके गुरुपत्रवल्ली,
किं पीड्यते सुमुखि वाष्पकणावलीभिः।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न प्राप्यते।
2. अत्र छन्दोभङ्गः!

1076. अयं धूर्तो मायामविनयमदं चात्र धरते
सखि प्रत्येसी त्वं प्रकृतिमरणं पश्यसि न किम्?
कपोले यल्लाक्षारसबहलरागप्रणयिनी-
मिमां धत्ते मुद्रामनतिचिरवृत्तान्तपिशुताम्।।

-कृष्णमिश्रस्य

1077. भ्रूभेदे रचितेऽपि दृष्टिरधिकं सोत्कम्पमुद्वीक्षते,
रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिदं दग्धाननं जायते।
कार्कश्यं गमितेऽपि चेतसि तनो रोमाञ्चमालम्बते,
दृष्टे निर्वहणं भविष्यति कथं मानस्य तस्मिन् जने।।

1078. सुतनु नितम्बस्तव पृथुरक्षोरपि सम्मार्जनो महिमा।
मध्यः शरसरणिरिदानीं मा धाता कुचतटः क्रियताम्।।

-दासवरस्य

1079. एतस्यां स्फुरितं विकासिनि दृशोर्द्वन्द्वेऽपि यत्रापितं।
प्रायः पल्लवितं वचस्त्वपरता यद्यापमानादिषु।।
तत्कोपं न विचेष्टिते कुसुमितं पादानते नु प्रिये,
मानिन्याः फलितं न मानतरुणा पर्यन्तबन्ध्यायिते।।

-राजशेखरस्य

ततोऽसतीव्रज्या

1080. दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि,
प्रायेणाऽस्य शिशोर्वितानविरसः कौपीनको यास्यति।
एकाकिन्यपि यामि सद्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रः स्तनमालिखन्तु जठरच्छेदानलग्रन्थयः।।

-विद्यायाः

1081. सिततिलतलां सान्द्रच्छायास्तरान्तविलम्बिनः।
शिशिरमरुतां लीनावासकणा जलरङ्कवः।।
अविनयवती निर्विच्छेदस्मरोत्सवदायिनः।
कथय सुरते केनामिते कृता निम्बुलङ्गमाः।।

1082. पान्थ स्वैरगतिं विहाय झटिति प्रस्थानमारभ्यता-
मत्यन्तं करिशूकराहिगवयैर्भीमं पुनः काननम्।
चन्द्रांशोरपि रश्मयः प्रतिदिशं म्लानास्तमेको युवा
स्थानं नास्ति गृहे ममापि भवतो बालाहमेकाकिनी।।

1083. विटपिनि शिशिरच्छाये क्षणमिह विश्राम्य गम्यतां पथिक।
अतरुरवारिरतः शिलादुर्गमो मार्गः।।

1084. अम्बा शेतेऽत्र वृद्धा परिणतवयसामग्रिणी रन्तुताना
निःशेषा गार्हकर्मा खलु शिथिलतनुः कुम्भदासी तथेह।
अस्मिन् पापाहमेका कतिपयदिवसप्रोषितप्राणनाथा
पान्थायेत्थं युवत्या कथितमभिमतं व्याहृतिर्व्याजपूर्वम्।।

1085. स्फुरति वचसां चक्रः पन्था स्मितैः सुसेवितः
कुटिलपदवीं धत्ते चक्षुर्मुहुर्जनसन्निधौ।
किमपरमयं जृम्भोद्भेदान्मुखेन्दुरुदञ्चति
व्यसनिनि महातीर्थे सखि त्वया क्व नु मन्मथः।।

1086. परिणतसखी वाग्भिः छेदान्निवृत्तग्रहग्रहे
सुदति मदनाद्वैताभ्यां सा निकुञ्जनिवासिनी।
कनखलशिलोत्खेलद्गङ्गास्खलद्गुरुकीकसः
कथय कतमो वा न प्रस्थानश्रमेऽद्य तरातिथिः।। -मिश्रपादुकस्य

1087. ग्रामोपशान्ततटिनी तटमण्डपान्ते
मा पान्थ मन्थरगते रजनीं नयस्व।
अस्मिन्निशीथविरहज्वरजागरूक-
कोकाङ्गणाकरुणकूजितमस्ति कष्टम्।।

1088. सा काप्यस्ति किमेकनायकवता का सा न जानामि किं
तासां पश्य किमस्थिभिः सुघटितो लोकोऽस्ति यूकोपमः।
पापायास्तु ममैकदासनिभृतं वृत्तं न वृत्तं न च
लोकोऽद्य स्फुटितस्फुटं सखि मया दृष्टश्चतुर्थ्याः शशी।।

1089. अतिवरमहारवनयमकतमत् मदनं श्वसिति।
आनखाघातमशीत्कृतं हरति न नश्चौरिकासुरतम्।।

1090. रोमाञ्चधर्मापि पुलादौ साधिकहंसा विच्युतश्चौरः।
शिरसामास्ते सुतनु स्तनयोः स्तवकं चलीचलयोः।। -गोवर्धनस्य

1091. यामिन्येषा बहलजलदैर्वद्धभीमान्धकारा
निद्रां यातो गृहपतिरसौ क्लेशितः कर्मदुःखी।
बाला चाहं मनसिजतया प्राप्तगाढप्रकम्पा
ग्रामश्चौरैरयमुपगतः पान्थ निद्रां जहीहि।।

1092. उन्मीलन्यौवनासि प्रियसखि विषयाः श्रेणयो नागराणां
तस्मादद्य प्रकृतिमहसा सन्मुखे लक्षणीयाः।
यावच्चन्द्रार्कमेकः पतिरतिशयितश्रद्धया सेवितव्यः
कर्तव्या रूपरक्षा वचसि च हृदयं नेयमस्मद्विधानाम्।।[1]

---

1. अस्मिन् श्लोके प्रथम पादे 'स्रग्धरा' छन्दः
द्वितीयपादे 'मन्दाक्रान्ता' छन्दः
तृतीयपादे स्रग्धरा छन्दः
चतुर्थपादे स्रग्धराछन्दः, मूलपाण्डुलिपौ इत्थं लभ्यते।

1093. वयं बाल्ये बालास्तरुणि शृणु यूनः परिणता
अथेच्छामो वृद्धान् परिणयविधिस्त्वस्थितिरिति।
त्वयारब्धो जन्म क्षभितुमपि काण्डेन विधिना
न वा गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सतीनाञ्जनमहत्।।

1094. पृथ्वी तावत्त्रिकोणा विपिननगनदीग्रामकत्वं तदर्थं,
तत्राप्यर्धं युवत्यः शिशुगतविषयैः पूरितं तस्य चार्धम्।
त्याज्यास्तत्रापि पुत्राः श्वसुरगुरुजना बल्लभास्तत्र शेषो,
मिथ्यावादो ममायं मुखरमुखरवः पुंश्चली पुंश्चलीति।।

1095. नेत्राभ्यामपि वीक्षिते सकितवैस्तल्पीकृतैः पल्लवैः
सद्यः स्फूर्तिमयो विषं सरति मा धूर्तोऽपि किं कथ्यताम्।
सा दृष्टिः स्वसितानि तानि सभुजं संरोधरो धग्धम-
स्तत्तत्तर्कमवैमि सैव कुलटासीत्तत्र मुक्तामणिः।।

1096. चेष्टेऽयं तव सुन्दरि! प्रियतमे यद् विद्यमाने मयि,
त्वं यावत् कुरुषे पतिं वदति कः साक्षं मया वीक्षितम्।
चक्षुश्चञ्चलवारिताश्रुमखिलं जारैः सदा लिप्यते,
सद्यस्तत्र विवाहिताष्टकलशी नास्ते मयि प्रत्ययः।।

1097. कस्मात्ते सखि! सव्रणाधरतटी चान्द्रीकरेखास्तने,
व्यालोला कवरी कपोलफलके म्लाना च पत्रावली।
दष्टं बिम्बफलाशया गृहशुना नारोप्य पादौ स्तने,
तत्स्याद् सा द्विधनं शिरः शठसखी म्लाना च पत्रावली।।

1098. चित्रान्वेषणतत्परः प्रियसखि प्रायेण मोहोऽधुना,
रात्रिश्चेयमतीवसान्द्रतिमिरा गन्तुं न युक्तं तव।
मैवं ब्रूहि सुदुर्लभे प्रियतमे स्वावाञ्छिते सङ्गमे,
युक्तायुक्तविचारितं यदि मतिस्नेहाय दत्तं जलम्।।

1099. क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे,
प्राणाधिपो वसति यत्र जनः प्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न विभेषि बाले,
नन्वस्ति पुङ्गवसखो मदनः सहायः।

1100. त्वञ्चागमिष्यसि भविष्यति सङ्गमोऽपि,
सम्पत्स्यते च हृदयाभिमतोऽभिलाषः।
एषा गता न पुनरेष्यति जीवनाथ,
विद्युद्विलासचपला नवयौवनश्रीः।। -हारावत्याः

1101. कस्माद् दूति श्वसिषि विषमं सत्वरा वर्तनेन,
भ्रष्टारागः किमधरपुटे प्रार्थनाभिस्त्वदर्थम्।
व्यस्ता चेयं किमलकलता तत्पदानाशनेन,
वासन्तस्य त्वयि वद कथं प्रत्ययार्थं तवैव।।

1102. किं चूडामणिदीपिकां स्थगयसि त्यक्तौ च किं नूपुरौ,
किं नीवीं विजहासि कङ्कणरणङ्कारञ्च गोपायसे।
ज्ञातव्यासि तथापि नापरिजनैर्निन्द्यन्कसङ्कारिणि,
त्वद् वक्राम्बुजगन्धविभ्रममिलल्लोलानि कोलाहलैः।।

1103. किं ते सव्रणमोष्ठपत्रमबले गात्रञ्च किं ते श्लथं,
रात्रावद्य विचित्रभोगपटनादष्टं भुजङ्गेन मे।
यद्येवं न मृतासि तत्कथमहो कालेन दष्टा सती,
जातोऽयं चुलुकैरनन्यमनसा हाहेति मन्त्रो मया।।

1104. पित्तं शाम्यति दृष्टिपातमधुरैः कण्ठग्रहैः शीतलैः
श्वासायाश्च कचग्रहव्यतिकरैः श्लेष्मोऽपि याति क्षयम्।
वायुस्नेहवशात् प्रयाति तनुतां संमर्दना त्वादृशं,
सर्वव्याधिहरे त्वयि प्रियतमे वैद्येन किं रोगिणाम्।।

1105. भर्ता यद्यपि कामशास्त्रकुशलो विद्वान् कुलीनो युवा
दाता कान्तवपुः प्रसिद्धविभवः स्त्रीसङ्गदीक्षागुरुः।
स्वप्राणाधिककल्पिताभ इति चेन्मोहात् सदा चात्मना
तत्कान्तं स्वपतिं विहाय वनिता जारं परं सेवते।।

1106. कथमिह निग्रहकाङ्क्षणोऽपि सद्यः कुवलयनालविलोकनेन भीतः।
अभिसरणपथे घने निशीथे शतमह्यो न विलङ्घिताः किमाभिः।।

1107. याता जारसमं समागममनोराज्याय सङ्केतकं
दृष्ट्वा तत्र पतिं त्रपामुपगतं व्याजादिदं जल्पति।
सैवेयं स भवानितः स्ववसतिर्यूयं कृताः साक्षिणः,
किं जाने स च नास्मि यावभवनं धूर्त क्षणं तिष्ठ रे।।

1108. उद्घुष्टं कुलटाभिराद्यदि वशे ज्ञातं सपत्नीजनैः
कर्णाकर्णिकया श्रुतं च दुरभिर्गीतं ततो बालकैः।
हट्टे भग्नमिदं हि काम्यमधुना मुग्धे सुधासंयमः,
किं शूर्पेश विधीयते निपतितो दन्ती यतस्ताम्यति।। –गोपीकस्य

1109. मध्याह्ने प्रखरे निदाघसमये तापो घनो वर्तते,
तुच्छे पुञ्जवटत्रपत्रबहुले हे पान्थ विश्राम्यताम्।
एकाकी च भवानहं च तरुणी शून्या प्रभा वर्तते,
लज्जा मे भवितुं स्वयञ्च चतुरो जानासि कालोचितम्।

1110. ग्रामान्ते वसतिं ममातिविजने दूरप्रवासीपति-
र्गेहे देहवती जरेव जरती श्वश्रूर्द्वितीयाऽपरा।
एतत्पान्थ वृथा विडम्बयसि मां बाल्यातिरिक्तं वयः,
सूक्ष्मं वीक्षितुमक्षमेह जनतावासोऽन्ततश्चिन्त्यताम्।।

-बलभद्रस्य

1111. यदस्मिन् मे कालीतरुगहनकुञ्जे निविशितं,
मया रात्रौ तत्र प्रियसखि स वास्यामभिजितः।
अये! सोऽपि भ्रान्तः सकलरजनीं त्वामभिसरन्,
इति श्रुत्वा तस्याः स्तनकलशकम्पो विजयते।।

1112. ध्वस्तं केन विलेपनं कुचयुगे केनाञ्जनं नेत्रयोः,
रागः केन तवाधरे प्रमथितः केशेषु केन स्रजः।
आकृष्टादरमन्दग्राहमलकं चे वक्रञ्चासनं[1]
....।।

1113. कण्ठे लग्नः सुकण्ठः पुनरपि कुचयोर्यत्र गाढानुबन्धः
....[2]
बद्धाशक्तिर्नितम्बे पतति चरणयोर्यस्तु तादृक् प्रिया मे
बाले लज्जा प्रणष्टा नहि नहि कुटिले लोचकः किं त्रपाकृत्।।

1. मूलपाण्डुलिपौ छन्दोभङ्गः, पाठो न प्राप्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ द्वितीयपङ्क्तिर्न लभ्यते।

1114. इन्दुर्यत्र निनिन्द्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते,
नानापानि पतन्ति वाष्पकलुषा नोपैति कार्श्यं वपुः।।
स्वाधीनामनुकूलिनीं स्वगृहिणीमालिङ्ग्य यत्सुप्यते,
तत्किं प्रेमगृहाश्रमव्रतमिदं कस्त्वं समाचर्य्यते।। -लक्ष्मीधरस्य

1115. अये को जानीते निजपुरुषसङ्गो नहि तथा,
यथा स्त्रीणां चेतः परपुरुषसङ्गो रमयति।
अपि स्वैरं भुक्त्वा दिवसमखिलं वासरकृता,
करस्पर्शादिन्दोर्मुकुलयति नेत्राणि नलिनी।।

1116. प्रणयविशदां वक्रेऽब्जे दृष्टिं ददाति विशङ्किता,
घटयति घनं कराद्यशेषं सकम्पपयोधरा।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां साशङ्के तथापि हि कामिनी।। -श्रीहर्षस्य

1117. मार्गे पङ्किलतो यदान्धतमसे निःशब्दसञ्चारकं,
गन्तव्याच्च ततस्तमेत्य वसतिर्मुग्धेऽभिभूत्वा मतिम्।
आजावृद्धतनूपकारकतलेनाच्छाद्यते शङ्किता,
दृष्ट्वाऽसौ निजछद्मने दृशमहो पन्था नवो दृश्यते।।

1118. अद्य स्वां जननीमकारणरुषा प्रातः सुदूरं गतां,
प्रत्यानेऽनुमितो मतो गृहपतिः श्रुत्वैव मध्ये दिने।
....
....।।[1]

1119. दूति किं तेन पायेन शास्त्रातिक्रमकारिणा।
पञ्चपञ्चनखा भक्षा षष्ठी त्वं येन खादिता।।

1120. नायाते सामदानाभ्यामिति भेदेऽपि दर्शिते।
साधु यद् दुर्विनीतस्य त्वया दण्डो निपातितः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1121. अनेन वीतरागेण बुद्धेनैवाधरेण ते।
दूति निर्व्याजमाख्यातो सर्ववस्तुषु शून्यता।।

1122. पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामिति भेदेऽपि दर्शितः।
दूति सङ्ग्रामयोग्याऽसि न योग्या दूतकर्मणि।।

1123. त्वया दूति कृतं कर्म यत्त्वदत्त न दुष्करम्।
शरणागतेन विध्वंसी छिद्रान्वेषी निपातितः।।

1124. क्षामं भिन्नगतिः खिन्ना नेत्रव्यालोलतारके।
रागस्पष्टाश्लथं वासो दूति त्वं जरिताऽसि किम्।।

1125. रजन्यामन्यस्यां सुरतपरिवर्तादनुचितं,
मदीयं मद्वासः कथमपि कृतं तेन सुहृदा।
त्वया प्रीत्यानीतं सुरससदनात्तत्पुलकितं,
कुतस्तादृक् दूति स्खलितसुमनः पायनिपुणा।।

1126. नायातो यदि तादृशं सशपथं कृत्वापि दूति प्रिये,
तत्किं कोपनया त्वया स्वदशनैरग्रा धरा खण्डिता।
स्वेदाम्भः कणदायि वेपनमिदं त्यक्त्वाभजत्सुष्ठुतां,
कालोकस्य सखि स्वभावकुटिलस्यान्तर्गतं ज्ञास्यति।।

1127. रोमाञ्चं ननु[1]विश्वसिस्यविरतं ध्यानं किमप्याश्रिता
दृष्टिस्ते भ्रमति प्रकम्पचपला व्यक्तं च यच्छ्रीकृतम्।
तं लब्ध्वा नव[2]वल्लकी वसुरतव्यापारदक्षं जनं
किं दूति ज्वरितासि पापमथवा स्पष्टा भवन्त्यापदः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मुहुः' छन्दोभङ्गत्वात् परिष्कारः।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'अश्मन्' छन्दोभङ्गत्वात् परिष्कारः।

1128. श्वासः किं त्वरिता गतिः पुलकिता कस्मात्प्रसादागता
वेणी भ्रस्यति पादयोर्निपतनाद् क्षामा किमत्युक्तिभिः।
स्वेदार्द्रं मुदमातपे न गलिता निर्वासमादागमा
दूति म्लानसरोरुहद्युतिमुखः सौष्ठस्य किं वक्ष्यति।।

1129. अघोरेणोन्नतिभाजो भुजङ्गपीडितेन तेन।
संक्षोभितं मनो मे जलधिरिव मन्दरागेण।।

1130. अधरेणैव ते दूति वैराग्यव्यतिकारिणा।
तस्योक्तं मयि वैमुख्यं विलक्षे मुञ्च वचिकम्।। –विश्वनाथस्य

1131. विद्युदुच्छेदताम्रोऽपि ताम्बूलेन विशेषतः।
तथापि दृश्यते दूति पीत एव तवाधरः।। –विमलस्य

1132. सद्भावागत एव मत्[1] प्रणयिनी दाराः परस्येति वा
दूति त्वद्धि पराभवश्च पतितः तत्रापि नित्यं मम।
येनाम्भोरुहभस्मभव्यवदनस्यापाण्डुता ते कृता
दूति भ्रष्टगुणस्य तस्य निलयं स्वप्नेऽपि मा गाः पुनः।।

1133. स्वकीयबुद्ध्यैव सदा मदर्थे
दूति प्रवृत्तिं प्रतिपादयस्व।
त्वया फलेनैव विभावितोऽयं
यया सहाभिन्नशरीरवादः।। –वित्तोकस्य

ततो विरहिव्रज्या

1134. रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणैः
त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्तास्तथा मामपि।
कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे सत्यं ममाप्यावयोः
सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'सद्भावगता मय' छन्दोभङ्गत्वात् परिष्कारः।

1135. दलति हृदयं गाढोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।

-भवभूतेः

1136. नाशंसे हरिताङ्कुरान् क्वचिदपि स्थैर्यं न यद्गाहसे
यत्पर्याकुललोचनोऽसि करुणं कूजन् दिशः पश्यति।
देवेनान्तरिता प्रियोऽपि हरिणं मुञ्चापि किं यच्चिरं
प्रत्यद्रीयति कन्दरं प्रतिनदि प्रत्यूष इत्यागतः।। -मुञ्जस्य

1137. प्रियासंसक्ताङ्गं तदनु मदनाङ्गः प्रणिहतः
सनाथं मञ्जिष्ठा प्रसरकुशरेखैर्नखपदैः।
घनोरूप्राग्भारं निधिसुखमिवामुद्रितमहो
कदा द्रक्ष्यामो वै विगलितदुकूला मृगदृशः।।

-क्षितिपस्य

1138. एते चूतमहीरुहोऽप्यविरलैर्धूमायिताः षट्पदै-
रेतेऽपि ज्वलिताः स्फुटाः किसलयोद्भेदैरशोकद्रुमाः।
एते किं शुकशाखिनोऽपि मलिनैरङ्गारिताः कुड्मलैः
कष्टं विश्वमयामि कुत्र नयने सर्वत्र वासो विधिः।।

-वाग्भटस्य

1139. सव्याधे कृशताक्षतस्य रुधिरं दन्तस्य लालास्रवः
सर्वं नैतदिहास्ति तत्कथमयं पान्थस्तपस्स्वावृतः।
आज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता।।

1140. द्यूते पणः प्रणयकेलिसु कण्ठपाशः,
यस्या निशीथकलहे हरिणाक्षणाक्षः।
क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते,
प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्।। – हनुमतः

1141. देशेष्वन्तरिता गतैश्च सरितामुर्वी धृता काननै-
र्यत्नेनापि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि।
उद्ग्रीवश्चरणार्धरुद्धवसुधं कृत्वाश्रुपूर्णं दृशं,
तामेनां पथिकस्तथापि किमपि ध्यायन् चिरं वीक्षते।। –श्रीहर्षस्य

1142. प्रौढानङ्गरसाप्यनाकुलमनाश्चञ्चत्तिरोघूर्णित-
स्निग्धाह्लादिमदान्धमद्ध्वनितया यच्चक्षुरान्दोलितम्।
तेनास्माकमियं गतिर्मतिरियं संवित्तिरेवं विधा,
तापोऽयं ननु कीदृशी स्थितिरियं तस्यानुप्रीतिश्रुतिः।। –वल्लणस्य

1143. सृष्टा वयं यदि ततः किमियं मृगाक्षी,
सेयं स्वयं यदि ततः किमियं वसन्तः।
सोऽप्यस्तु नाम जगतः प्रतिपक्षभूतः,
चूतोद्गमः किमिति निर्मित एष धात्रा।।

1144. आपुङ्खायममी शरा मनसि मे भग्नाः समं पञ्च ते,
निर्दग्धं विरहाग्निना वपुरिदं तैरेव सार्धं मम।
काष्ठं काम निरायुधोऽसि भवता जेतुं न शक्यो जनः,
दुःखी स्यामहमेक एव हि ततो लोकः सुखं जीवतु।।

1145. विषं वा वर्हिर्वा सलिलमथवा खिन्नमनसा
द्रुतं प्राणान्मुक्तं सुखमयमुपायो विरहिणाम्।।
दृशस्ते यानग्निर्विषपरिणतिः कण्ठकुहरे,
महास्वेदो मेघः शिरसि मम दीर्घव्यसनिनः।। –गोपिकस्य

1146. ऊरुद्युतिः करगतैरगतिर्गृहीता,
कुम्भद्वये च निहिता स्तनमण्डलश्रीः।
अङ्गानि तानि वद रावण मत्प्रियायाः
पुत्रात्पराणि भवता पुनरुज्झितानि।। –लक्ष्मणसेनस्य

1147. यन्नेत्रे तव निश्चले प्रियसखि न्यस्तं करे यन्मुखं,
यो निःश्वासपरम्परापरिचयो यत्र भ्रुवोरार्जवम्।
यत्सन्तापसमाकुलं वपुरहो तद् ब्रूहि दृष्टिस्तु या,
लावण्यैकमिवैकपेशलवपुः किं रूपनारायणः।। –शङ्करदेवस्य

1148. स्थानातिक्रमलोलकानयनयोर्बिम्बाधरो रागवान्,
अत्यन्तोन्नतिगर्वितं स्तनयुगं मध्यस्वभावाल्पकम्।
नाभीनीचतया भ्रुवोः कुटिलता चेतः प्रहारि स्मितं,
तस्याः कुत्र न वाच्यता हृदय हे यस्याः कृते ताम्यसि।।
–अवन्तिवर्मणः

1149. भ्रातर्वासर दूरतो भव निशादेवि प्रसीद श्रियं,
श्यामाधेहि विधेहि वान्धवदृशौ निद्रे समुद्राङ्किते।
नाथ स्वप्न नमोऽस्तुतेऽञ्जलिरयं वासन्निधेहि प्रियं
चाधिः शाम्यतु वाञ्छितं खलु नुतः श्रेयो नु बध्नातु वः।।

1150. वाचस्तावदपेक्षते पिकयुवा लब्धालसेनां श्रियं,
भृङ्गाली निरुणद्धि चूतकलिका सौरभ्यमासं सती।
किञ्चान्यत्करवाणि निर्दयदशा नास्यास्तथा वर्तते,
निःश्वासानपि कर्त्तुमिच्छति स च क्रूरः वसन्तानिलः।। –परशुरामस्य

1151. किरन्त्यग्रं नैताः स्फुटकुसुमरेणुच्छलधृते
हिमांशुव्याजेन प्रभवति रजन्यामपि रविः।
स चासिन्दूरामप्रणयनिधिरेकः प्रियतमः
समग्रा सामग्री न च मरणमद्याप्युपनतम्।। –भट्टश्रीकस्य

1152. परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयतः
स्तनोर्मर्ध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति विशिनीपत्रशयनम्।। –श्रीहर्षस्य

1153. कदाचिद्रश्यायां त्रिनयनवधूपूजनविधौ
समारब्धे देवाददतितमनिमित्तं श्रुतवती।
किमक्षेमं दुर्गे कुमतिरिति विज्ञाय बहुशः
प्रणामैवास्यानां धरणिसरणी कन्दलयति।। –राजशेखरस्य

1154. मुक्त्वानङ्गः कुसुमविशिखान् पञ्चकुण्ठी कृताङ्गान्
मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारुणेन।
वाराम्पूरः कथमपरथा स्फालनेत्रप्रणाली
वक्त्रोपान्तस्त्रिवलिविपिने सारणी साम्यमेति।।

1155. तथैव सङ्कल्पशतैरनङ्ग प्रसह्य नीतोऽस्य न याति बुद्धिम्।
आकृष्य चायं श्रवणोपकण्ठे ययेव मुक्तस्तव बाणमोक्षः।।
– कालिदासस्य

1156. विलीयेन्दुः साक्षादमृतरसवापी यदि भवेत्
कलङ्कस्तत्रत्यो यदि च विकलेन्दीवरवनम्।
ततस्ताने क्रीडाजनितजडभावैरवयवैः
कदाचिन्मुञ्चेयं विरहशिखिपीडापरिभवम्।। -राजशेखरस्य

1157. तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुः कराग्रै-
स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारी करोसि।। -कालिदासस्य

1158. अपि स दिवसः किं स्यात् स्वस्मिन् प्रियामुखपङ्कजे
मधुमधुकरीवाष्पवृष्टिर्विशति निपास्यति।
तदनु च मृदुस्निग्धालापक्रमाहितनर्तनः
सुरतसचिवैरङ्गैः सङ्गो ममापि भविष्यति।। - वार्तिककारस्य

1159. नीलाम्भोरुहकाननेन विशति ध्वान्तोत्कणाशङ्कया
सुक्रीडोच्चलिताश्च वारिकणिकास्त्राणं भ्रमात्पश्यति।
सन्त्रासं मुहुरीक्षते तव कुतो हंसं हिमांशुभ्रमात्
न स्वास्थ्यं व्रजतेऽथ कोऽपि विरहाशङ्कारथाङ्गाह्वयः।।
-श्रीधर्मपाणिनः

1160. मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने बद्ध्वा न निक्रामति
क्रन्दत्सु भ्रमेरषु वीक्ष्य दयिताश्लिष्टान् पुरः सारसान्।
चक्राह्वे न वियोगिना विषलता नो खण्डिता नोज्झिता
वक्रे केवलमङ्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः।।
-प्रवरसेनस्य

1161. नीरान्नीरमुपैति रौति करुणं चिन्ता समालम्बति
कान्तां ध्यायति निश्चलेन मनसा योगीव मुक्तेक्षणः।
स्वच्छायामवलोक्य कूजति पुनः कान्तेति कृष्टः खगो
धन्यास्ते खलु ये विमुक्तविषयाः कष्टं परं सङ्गिनाम्।।

1162. सह्यालिङ्ग्य त्वरयति मनो दुर्बला वासरश्री-
रापुष्णासि क्षपय रजनीं मे च का चक्रवाकि।
नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा
दैवाधीनः सपदि भवतीमन्त्रसक्तस्त्यजामि।। -अभिश्रीकस्य

1163. नैवं निशाविरहजागरणेन सुप्तो
नो नीरजेषु नलिनेषु मया तवास्ये।
नैवापितं शिशिरबालमृणालनाले
हा तीव्ररश्मिरकृपश्चलितश्च शैलः।। -वसन्तदेवस्य

1164. शोणस्ते करपल्लवो मधुमती कान्तिर्गिरो नर्मदा
दृष्टिर्दिव्यतरङ्गिणीव वदनश्रीश्चन्द्रभागोपमा।
उन्मीलन्नलिनाभनाभिरपि ते तद्देहदाहज्वर-
च्छेदाय क्षणमात्रमम्बुजमुखी त्वं बाहुदा मे भव।।

1165. पादौ पीडयतामुपर्णिसरले हस्तो हृदि स्थाप्यतां
भोः कावेरि मृणालदाम वितर द्राक् नर्मदे वीजय।
त्वं गोदावरि सिञ्च चन्दनरसैर्हे तापि तापोष्मणः
शान्त्यर्थं सृज यन्त्रवारि विरही लङ्केश्वरः सीदति।।

1166. चन्द्रोदञ्च चिरं मनोभवचमूश्चिह्नांशुकैरंशुभि-
र्मन्दं चन्दनशैलसौरभतटाश्चैत्रानिलाः सर्वतः।
उज्जृम्भस्व मधो मधुव्रतवधूर्वाचालवन्दीशतै-
श्चापं मण्डलयत्वयं विरहिणां प्राणैः स्मरः क्रीडति।। -शूलपाणेः

1167. पश्चात्पुरश्च गगने च दिशां मुखे च
सर्वत्र दर्शनपथं समुपैति भावः।
खिन्नाञ्जलिः पुलकदन्तुरितः प्रकोष्ठः
स्पर्शाय धावति न या वद यं करोमि।।

1168. सङ्गमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः।
सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं तद्विरहे।।

1169. महीपूर्वं शक्ता नयनयुगले नोज्झति जलं
त्यजत्यङ्गैस्तापं श्वसनमपि निःश्वासपवनैः।
कृशत्वासङ्गानां गगनमपि मुञ्चत्यतिशयं
क्रमाहूतत्यागात्किमिह भविता नाम वपुषः।।

1170. सर्वं क्षितिभृतां नाथ दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरी।
जनाख्ये जनान्ते वा मया विरहिता त्वया।। -कालिदासस्य

1171. कोऽहं वत्स ममार्य एष भगवानार्यस्तु को राघवः
के यूयं शृणु नाथ नाथपदयोर्मृत्योऽस्मि ते लक्ष्मणः।
कान्तारे किमिहास्म हे वद वृथा देव्याः पदं मृग्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हा जानकि क्वासि मे।।

1172. सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतले चन्द्रांशुरुज्जृम्भते
चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपतिं चन्द्रोऽयमुन्मीलयेत्।
वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता धत्ते कुरङ्गं यतः
....[1] क्वासि प्रिये जानकि।।

1173. आक्रान्तास्तनितैर्विलोचनजलैरश्रान्तधाराम्बुभि-
स्तद्विच्छेदभुवश्व शोकशिखिनस्तुल्यास्तडिद्विभ्रमैः।
अन्तर्मे दयिता मुखं तव शशी वृत्तिः समैरावयो-
स्तत्किं मामनिशं सखे जलधर त्वां दग्ध मे बोधतः।। -जयदेवस्य

1174. किं नीतासि सृगाक्षि विभ्रमवशाद् गौरीति गङ्गावृता
किं वा श्रीरिति विष्णुना सखि शचीभ्रान्त्या च शक्रेण वा।
देवैरिन्दुकलेति चागतघृणैः पीतासि नीतासि वा
हा सीते वद तावदेतदसवो यावन्न मुञ्चन्ति माम्।।

1175. त्वं सीता विधिना हठादहमपि स्मेरं स्मरस्योदया-
द्घ्रातोऽस्तं जनकश्च सा च जननी शोकं विनास्तङ्गता।
हा वैदेहि कलङ्क एव हि पुनः स्थायी रघूणां कुले
सीताशोकविशोधितो रघुपतिः प्राणालये सीदति।।

1176. सुप्येतद् रजनीमयं जगदहो निद्रामयी सा निशा
निद्रा स्वप्नमयी भवेदथ च स स्वप्नो मृगाक्षीमयः।
सा चेन्मानमयी मयीन्दुवदना तच्चाटुचेष्टामयो
मा तिष्ठेति समीहितैकविषये सङ्कल्प तुभ्यं नमः।।

1177. भङ्गं भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिलविषलता कोटिमिन्दोर्वितर्का-
स्ताराकारास्तु भानो न पिबति पयसां विप्लुषः यत्र संस्था।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1178. छायामम्भोरुहाणामलिकुलशबलां वेत्ति सन्ध्यामसन्ध्यां
कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः॥

1179. सुतनु जहिहि कोपं नैव कोपस्य कालो
गतमभिसर भद्रे एष दीप्तो हुताशः।
दहति तव पदान्तं पावकः पापकारी
मलिनयति मुखं ते धूसरा धूमलेखा॥

1180. देवीकोटिसमस्ततीर्थमुकुटश्रीरालिखत्ते यया
त्वं नामाङ्कितगोत्रपाठरचनानिर्मग्नदन्तच्छदः।
वाष्पाम्भोमलिनीकृतः प्रियमिवानावर्जितः श्रद्धया
कान्ते भग्नकुशाङ्कुरागगलितः प्रेमाञ्जलिः पीयताम्॥

1181. प्रियदर्शनमेवास्तु किमन्यैरन्यदर्शनैः।
प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेनाऽपि चेतसा॥

1182. दूरस्था वनिता यस्य नवा पीनपयोधरा।
तस्य तापोऽनुशमते न वा पीनपयोधरा॥

1183. स्वप्नेनाद्य निशावसानसमये प्राप्तं प्रियालोकनं
सृष्टा देववशात्कथं कथमपि प्रेम्णा प्रसन्नीकृता।
यावद् हाहमथोद्यतः प्रियतमामालिङ्गितुं योजयन्
तावत्तेन खलेन दग्धविधिना दत्तः प्रबोधो मम॥

1184. श्वो गन्तव्यमिति प्रजागरकृशा निःश्वासनिम्नोदरी
वाष्पव्याकुललोचना विहसिता सत्सङ्गणाशंसिनी।
श्रुत्वा प्रत्युषसि प्रयाणपटहं सोत्कम्पमालोकिता
हारालिस्त्वरितङ्गते निपतिता बाला ममैवोरसि॥

1185. गच्छन्तं पुरतो विलोक्य दयितं वाष्पाम्बुसिक्तेक्षणा
सेयं सोदरसोमसुन्दरमुखी नोचे निषेधाक्षरम्।
यात्रामङ्गलकारिवाक्यपठनव्याजेन यत्केवलं
वाचं माधव माधवेति निपुणा भूयो बभाषे चिरम्।।

1186. मायाहीति निवारणं न च कृतं नैवावधिर्याचितो
नो वाष्पाम्बुकणावली मलिनकं नीता कपोलस्थली।
अर्धव्याजमुपेतया दयितया सम्प्रस्थितस्योत्तमे
यात्रा भङ्गकरी करे विनिहिता चौडेन वा मञ्जरी।।

1187. संहारः कथमप्यमङ्गलभयात्पक्ष्मान्तरव्यापिनो
पुत्तालीकृतलाञ्चलं निपुणया वाष्पाम्भसा विन्दवः।
न्यस्यन्त्या सत्कारपल्लवमथ व्याजेन पत्युःपुरो
धारावाहिभिरेव लोचनजलैर्मात्राघटः पूरितः।।

1188. दूति त्वं च समुद्रतो भगवतः श्रीकौस्तुभे सोदरे
सौहार्दं कुसुमाकरेषु किरणाः पीयूषधारामुचः।
स्पर्धा ते वदनाम्बुजे मृगदृशा तद्व्यग्रचूडामणे
हं हो चन्द्र कथं न मुञ्चसि करज्वालामुचो वेदनाम्।। -राजशेखरस्य

1189. नेत्रेन्दीवरनीरजास्यरुहिणी भ्रूवल्लिकल्लोलिनी
बाहुद्वन्द्वमृणालिनी यदि वधूवापी पुनः सा भवेत्।
तल्लावण्यजलावगाहलहरैरङ्गैरनङ्गानल-
ज्वालाजालमुचस्त्यजेयमधुना मर्मच्छिदा वेदना।।

1190. प्रहर्ता क्वानङ्गः स च कुसुमधन्वाल्पविशिख-
श्चलं सूक्ष्मं लक्ष्यं व्यवहितममूर्तं क्वचन नः।
इदं मामुद्धूतां स्फुटमनुपपत्तिं मनसि मे
रुजामाविर्भावादनुभवविरोधः शमयति।। - रन्तितथागतस्य

1191. अस्मिन् पञ्चशरे करे भगवता भग्नेन भस्मीकृते
जानास्यक्षयसायकं कमलभूः कामान्तरं निर्ममे।
यस्यामीभिरितस्ततश्च विशिखैरापुङ्खमग्नाश्रुभि-
र्जातं मे विदलत्कदम्बमुकुलस्पष्टोपमानं मनः।।

–राजशेखरस्य

1192. व्यजनमरुतश्वासश्रेणीभिरुपचिन्त्ये
ध्वान्ते मलयजरजो धारावाष्पं प्रपञ्चयितुम्।
मुहुः कुसुमशयनं कामाख्याणां करोति महामतां
द्विगुणगरिमा माडोन्माथः कथं न विरस्यति।। –राजशेखरस्य

1193. हारो जलाद् व्यशमनं नलिनीदलानि
प्रालेयशीकरमुचस्तुहिनार्द्रवाताः।
यस्येन्धनानि भरणान्यपि चन्दनानि
निर्वाणमेष्यति कथं मदना भवन्ति।।

1194. कृतप्रागैव वरं न पुनः सिञ्जति घटितप्रेया।
उद्धृतनयनस्ताम्यति यथा न तथेह जातान्धः।।

1195. विशालाध्वो यस्याः क्वचिदपि दिनानामलघुता
न तन्वी न व्यूढा क्वचिदपि समावृत्तिरनयोः।
ऋतुः को नामायं विरहदहनक्लिष्टमनसा-
मसीमातो यत्र प्रियसखि निशा यत्र दिवसाः।। –कस्यचित्

1196. लीनेव प्रतिबिम्बितेव लिखितेवोत्कीर्णरूपेव च
प्रत्यूषेव च वज्रलेपघटितो वान्तर्निखातेव च।
मानश्चेतसि कीलितैव विशिखैश्चेतोभुवः पञ्चभि-
श्चिन्तासन्ततितन्तुजालनिविडस्सूते बलाग्रा प्रिया।। –भवभूतेः

1197. ललितं स्निग्धालापस्मितस्नपिताधरं
दरमुकुलितापाङ्गद्रोणीतरङ्गितलोचनम्।
इदमिदमितः पश्यन्नेव प्रियामुखपङ्कजं
किमपि वदनाद्वैतं साक्षात्करोति मृगीदृशः।। –कस्यचित्

1198. अप्यामीलितपङ्कजां कमलिनीमप्युन्नसत्त्वां[1]नवां
वासन्तीमिव पङ्कभित्तिपतितामात्मप्रतिच्छापिकाम्।
मन्वानं प्रथमं प्रियेति पुलकं स्वेदार्द्रकस्याङ्कुरं
प्रीत्यालिङ्गति नास्ति सेति स पुनः खेदोत्तरं मूर्च्छति।।
–श्रीलक्ष्मणसेनस्य

1199. स्वप्न प्रसीद भगवन् पुनरेकवारं
सन्दर्शय प्रियतमां क्षणमात्रमेव।
दृष्ट्वा सती निविडबाहुनिबन्धलग्नं
तत्रैव मां नयति सा यदि वा न याति।।

इति प्रसन्नसाहित्यरत्नाकरव्रज्यायां पञ्चमोल्लासः

* * * *

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'सत्यन्त'।

ततो दीनव्रज्या

1200. प्रातर्वाष्पाम्बुविन्दुव्यतिकरविगलच्छिन्नसृक्का कथञ्चित्
किञ्चित्सङ्कोचिजङ्घाजनितजडजरो जीर्णजानुर्जरार्तः।
मुष्ट्यावष्टभ्य यष्टिं कटिपुटविचटत्कर्पटं श्लिष्टकन्थः
गन्तुं तूत्थाय पान्थः पथि पुरुष इतः[1] मूर्च्छमानः प्रयाति।।

1201. पूर्णाग्नौ पूर्ववातः प्रथममुकुलितप्राक्प्रदोषे रजन्याः
पान्थस्तत्प्राप्तसुप्तस्तदनु तनुभृतो धामनि ग्रामदेव्याः।
उत्कम्पी कर्पटार्थे जरति परिजडे छिद्रिणिच्छन्ननिद्रे
वाते वाति प्रकामं हि कुलिनिरणनं कोणतः कोणयेति।। –बाणस्येतौ

1202. पोतो नैतानपि गृहवति ग्रीष्ममासावसानं
यावन्निर्वाहयतु भवती येन वा केनचिद् वा।
पश्चादम्भोधरजलपरीवाहमर्धञ्च मध्ये,
कुष्माण्डी च प्रभवति तदा भूर्भुवः के वयं के।। – धरणीधरस्य

1203. तस्मिन्नेव गृहोदरे रसवती तत्रैव माकन्दली
तत्रोपस्करणानि तत्र शिशवस्तत्रैव वासः स्वयम्।
तत्रश्रोणवतोऽपि दुःस्थगृहिणः किं ब्रूमहे दुर्दशा-
मद्य श्वो विजनिष्पमानगृहिणी तत्रैव यद् गन्तृभिः।।

1204. आद्याशनं शिशुजनस्य गृहे न जातं
श्वो वा कथं नु भवितेति विचिन्तयन्ती।
इत्यश्रुपातमलिनीकृतगण्डदेशा
नैच्छद् दरिद्रगृहिणी रजनीविरामम्।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'मतत्'।

1205. जरदस्वरसंवरणग्रन्थिविधौ ग्रन्थकार एकोऽहम्।
परिमितकन्दवलूनविद्यापारङ्गता गृहिणी।। –वीरस्य

1206. मा रोदीश्चिरमेहि पुत्र विफलं दृष्टवाद्य पुत्रानिमा–
नायातो भवतोऽपि दास्यति पिता ग्रैवेयकं वाससी।
श्रुत्वैवं गृहिणीवचांसि निकटे कुन्दस्य निष्किञ्चनो,
निःश्वासाश्रुजलप्लुतो नतमुखः पान्थः पुनः प्रेषितः।।

1207. कूष्माण्डं विटपः फलत्यविरतं सिक्तः सुवर्णाम्बुना,
भूयो निर्गदितं हितैषितिवतीरस्माभिरङ्गीकृतम्।
तत्संयाच कुतश्चिदीश्वरगृहादानीयमानः शतै–
र्ध्वा ये नहि बिन्दुभिर्विगलितं लाभे सरो वोदके।।

1208. मातर्धर्मपरे दयां कुरु मयि श्रान्ते च वैदेशिके,
द्वारालिन्दककोणकोशनिहितं स्मित्वा क्षपाञ्चैव माम्।
इत्येवं गृहिणीप्रचण्डवदनावाक्येन निर्भत्सितो,
हस्तन्यस्तपलालमुष्टविभवः पान्थः शनैर्गच्छति।।

1209. भुक्तं मे पथिकाय देहि सुतनो हा हा गिरेति क्षणं,
कस्माद् ब्रूहि सखे प्रसूतमभवत् कालः कियान् वर्तते।
मासं शुद्धिरभूत् तदा नहि भवे जातस्य मृत्युं विना,
को जातो मम सर्वविघ्नहरणे दारिद्र्यनामात्मजः।।

1210. धन्यानां घनपीनचन्दनरसच्छिन्नस्तनोरुद्वये,
क्रीडत्पाणिनिपीडनेन रजनी स्वल्पायते माधवी।
अस्माकं तु कुटुम्बसद्मनि कथा सन्तापजातज्वर–
ज्वालाजर्जरजागरूकमनसां सैवातिदीर्घायते।।

1211. उत्तिष्ठत्क्षणमात्रमुद्वह सखे दारिद्र्यभारं मम,
शान्ता श्वावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं मुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन बहुधा गत्वा श्मशानं शवो,
दारिद्र्यान् मरणं वरं सुखमिति ध्यात्वैव तूष्णीं स्थितः।।

1212. मूषी मूर्च्छति मन्दिरोदरगता काकोऽपि मत्प्राङ्गणे,
विस्मृत्यापि न गच्छति क्षणमपि पक्ष्मापि चूडामणे।
लूता तन्तुवितानवद्धवदना चूली ततो दूखलं
खेलन्तो निवसन्ति सन्ततमहो पोतैः समं दर्दुराः।।

1213. दारिद्र्यं नृपतिः स नो निजपतिर्यस्य प्रसादादभूत्,
याच्या जीवनमंशुकं दशदिशः सद्मानि देवालयाः।
मद्विद्वेषिणि लब्धसन्निधिरिति त्वय्याश्रये कुप्यता,
मद्भृत्येव पुरस्कृतास्त्वदरयः तेनाधुना का गतिः।।

1214. दारिद्र्याद् ह्रियमेति ह्रीं परिगतः प्रभ्रश्यते तेजसा,
निस्तेजाः परिभूयते[1] परिभवान् निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकविहतो बुद्ध्या न संयुज्यते,
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।।

1215. विधातुः द्वे कन्ये सुगतिरपरा दुर्गतिरभूत्,
तयोराद्यामेकां नयविनयहीनाय स ददौ।
ततः पश्चात्तापादिव तदनुजां दातुमधुना,
कुलीनं विद्वासं वरमधिवरेण्यं मृगयते।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ 'सि' पाठत्वात् छन्दोभङ्गत्वात्परिष्कारः ।

1216. मातर्देहि ममौदनं प्रतिगृहं बाला भृशं भुञ्जते,
बालो व्याजविमोहितः सहितया यातः पुनः क्रीडितुम्।
आयातो यदि याचको पुनरसौ सम्बोधनीयः कथं,
हा कष्टं रुदती दरिद्रगृहिणी स्वैरं गृहं मुञ्चति।।

1217. हृदि लज्जोदरे वह्निः प्रायेणैवोच्छिखः शिखी।
इति मे दग्धलज्जस्य पुनर्देहीति का त्रपा।।

1218. नक्तं भक्तमवाप्यते विधिवशाद् राज्यं तु राज्यास्पद-
मर्धं भूपमुखस्य सूपकलिका वार्ता कुवार्ता कुतः।
साकं नाकनिवासिनां विनिमयस्तक्रस्य शक्रक्रिया
किं वाच्योचितचञ्चला तदपि मे वा जायते जीवितम्।।

1219. पतिव्रतेयं गृहिणी मदीया
देशान्तरे याति मयैव सार्धम्।
अन्विष्यमाणा न जहाति भक्ति-
महो सती दुर्गतिरेव कान्ता।।

1220. मा रोदीः करपत्रि पुत्रि वितथं वाष्पोद्गमं संवृण,
त्यक्तव्या न मया कदापि भवती प्राणोऽपि निर्यास्यति।
अस्माकं कुलदेवतां नतवले जानाम्यलक्ष्मीर्मया,
त्वञ्चान्यत्र पटन्नरद्वयमिदं प्रीत्या प्रसादीकृतम्।।

1221. शतं पुष्पं ते के निरतमपरे लक्षमितरे
न सत्कोटिञ्चान्ये कतिचिदवनीमेव निखिलाम्।
निषेव्य क्ष्मापाणिं निजचरितविस्मारितबलिं,
बलीयो दुर्गोऽयं यदहमिह नात्मम्भरिरपि।।

1222. क्वचिद् बद्धग्रन्थिर्घटयति गलद्वारि शिखिनां
क्वचिद् भूयोभूयः खगयति वृथा सन्धिविवरम्।
क्वचिद् प्रौढान् मुञ्चन् निबिडचुलुकैस्तामिति मुहु-
र्गृहे जीर्णे वर्षां क्षपयति दरिद्रस्य गृहिणी।।

1223. अभिमतमहामौनग्रन्थिप्रभेदपटीयसी,
गुरुतरगुणग्रामाम्भोजस्फुटोज्ज्वलचन्द्रिका।
विपुलविलसद्रजोवल्लीविडालकुठारिका,
जठरठिफरीभूः पूरेऽयं करोति विडम्बनाम्।। -जनार्दनस्य

1224. उड्डीना गुणपत्त्रिणः सुखफलान्यावाहिकीनान्यधः,
पर्यस्ताः परितोयकाः स्तवविकाः सम्पल्लतापल्लवाः।
प्रागेवापमृतः प्रमोदहरिणश्छायाकथात्वं गता,
दैत्यालापमतं गजेन बलिनामग्रेऽभिमानद्रुमे।।

1225. अस्ताः किं बहुभिः परोपकृतयः संसारसारं फलं,
उत्तारत्प्रतिकूलवर्तिनि विधौ न स्तोकमप्यभ्रमः।
एते स्मः किल मानुषा वयमपि व्यर्थं व्यपेतायुषा-
मेषां सोदरपूर्तिरिव हि किलाप्यष्टौ महासिद्धयः।।

1226. वाद्यां वाद्या न कोटिः कपिठरजठरे मक्षिकाणाञ्च कोटिः,
कोटिः कुण्डे पदीनां मम गृहपटले यूपकोटिः करोटाम्।
अङ्गे विस्फोटकोटिः कटितटविलुठत्कर्पटे ग्रन्थकोटि-
रित्थं कोटीश्वरोऽहं तदपि नृप कथं गन्तुमन्यत्रकामः।।

1227. हस्तप्राप्यदृशोज्झिता प्रतिपयो वृष्टिस्खलद्भिष्टयो,
दूरालम्बितदारुदन्तुरमुखाः पर्यन्तवल्लीवृताः।
वस्त्राभावनिलीनसत्रपवधूदत्ताकुलालिङ्गना-
स्त्यज्यन्ते चिरशून्यविभ्रमभृता भिक्षाचरैर्मा गृहाः।। -धीरस्य

1228. यावद्दूरकुटुम्बिनीकरतलस्पर्शात् समालोक्यते,
तत्तत्क्षुद्रकणादिरक्षणधिया घोरं वने वर्षति।
तावज्जीर्णकुटीरकोटरविशन्सौदामिनीदीपितं,
दृष्ट्वा दोलकजालमाविलजनः कान्तं मुहुर्मूर्च्छति।।

1229. [1]प्रातः सञ्चिततण्डुलाः प्रतिदिनं नीताः क्षयं मूषिकै-
र्वस्तुष्वेव विसङ्गितोदरतलाः शीर्यन्ति वार्ताकराः।
जीर्णं जालकलोलनालपिठरीगर्भे च कर्कारवं,
दीनायाः पथिकस्त्रियः प्रियतमप्रत्यागसापेक्षया।। -नीलपटस्य

1230. धूलीधूसरितः पलालशयनात् शूली कदम्बासनात्,
संस्कारेण विनाधुना नरपते केशा जटात्वं गताः।
एको भृङ्गरितेरिव प्रतिकृतिः पार्श्वे सहायास्त्रियो,
युष्मत्तो यदि चार्धचन्द्रमलभं प्राप्तं पदं शङ्करम्।।

1231. शीलं शान्तयति स्तुतं शमयति प्रज्ञां निहन्त्यादरात्,
दैवं दीपयति क्षमां क्षपयति व्रीडामपि व्यास्यति।
चेतो जर्जरयत्यपास्यतिधृतिर्विस्तारयत्यर्थितां,
पुंसः क्षीणधनस्य किं न कुरुते दर्वी दरिद्रग्रहः।। -दामोदरस्य

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'आ'।

1232. सत्यं विभिद्यते नूनं दरिद्रतनुपञ्जरम्।
यदि न स्यान्मनोराज्यरज्जुभिर्दृढसंयुतम्।।

1233. प्रायो दरिद्रशिशवः परमं निराशं,
द्वारे प्रदत्तकरपल्लवलीनदेहाः।
लज्जानिगूढवचसो बहुभोक्तुकामा
भोक्तारमर्धनयनेन विलोकयन्ति।।

1234. अध्वश्रमाय चरणौ विरहाय दारा,
अत्यस्वनाय वचनञ्च वपुर्जराय।
एतानि मे विदधतस्तव सर्वदैव-
नेयो यदा न खलु तत्र परिश्रमोऽपि।।

1235. वरं मृतो न तु क्षुद्रस्तथापि महदुत्तरम्।
एकस्य कस्य नादत्ते नामान्यस्याखिलं जगत्।।

1236. कृपणस्य तु दारिद्र्यं कार्पण्यवृत्तिकारकम्।
विभवस्तस्य तद्दोषघोषेनापहतौजसः।।

1237. श्रीफलं तनुते दीर्घमिति तावद् व्यवस्थितम्।
तत्रैकान्तधृतिं यस्तु मन्यते मूर्ष एव सः।।

1238. दृढतरनिबद्धमुष्टे कोषनिषण्णस्य सहजमलिनस्य।
कृपणस्य कृपाणस्य केवलमाकारतो भेदः।।

1239. येनैवाम्बरखरो यत्र दिवा सञ्चरते रविः।
तेनैव निशि शीतांशुरहो दौर्गत्यमेतयोः।।

1240. दृष्ट्वा लताछेदनमन्तरेण भवत्यवश्यं महतोऽप्यलम्ब्य।
पश्यैतदेवं क्रमशो विवस्वानमीनमेषञ्च वृषं च भुङ्क्ते।।

1241. मलीमसेन देहेन प्रतिगेहमुपस्थिताः।
आत्मनैवात्मकथका वयं वा येन वृत्तयः।।

1242. अर्धं दानववैरिणा गिरिभुवाप्यर्धं हरस्याहृत-
मेतस्मिन् जगतीतले स्मरहराभावे समुन्मीलति।
गङ्गावारिधिमम्बरं शशिकला नागाधिपः क्ष्मातलं,
सर्वज्ञत्वमथेश्वरत्वमगमत् त्वां मां च भिक्षा सृता।।

अथान्यापदेशव्रज्या, रत्नम्

1243. केनासीनः सुखमेकारुणो नो करादुद्धृतस्त्वं विक्रेतुम्।
वासमविलसितं केन देशान्तरेऽपि यस्मिन् चित्रव्ययम्।।

1244. ....
....
....
....[1] यः कुटिलिमानम्।। -नीलस्य

1245. क्व जन्म क्षीराब्धौ क्व च सहनिवासः सुरगणैः,
कृतैः स्पर्धाभूमिस्त्रिजगुणगणैः कौस्तुभमणिः।
इदानीं रागान्धो लुठसि क्व वने गोपितगुणः,
स्तने मुग्धाक्षीणां तरलतरकेयं परिणतिः।। -श्रीकरस्य

1-1. मूलपाण्डुलिपौ एतत्पूर्वं पाठो न लभ्यते।

1246. यत्कण्ठे श्रुतिभूषणानि बहुशो भ्रातः सुवर्णान्यपि,
स्वान्यस्माभिरुपाकृतानि विपिनस्थानेषु दैवान्न किम्?
धिक्कर्माणि तु नैव नास्ति निकषग्रावान्न मानक्रमो,
नक्रे तानपरीक्षकः परमभूदुच्चैर्भयं दुर्जनात्। -जितारेः

1247. आघ्रातं ककुचेन दूरविरहो रत्नाकरात्तोषणं,
पाषाणे बहुशः कृशत्वमनलज्वालाजतुन्यासतः।
भ्रातः सङ्ग सहस्व सर्वमचिराद् तन्वीभुजालिङ्गनं,
प्रीतिस्तेन स्वभाविनी नहि विना दुःखं क्षयस्यागमः।। -कस्यचित्

1248. दाहच्छेदनिकषैः रतिपरिशुद्धस्य ते वृथा गरिमा।
यदसि तुलामधिरूढं काञ्चनगुञ्जाफलैः सार्धम्।। -सुरभेः

1249. सिन्धोरुच्चैः प्रपवनबलादुच्छलद्भिस्तरङ्गैः,
कूलं नीतो हतविधिवशाद् दक्षिणावर्तशङ्खः।
दग्धः किं वा न भवति मसी वेत्ति सन्देहिनीभिः,
शम्बूकाभिः सहपरिचितो नीयते पामरीभिः।। - सुरुचितस्य

1250. छिद्रं मणिगुणार्थं नायकपदहेतुरस्य तारतम्यम्।
कथमन्यथेश्वराणां विलुठति हृदये च मौलौ च।।

1251. यद्दृष्टं निकषोपलेऽप्यमलिनं यट्टङ्किता निर्दय,
व्यापारेषु विकारि यच्च शिखिनि क्षिप्तेऽपि न म्लायति।
एतस्यामपि शुद्धसम्पदि..................................,
....[1]।।

1. मूलपाण्डुलिपौ एतत्पूर्वं पाठो न लभ्यते।

1252. ....

...........[1] तालमुदाहरन्ति कृतिनः स्पृष्ट्वापि यासां पयः।
दृष्ट्वैव प्रपुनाति विश्वमखिलं सेयं पुनर्जाह्नवी,
विच्छिन्ना क्वचिदाकुला क्वचिदभिस्वल्पाम्बु सोच्चा क्वचित्।।

–उमापतेः

1253. मधुरमपि च नैव क्रोडभूषास्य काचिद्,
परिभजसि यदेतत्तद्धि भूतिस्तथैव।
इह सरसि मनोज्ञे सन्ततं पातुमम्भः,
श्रमपरिभवमग्नाः केन भग्नाः करीन्द्राः।। – श्रीधर्मकरस्य

1254. सततं या मध्यस्था प्रथयति मुष्टिप्रतिष्ठिताप्यासीत्।
पुष्करिणी किमिदमुचितं ताञ्चेदानीं मेघो नयति।। –कुशलनाथस्य

1255. सन्तप्ता यदि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रोदरे दृश्यते।
मुक्तास्फोटमुखे पुनर्निपतितं मुक्तैव साक्षाद् भवेत्,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमजुषामेवं त्रिधा वृत्तयः।।

1256. शैत्यं नाम गुणास्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता,
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शे तथास्यापरे।
किञ्चास्मत्परमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं देहिनां,
त्वञ्चेदञ्च पथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः।।

1257. भवकाष्ठमयी नाम नौके हृदयादपि।
परकीयैरपरथा कथमाकृष्यसे गुणैः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1258. नालस्य प्रसवो जलेष्वपि कृतो वासश्च कोषे रुचिः,
दण्डे कर्कशता मुखे च मृदुता मित्रे महामङ्गलम्।
आमूलं गुणसङ्ग्रहव्यसनिता द्वेषस्य दोषाकरे,
यस्यैषा सितिरम्बुजस्य वसतिर्युक्तेव तत्र श्रियः।।

1259. यत्कर्कशञ्च विरसञ्च मलीमसञ्च,
तत्पद्मनालमिदमुन्नतमेव नित्यम्।
यत्कोमलञ्च मधुरञ्च समुज्ज्वलञ्च,
हा तन्मृणालमध एव परं प्रयाति।।

मीनः

1260. शफर संहर चञ्चलतामिमां चिरमगाधजलप्रणयी भव।
इह हि वञ्जुलप्रोज्ज्वलकुञ्जरे वसति सेष्टवकः सकुटुम्ब

1261. विदारि ययोदरमस्थितिर्विभिन्ना नीतिः पश्यताम्।
मया कण्ठोत्फलावस्था न कृतः कोषसञ्चयः।।

1262. पयसि स्वच्छे मत्स्याज्जिघृक्षुरितस्ततो,
चरितनयनोन्मदं मन्दं विदधन्वकः।
वियति विवृतैकाङ्घ्रिस्तिर्यग्विवर्तितकन्धरो,
दलमपि चलन् सप्रीत्या सम्मुहुर्मुहुरीक्षते।।

1263. गरीयः सौरभ्यं रसपरिचये नार्हति सुधा,
सुधा मृद्वीकापि प्रथिमनिमिबन्धः फलभरः।
परार्थे कोशश्रीरिति पुलकितं कण्टकमिषाद्,
अहो! तच्चारित्र्यं पनसमनसः कस्य न मुदे।।

दाडिमः

1264. कस्य पल्लविता न श्रीः पयोदोऽभ्युदये तव।
अमृषा दाडिमी नान्तपुत्र मन्येऽपि निग्रहः।।

1265. विस्वानु किं वससि कण्टकतल्पमध्ये,
सम्प्राप्यतेऽल्प तपसा ननु तत्कचश्रीः।
भित्तोदनं न करकः कतिकालवासी,
तत्किं दधासि दशनश्रियमेतदीयाम्।।

तालः

1266. वद्ध्यस्य प्रतिपर्वकर्कशतनोर्निघ्नाति रागस्तरी
बिभ्राणस्य महीतलं, बहुतिथौ संवत्सरैर्मुञ्चता।
केयं ते तृणराजशब्दविधिना तालङ्गमा गेयता
यो न स्वस्य न वा परस्य कृपणच्छाया नवेऽपि क्षमः।।

1267. विश्राम्यन्ति न चाध्वगास्तव तले नामोदिताः पद्मदाः
पुष्पेनापि न तर्पिताः फलभरैराकाशचारिद्विजाः।।
चाण्डालाः शिरसि प्रदाय चरणौ गृह्णन्ति गीर्यत्फला-
न्यस्माभिः फलमेतदेव कलितं ताल त्वदीयोन्नतेः।।

1268. त्वन्मूले पुरुषायुधं क्षपयता नाराधि नारायणः
सन्तु स्थाणुरपि व्यलोकि न मया रामामुखाम्भोरुहम्।
भ्रातस्तालतरो नवोऽस्मि दिवसानल्पीयसः प्राणिता-
स्तुभ्यं स्वस्ति चिरात्फलिष्यति भवान् पुत्रेषु पौत्रेषु नः।।

तिन्तिनी

1269. तृष्णाम्भोनिधिशीतदीधितिकला जित्वा लताम्भः शिरः
सन्ध्यानक्रकठोरसौधनगरद्वारस्थलीतोरणम्।
उद्गाढज्वरजित्वरो रुचिनदी नौका न नैषामिषं
व्यालोन्मीलितशीतलाम्बुमधुरा मोदा मुदे तिन्तिनी।।

निम्बु

1270. सद्वृत्तावतिरसाढ्यः परिमलसुभगः स्वर्णकमनीयः
यत्कविगुम्फ इवायं सुखयति कम्बाललिम्पाकः।।

1271. श्रीश्रीफलेन वाक्यं तृणराजेनान्यतोऽलञ्च।
सम्यक् तव कुचसाम्याद्गतो घटश्चक्रवर्तित्वम्।।

1272. सुलब्धपाको लिम्पाको रसपीयूषसेकभाक्।
माधवे माभिनाडी च शाको नो कोऽपि दुर्लभः।।

तुलसी

1273. मधुमथनमौलिमाले सखि तुलसि तुलयसि किं सुधाराध्ये।
यत्तव पदं यदसीयं सुरतयितुं सौरभोद्भेदः।।

ततस्तरुव्रज्या

चूतः

1274. मयि जगति जगत्यां को विवेको विधत्ते
वितरति रतितत्त्वे श्रीपदं हा हतोऽस्मि।
इति निजगुणगर्हागर्वितो जाठराग्नौ
विशति निशि नु कोऽयं कृत्तगात्रो रसालः।।

1275. सम्यक् शाखिविपक्षपत्रनिचिता गारस्थली शायिता
घूर्णन्ती नु निशातकर्तरि कृतप्रत्यङ्गभङ्गं स्थितिः।।
अल्पास्थित्वमलञ्च मांसलमृदुस्वादु स्फुटामोदितं
चूतं चुम्बति लाजलं गतितया धिग्जन्म तज्जन्मिनः।।

1276. काचित्काञ्चनशिल्पके वधुशिरच्छोदद्युतिर्विक्रम-
द्रोणीवार्द्रचतुःशमप्रणयिनी काचिद् दिशामोदिनी।
काचिन्मारकतीव सूक्तिरुदरे सिन्दूरिणी कारिका,
राशाली करसत्कृता यदि तदा जिह्वा वयं ब्रह्मणि।।

1277. एतस्याम्रतरोरधः परिसरे त्रातुर्वसामक्षमं
मा भैषीर्नु फलार्थिने वयमिह स्वास्थ्येन तत् स्थीयताम्।
दुर्दानस्य गतिः पुरे विदितया यद्वा मनाग् वायसान्,
दुर्वाराणि भयङ्करेण धनुषा त्रासेन संवर्तसे।।

1278. संनीडे मुकुलोद्गमादनुदिनं त्वामाश्रिताः षट्पदा-
स्ते भ्राम्यन्ति भवस्फलाद् बहिरहो दृष्ट्वा न सम्भाषसे।
ये कीटास्तव दृक्पथञ्च न गतास्ते त्वत्फलाभ्यन्तरे,
धिक् त्वां चूततरो परापरपरिज्ञाना न भिज्ञो भवान्।।

1279. सुगन्धिः कोऽपि स्याद् कुसुमसमये कोटिविपटी,
शलाटो सामोदः फलपरिणतौ कोऽपि सुरभिः।
प्रसूनं प्रारम्भात् प्रभृतिरपि सोऽद्यावधि पुनः,
जयत्येवात्रैव स्फुरति सहकारो परिमलः।।

वटः

1280. ऐ कुग्रामवटद्रुम स्रवणो वसतु वसतु वा लक्ष्मीः।
पामर कुठारपातात् कासरशिरसैव ते रक्षा।।

1281. मौलौ जयति पताका स्कन्धे स्रजस्तव वलयः।
किं किं त्वयि न वटद्रुम कासरशिरसः प्रसादयन्।।

1282. सोढं सोढमहो क्रमाभिशनकैः पत्राण्यधः कुर्वते,
संभाव्य क्षणमक्षमा हि तरवः केचिद् कृतद्युग्व्रताः।
नामान्येतदमी तथा च निजच्छायोक्षतिं भैः पुन-
स्तेषामेव तरो कृतज्ञचरितैः सूच्यद्भिरप्यास्यते।।

1283. सत्कृत्यैर्दृशि शिक्षितैः पुनरहो नूनं विहङ्गैर्गतं
छायादाननिराकृतश्रमभरैर्नष्टं मृगैर्भीरुभिः।
हा कष्टं फललोलुपैरपचितं शाखामृगैश्चञ्चलै-
रेकेनैव दवानलव्यतिकरः सोढः परं शाखिना।।

1284. पत्राणि त्रुटितानि कीटकवलैरामूलमुन्मूलिताः,
शाखारण्यमतङ्गजैर्न कलभैरास्वाद्य मुक्तास्त्वचः।
स्थाणुः केवलमेव पिप्पलतरोस्तत्रापि सीतातुरः
ग्रामीणैः परितः कुठारपतनारम्भः परामृश्यति।।

1285. हं हो जनाः प्रतिपथं प्रतिकाननञ्च,
तिष्ठन्तु नाम तरवः फलिता लताश्च।
अन्यैव सा स्थितिरहो मलयद्रुमस्य,
यद् गन्धमात्रमपि तापमपाकरोति।।

1286. किं ते नम्रतया किमुन्नततया किं ते घनच्छायया,
किं ते पल्लवलीलया किमनया वाशोकपुष्पश्रिया।
यस्त्वं मूलनिखण्डखिन्नपथिकस्तोमस्तु वन्दन्नयं,
न स्वादूनि मृदूनि खादति फलान्याकण्ठमुत्कण्ठितः।।

1287. सुच्छायं फलभारनम्रशिखरं सर्वार्तिशान्तिप्रदं,
स्वात्मालोक्य महीरुहं वयममी मार्गं विहायागताः।
अन्तस्ते यदि कोटरोदरविलव्यालावली विस्फुरद्,
वक्रोद्वान्तविषा न लाति भयदो वन्द्यस्तदानीं भवान्।।

1288. कमलवननटी जन्मस्थानं क्व ते वनेचराः,
क्व खलु परिशुद्धः क्वासौ दिगन्तर्गतिः।
कञ्च खरशिलापट्टे घृष्ठाः क्व पङ्कः,
रूपतामलं यदि सखे भागाः खेदं गुणाः।।

1289. सत्यं पिप्पल पादपोत्तमघनच्छायान्त तेन त्वया,
सन्मार्गोऽयमलङ्कृतः किमपरं त्वं मूर्तिभेदो हरेः।
किञ्चान्यत् फलभोगतृप्तमुखरास्त्वामाश्रिताः पत्त्रिणो,
यत्पुँस्कोकिलकूजितं शिरसि ते तन्नामरूपं परम्।।

1290. न्यग्रोधे फलशालिनिष्कुटरसं किञ्चिद् फलं पच्यते,
बीजान्यङ्कुरगोचराणि कतिचिद् सिद्ध्यन्ति तस्मिन्नपि।
एकस्तेष्वपि कश्चिदङ्कुररसो बध्नाति तामुन्नतिं
यामध्वन्यजनः स्वमातरमिव क्लान्तिच्छिदो धावति।।

1291. आमौदैस्ते दिशि दिशि गतैर्दूरमाकृष्यमाणाः,
साक्षाल्लक्ष्मीस्तव मलयजाद्दूरमभ्यागताः स्मः।
किं पश्यामः सुभगतरवः क्रीडति क्रोड एव,
व्याडस्तुभ्यं भवतु कुशलं मुञ्च नः साधयामः।।

1292. ककुभि ककुभि भ्रामं भ्रामं
दृष्टोऽस्माभिर्न कोऽपि महीरुहः।
उपचितरसो दाहोच्छेदे शिलातलघर्षणे-
ऽप्यधिकतमधिकं यत् सौरभ्यं तनोति मनोगतम्।। -मरणिनन्दस्य।।

1293. व्याकुर्महे बहु किमस्य तरोः सदैव,
नैसर्गिकोऽयमुपकाररसः परेषु।
उन्मूलितोऽपि मरुता वत वारि दुर्गे,
मार्गो यदत्र जनसङ्क्रमतामुपैति।।

कदम्बः

1294. न भवतु कथं कदम्बः प्रतिपाकः प्रतिरूढघनः पुनश्च।
विश्वं धिनोतु जलदः प्रत्युपकारप्रियारहितः।। -अचलसिंहस्य

1295. ये पूर्वं परिपालिताः फलदलच्छायादिभिः प्राणिनो,
विश्रामद्रुम कथ्यतां तव विपत्काले क्व ते साम्प्रतम्।
एताः सन्निधिमात्रदर्शितपुरः सारास्तु धन्यास्त्वतो,
यासां छेदनमन्तरेण पतितो नायं कुठारस्त्वयि।। -बिम्बोकस्य

1296. यः पूर्वं स्फुटदस्थिसंपुटमुखे दृष्टः प्रवालाङ्कुरः,
प्रायः स द्विदलादिभिः क्रमवशादारब्धशाखाशतः।
स्निग्धं पल्लवितो घनं मुकुटितः स्कारच्छटं पुष्पितः,
सोत्कर्षं फलतोयदश्च विनतः कोऽप्येष चूतद्रुमः।।

1297. भ्रातः पश्यति कृत्यचम्पकतरून् शाखोटको रोप्यते,
सारासारविवेचिनीमतिरिह ग्रामे जनानामिह।
तद्यावद् वयमस्य शेषसलिलं बोद्धुं न कृष्णामहे,
तावत्सत्वरमेव पामरजनग्रामादितो गम्यताम्।।

1298. दलानां सैव श्रीर्मरकतमणिशरणासतो,
यारम्भः स च विपुलपर्वक्रमभरः।
अनिच्छुस्ताम् लक्ष्मीमनुहर्त्तुं नामैवमखिलां,
हा वेषे विक्षोभमनुभवकथा......................[1]।।

1299. सन्त्येवान्ये जगति बहुशः शाखिनः सारवन्तः,
सन्तानाद्यास्त्रिदशतरवः सर्ववाञ्छाफलेशाः।
केचित्पक्ष्मभ्यः सुघटिताः कर्मभिः केऽपि धन्या
येषां नाम्ना ननु वसुमती द्वीपसङ्केतिता स्यात्।।

1300. पान्थाः किमेतदुचितं पथि शाखिनश्च,
च्छायां निषेव्य परिहृद्य महाध्वखेदम्।
तस्यैव मूलदलपल्लवभङ्गमुच्चैः,
कर्त्तुं मनो वलति यद् भवतां प्रयत्नः।।

1301. स्कन्धैः स्कन्धपरिग्रहो मरकतैरुन्मीलिता कन्दरा,
शाखाभिः स्तवकश्रियौ मधुलिहां वृन्दानि नीलोत्पलैः।
सङ्कल्पान् प्रविधाय यस्य फलिने कस्तस्य धत्ते तुलां,
धिक् जातिक्रमसङ्कराः स्वयमयं कल्पद्रुमोऽपि द्रुमः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ एतत्पूर्वं पाठो न लभ्यते। सर्वासु पङ्क्तिषु छन्दोभङ्गः ।

1302. परार्थे यः पीडामनुभवति निर्व्याजमधुरो,
मदीयः सर्वेषामिह हि न विकारोऽप्यभिमतः।
न सम्प्राप्तो वृद्धिं सपदि हतदैवाद् समुचितां,
किमिच्छोर्दोषोऽयं स पुनरगुणाया मरुभुवः।।

1303. ग्रन्थितत्त्वमलिनत्वमादराद्दारिद्र्य स्वनिहितैर्विनोन्नतिम्।
सौरभेऽपि सति पश्यता गुरोरर्घमिति सरलः कदाचन।। - मुकुन्दकवेः

1304. निष्पन्ना यदि नाम नाम नु परः प्रान्तेषु भूमीरुहः,
श्लाघ्यस्तत्र स एव कल्पविटपी पत्रासने मे गुणाः।
सङ्कल्पात् फलदोहदानि फलितं रत्नानि वृत्तिं जगत्,
केशच्छेदनिदानमुन्नतिरनुल्लङ्घ्या यशो दुर्जये।। -पुरुषोत्तमगजपतेः

1305. हे चूतद्रम! किं मुधैवमधिपं प्रीणासि धिक् कोकिलान्,
जल्पन्तो मधुराणि नित्यमलिना नैते चिरस्थायिनः।
तानुल्लासितपल्लवाननुदिनं यै रोहितामुन्नतिं,
बिभ्राणाः प्रतिपर्णनिर्भरदलैरुत्तुङ्गतायास्यति।। - त्रिविक्रमगजपतेः

1306. साक्षान्नैव तनोति कामपि मुदं नादृत्य हन्त्यापदो,
न प्रीणाति मनीषिणां श्रवणमप्यध्यासनामूर्तिभिः।
तस्याम्भोधिसुतापतेर्भगवतोऽधिष्ठानमात्रादसौ,
दुःस्वप्ना न विवेदिता व्यपहरत्यश्वत्थभूमीरुहम्। -तस्यैव

1307. दलानां संभारैरधरयति तत्तान् तततया,
स्पृशाकाशं सर्वाः स्थगय परिणाहैरपि दिशः।
तथाप्यध्याक्ष्येभ्यो न पुनरितरः कोऽपि विहगः
फलार्थी निम्ब त्वां प्रकृतिसुभगं धावति सुधा।। -विश्वनाथस्य

1308. प्रसारः शाखानां स्थगितगगनाभोगमहिमा,
समृद्धिः शोणाम्भोरुहवनसमाना सुमनसाम्।
प्रकाण्डः श्रीर्वाचामपि न विषयः शाल्मलतरो-
स्तथाप्तं शुश्रेणीमयमनुपभोग्यं तव फलम्।। – उमापतेः

1309. दुःस्पर्शा विरसातिसारफलिनीरेताः सृजन् वीरुधः,
कष्टं कण्ठकवेऽत्र बीज कुरुषे दुर्गास्तरूणां भुवः।
आत्मानं दववह्निना तव भवेदेवं निदाघातप,
ताम्यत्पान्थकुलातिथेयकदलीकाण्डक्रियाडम्बरः।।

1310. ये बाल्ये निजपल्लवैरभिनवं स्पर्धाभिरामैर्घनै-
रुन्मीलच्चिरनन्दनं विदधिरे लोकस्य नेत्रोत्सवम्।
वृद्धिं प्राप्य कथं भवेम तरवः शश्वत् स्फुरत्कण्टक-
श्रेणीदारुणमूर्तयस्तनुभृतामातङ्कमातन्वते।।

1311. किं जातोऽसि महामहीरुह दुरारोहस्त्वमेवं विधः,
सीदन्त्यूर्ध्वमुखास्तले तव कथं पान्थाः फलं काङ्क्षया।
छेत्तुं मूलमुपैति दुर्लभफल त्वां वीक्ष्य तीक्ष्णायुधः,
पश्यामीति पतन्त्युदात्ततरवः लासस्पृशत्पत्रिणः[1]।।

1312. मुञ्चन्त्येते त्वमपि च निजां निस्पृहां वायुभक्ष्याः,
क्षीराहारा इति जगदिदं चिन्तयद्भिर्द्विजिह्वैः।
तेषामन्तर्गुरुविषभृतामत्यहिंसारुचीनां,
क्रीडापात्रं मलयजसखे वेधसा निर्मितोऽसि।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'पत्रयः'।

1313. किं तिष्ठन्ति न भूभृतः स्थिरभुवो मर्यादितश्चावयो-
र्लब्धं जन्म यतस्तया कुसरितः कूलङ्कषायास्तटे।
इत्यासन्ननिपात पादप सखे मा खेदमस्मिन् कृथाः,
प्रायः कल्पितमीदृशे नु विधिना कस्तत्करोत्यन्यथा।। -शङ्करदेवस्य

1314. त्वं क्रोडीत्यचिरं तृणध्वजितरोरूर्ध्वं त्वचासञ्चयै-
रुत्सारैर्नववातवृष्टिजनितापायं शिशुर्वर्धितः।
यत्तालं त्यजसि प्ररूढकतिचिच्छायाकृतानां कृतिस्-
तत्किं चेष्टितमीदृशं न भवतः सत्त्वं सजल्पोचितम्।।
- श्रीवसन्तदेवस्य

1315. आमोदो बहलः शशाङ्कधवलच्छायो दलानां चयः,
स्निग्धा केसरसंहतिर्मलयजक्षोभोऽयमारेणकः।
केतक्याः कुसुमस्य साधु सकलीदोषस्त्वयं केवलो,
रुद्रा न प्रविशन्ति यन्मधुलिहद्वारिस्थितैः कण्टकैः।।

1316. आसीद्यस्तरुपत्रकस्त्रिचतुरैः पत्राङ्कुरैरावृतो,
मेघोन्मुक्तजलेन जीवनविधिः सन्मार्गलब्धस्थितिः।
सोऽयं सम्प्रति वासरैः कतिपयैरध्युत्तराणां चयैः,
सम्पन्नं फल तमुपल्लवततीर्णा..............[1]।।

1317. आमूललग्नफलसंवृतिसंवृतोऽस्मि,
किञ्चाम्रपादपवनस्त्वमतस्तरूणाम्।
यत्ने फलं क्षुधितवामनकुब्जपङ्गु-
क्लीबैरभिश्रमपराङ्मुखकेवलञ्च।। -धर्मपालस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते, पूर्वपाठेऽपि छन्दो भङ्गः।

1318. ताडीतरोरनुपभोग्यफलं फलित्वा,
लज्जावशादुचितमेव विनाशयोगः।
एतत्पुनः समुपहृद्यफलेन प्राप्य,
तान्येव हा झटिति यत्कदली जहाति।।

1319. उद्यानपाल भवता यदि चूतशाखा,
संवर्धितोऽयमधुना तदुपेक्षितः किम्?
एनैवमस्तसितसेकविशीर्णशाखं,
शाखोटकप्रभृतयोऽपि च लङ्घयन्ति।। -वाचस्पतेः

1320. उद्यानपाल रचिताञ्जलिरर्थये त्वा-
मुत्सृज्यशोकमधुना प्रतिपन्नवो यः।
स्मर्यतां गतवतस्तरुपत्रकस्य,
बीजाङ्कुरालरहितः प्रतिपालयेति।।

1321. देशो मरुस्तदिह कण्टकदुःखवेष-
बन्धोलिकेलिविटपाः फलशालिनोऽपि।
न्यग्रोधशीर्णजडकीटहतालिजन्मा-
लोभाच्च तद्द्धि बहुलः फलसम्पदस्ते।। -वसन्तदेवस्य

1322. केनाऽत्र चम्पकतरोस्तव रोपितोऽसि,
कुग्रामयामरजनान्तिकवाटिकायाम्।
यत्र प्ररूढनवसाकविवृद्धलोभः,
नो वाटभग्नपुट नोचितकार्यतत्वम्।।

1323. हा सौरभं तदेतत्तदिदं सन्तापहारिहासैः।
त्वमङ्गारकारहस्ते चन्दन पतितोऽसि धिग् दैवम्।।-वाचस्पतेः

मधुपः

1324. कृतपरमोत्तमकर्कसमर्पितः कोशश्च सदयमधुरकरः।
खण्डयसि बन्धुमङ्गं किं ब्रूमो त्वं मधुपोऽसि।।

1325. नो यात्येव दिवं सतो यदि पुनर्दीना गतस्तीर्थपः,
विश्रान्तः सहरिः स्वकाननवशं प्राप्तोदको मामिति।
कोऽस्तीन्दीवर एष एव मधुमान् सुप्त्वैव यातः शिशु-
र्यल्लीलाकमलेऽपि धित्सु सुमनाः स्मेरः प्रगल्भो जनः।।

1326. छायाशीतलिता सकाञ्चनशिला खेला कृतार्थार्थिन-
स्तत्रोन्मार्मिकमर्ममञ्जरिगुहक्रीडामिलत्खेचरात्।
घ्रात्वाऽप्यद्भुतसौरभोरुलहरी कल्पद्रुमान्वेषयद्,
वेगाद् धारयति प्रगुञ्जति परं तत्कायमिन्दिन्दिर।। -वल्लणस्य

1327. त्यक्त्वा त्वं मकरन्दसुन्दरममुं फुल्लारविन्दाकरं
चुम्बन् चूत न केतकीं प्रतिमुर्हुर्हा कण्टकैः कीलितः।
तद् भ्रान्तस्य मलीमसस्य मुखरस्योन्मत्तचित्रस्वतेः,
रे रे चञ्चल चञ्चरीक तदिदं कर्मानुरूपं फलम्।।

1328. प्राणत्राणमभूदमुख्यचलितः क्रूरास्तु सारानिला,
यद् हेतोर्न विदीर्णमस्य च गते पद्माकरे तां दशाम्।
तन्नूनं मकरन्दसुन्दरपृथो प्रस्थारिणी सद्यशः,
प्रत्यासन्नवसन्तसम्पदमहो ध्यायन् भृशं निर्वृतः।।

1329. नता सज्ज्वालाम्भे स्थितवति वरारम्भशिखरे,
पिपासुः किञ्जल्कः प्रविशति सरोजं मधुकरः।
तदन्तः सम्बोधं न गणयति सन्ध्या समयजं
जलार्थी नो पानं विमृशति फलैकान्ततृषितः।। -विष्णुशर्मणः

1330. अनभिलषन्तः श्रीनीलाब्जे परागविलेपनं
त्रिदशकरिणः पातुं दानप्रवाहमनीक्षतः।
सुमनो गन्धशक्तिविमुक्तरतः सखे क्व,
खलु ननु भवान् समतुष्टस्य द्विरेफस्थितिः॥

1331. निरानन्दः कौन्दे मधुलिह इतः सुन्दर[1]कल,
त्वसारे सालम्बो लवमपि लवङ्गे न रमते।
प्रियागुर्नो सङ्गं रचयति न वृत्ते चिरयति,
स्मरः लक्ष्मीलीलां कमलमधुपानं मधुकरः॥

1332. पानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णवातैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति॥

1333. नन्दनजन्मा मधुपः सुरतरुकुसुमेषु पीतमकरन्दः।
देवादवनिमुपेतः कुटजेषु समीहते वृत्तिम्॥

1334. एतेऽम्बुदाः कमलकेसरकेतकीषु
संवर्धिताः कुटज पाटलिचम्पकेषु।
कालेन ते मुखरनीरसगन्धहीने
शाखोटके विधिवशात्क्षपयन्तु कालम्॥

1335. किं लोलम्ब विलम्बसे मधुधिया धत्तूरपूरोदर-
द्वारे दूरमुपैहि मोहितमितो ध्यात्वापि स ध्यायति।
ताः सन्त्येव वसन्तसन्ततलसद्वल्लीकमल्लीलताः
पाता यत्र भुवां मधूनि मधुभागाकण्ठमुत्कण्ठति॥

1336. गण्डोपान्ते सुचिरनिभृतं वारि यत्र द्विपानां
ये सेवन्ते नवमधुरसास्वादलुब्धाः द्विरेफाः।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'लोवल'।

तत्तत्कर्णव्यजनपवनप्रेङ्खिताः खिन्नदेहा
भूमिं जाताः कमलविवरक्रीडनान्तं स्मरन्ति।। -विष्णुशर्मणः

1337. अन्यासु तासु बहुमर्दसहासु भृङ्ग
लोलं विनोदय मनः सुमनो लतासु।
मुग्धासवत्वरुजसङ्कनिकामकाले
बालां कदर्थयसि किं नवमालिकायाः।। -विद्यायाः

1338. अनुदिनं परिभुज्य सरोजिनीं
विपदि निष्करुणा मधुपावली।
अभजदुज्ज्वलमुत्पलकाननं
क्व नु पुनः मलिनाः स्थिरसौहृदाः।। -श्रीश्रीविक्रमादित्यस्य

1339. अयि दलमुकुले वकुले यया पद्मदयितोऽपि तृष्णया।[1]
अहह सा सहसा विधुरे विधौ मधुकरी वदरीमनुवर्तते।। -उमापतेः

1340. स्वादयन्ति चिरं नाम कोकिलाश्चूतकोरकान्।
तादृक्परिमलं वेत्ति यदि धन्यो मधुव्रतः।। -वसुकल्पस्य

1341. अमीसामामोदप्रणयसुभगं सङ्गतमभूत्
प्रसूनैरुन्निद्रैः सहजबहुभी रात्रिवचनम्।
तदन्या न क्वापि व्यवहरति चन्द्रेऽपरिमितं
पिबन्ति स्वच्छन्दं रसमुदरपूरं मधुलिहः।।

1342. मधूनामाधिक्यं किमपि सरसः स्मेरतरुणी
मुखच्छायां कान्तिः त्रिभुवनविसारिः परिमलः।
इति श्लाघ्यं लज्जां परिहरति पद्मं मधुकरी
गुणो वादो येषां न खलु मलिनानां परिचयः।।

1. एतस्यां पङ्क्त्यां छन्दोभङ्गः।

अथ पक्षिव्रज्या

1343. कि नैव सन्ति भुवि ते सरसावतंसा
हंसावलीवलयिनो जलसन्निवेषाः।
कोऽयं ग्रहो ग्रहवतः खलु चातकस्य
पौरन्दरी यदभिवाञ्छति वारिधाराम्।।

1344. यस्योदये बहु मनोरथमन्तरेण
सञ्चिन्तितं किमपि चेतसि चातकेन।
हा कष्टमिष्टफलदानविधानहेतो
रम्भोधरात्पतति सम्प्रति वज्रपातः।। – लहडचन्द्रस्य

1345. त्वं गर्जनोद्भव सृजाम्बुद नाम्बु नाम
विद्युल्लताभिरभितर्जय नाग भूयः।
प्राचीनकर्मरततन्त्रनिजप्रवृत्ते-
श्चैतस्य पश्य विहगस्य गतिस्त्वमेव।।

1346. नीहाराकरसारसागरसरित्कासारनीराश्रय
त्वद्वातो यदि चातकेन भवतः सेवा समालम्बिता।
तस्यैतत्फलितं यदुद्धतशिलासन्ताद्द्रुतं मस्तके
गाढं गर्जसि वज्रमुज्झसि तडिल्लेखाभिरातर्जसि।।

1347. मेघः शारद एष काशधवलः पानीयरिक्तोदरो
गर्जत्येव हि केवलं दृशमयो नो विन्दुमप्युज्झति।
अन्ये ते जलदायिनो जलधरास्तृष्णां विभिन्दन्ति ये
भ्रातश्चातक किं वृथा विरटितैः खिन्नोऽसि विश्राम्यताम्।।

1348. नीचोऽप्यसर्पमधि या तृषितेन येन
नालोकितः पतिरपामपि चातकेन।

तस्यार्थिनस्त्वयि पयोद पयोऽस्तु भार-
प्रत्यग्रमेव फलमुद्यतकश्चरत्वम्।

1349. विलुठतु कण्ठतृषया मूर्धा द्वेधास्तु यान्तु वा प्राणाः।
निजगरिमव्रणचकितश्चातकशिशुरीक्षते नाथः।।

1350. भो निष्कारणवत्सलाखिलजगन्निर्वातकान्ताधर
श्वासं यावदयं न मुञ्चति खगस्तावत्पयो दीयताम्।
नो चेदस्य तृषार्तपीडिततनोः प्राणैः प्रयाणे कृते
देयं यच्च मनोहरञ्च बहु च व्यर्थं त्वदीयं तथा।।

1351. यन्मूर्धानमशिक्षितो नमयितुं निम्नोऽसि यो नोच्चकै-
रारूढं परमादरेण जलद त्वां याचते चातकः।
तत्पातुं व्यवसायदीनमनसो धावन्त्यमी सम्भ्रमा-
दावर्तैर्मरुतां तदा व्यपकृतं धिक्तान् न कान् धिग् विधिम्।।
-लक्ष्मीधरस्य

1352. दृष्ट्वा तोयभरावलम्बनिविडप्रारम्भमम्भोधरं
दृष्ट्वासौ किल रौति सादरसकृत्तोयाशया चातकः।
तावच्चञ्चलचञ्चकोटरकुटीकोष्ठे लुठन्तः स्फुटं
दृश्यन्ते करकोत्कराः किमपरं कोप्येष वामो विधिः।।

1353. बीजैरङ्कुरितं लताभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृम्भितं
कन्दैः कन्दरितं जलैश्च मुदितं धाराधरे वर्षति।
भ्रातश्चातक पातकं किमपि ते सम्पन्न जानीमहे
यन्नास्मिन्निपतन्ति चञ्चुपुटके द्वित्राः पयोबिन्दवः।। -वसुकल्पस्य

1354. पयोमात्रार्थित्वात्क्व नु जलधरैकान्धनयनं
क्व चेयं दुर्लक्ष्या सपदि तव दुर्दैवघटना।

इयं सेना कस्मादहह सहसास्येन वदन-
प्रकोष्ठे हा कष्टं वियति विरसश्चातकशिशुः।। -गजपतेः

1355. चक्षुः कदर्थयति मज्जयितुं च ताप-
मध्वश्रमेण परिशोषयितुं शरीरम्।
अत्युन्नमज्ज जलद भ्रमविभ्रमेण
धिग् धूमकोटिभमिधावति चातकोऽयम्।।

सामान्यपक्षी

1356. उन्मादिनं चञ्चलचेतसा वा
निराश्रया वासकुतूहला वा।
अत्रत्यहंसा विचरन्ति नाम
प्रियः पुनर्मानस एव तेषाम्।।

1357. भ्रातः कीरकयन्तु नीरसतरुस्कन्धेऽमृतस्यन्दिभि-
र्व्याहारैस्तव बन्धुवर्णितकथा वन्द्यैर्बुधोऽयं श्रमः।
नैते दाडिमशाखिनः परिणतेरेषां फलैरन्तरं
लोकव्यापिगुणानुरक्तमनसैवाविष्क्रियन्ते मुदः।।
-लोलिम्बस्य

1358. एकत्र प्राकृते साम्यमन्यत्र परतन्त्रता।
शुकस्य परितोषाय लवनं न च पल्लनम्।। -उमापतेः

1359. व्याधाविध्यतसायकैः कलगिरां पुंस्कोकिलानां कुलैः
सूयन्तां शबराः स मीरमधुरध्यानानुगा रेणवः।
रे भिन्नाः कुरु तोलिने मृदुतरः कालावधिः पङ्कलो
मत्याध्वीपतिनन्दनोऽयमधुना गीतिं स्वयं गायति।।

1360. विरम नीडज नीडपरिग्रहाल्लघुनि धामनि कामरतिर्भृते।
तव भविष्यति विग्रहनिग्रहो नियतमाखुभुजाकरजाङ्कुरैः।।

1361. दुर्वाराः शतशश्चरन्ति विपिने काराकिरां पाटवात्,
कश्चित् तत्र चिराय पङ्कजजरत्कायः श्रितो दुर्गतिम्।
तं विश्वेतर पाठयन्ति स पुनर्धातुं जगत्प्रीणनं,
प्राणत्राणनिमित्तमस्य विहिताहारस्तु दूरे जनः।। -गङ्गेश्वरस्य

1362. दात्यूहा सरसं रसं तु सुभगं गायन्तु केकाभृतः,
कादम्बाः कलमालुठन्तु मधुरं कूजन्तु कोजष्ठयः।
दैवादेतदसौ रसालविटपिच्छायामनासादयन्,
निर्विण्णः कुटिजेषु कोकिलयुवा संयातमौनव्रतः।। -वत्सलदासस्य

1363. मुग्धोऽसि कोकिल फलार्थितया यदस्मिन्,
[1]तस्मिंस्तरौ वससि चूतवनं विहाय।
न ज्ञातवानसि नु कस्य तरोर्व्रजन्ति,
प्राणाः फलानि ददतस्तदिमां जहीहि।।

1364. यन्नीडप्रसवो यदञ्जनरुचिर्यत्ते चरो यद्द्विज
तेन त्वं सुजनः किलेति करटे यत्नैरुपानीयसे।
तत्रातीन्द्रियमोदमानसरसो द्वारं तवेषद्ध्वने-
र्दोषाऽभूत् कलकण्ठनायक निजस्तेषां स्वभावो हि सः।। -नन्दनस्य

1365. क्षेमं करी प्रचुरवित्तसुखाभिलाषा
त्वामद्य याचितमना यदहं नतोऽस्मि।
आस्तां तदेव भुवि साधनभूरिभाग्यं,
हस्तार्पिताऽसि स वरोऽपि कृतस्त्वयैव[2]।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'तादीति'
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'बालसिकमस्य'

मृगः

1366. छित्वा पाशमपास्य कूटरचनां भित्वा बलाद् वागुरां,
पर्यन्ताग्निरिवाकलापटलजा निर्गम्य दूरं वनात्।
व्याधानां शरगोचरादतिजवेनादृत्य गच्छन् मृगः,
कूपान्तः पतितः करोतु विगुणैः किं वा विधौ पौरुषम्।।

1367. गर्भक्लान्तिभरालसां घनमरुत्पालोलदावानल–
ज्वालाजालसमाकुलां सहचरीमालोक्य लोलेक्षणाम्।।
वेगाद्दूरविनिर्गतोऽपि सपदि व्यावर्तमानो मृगो,
गच्छन्तीं स्मृतिदोषतामुपगतः स्नेहस्य किं दुष्करम्।।

1368. त्यक्तं जन्म वनं तृणाङ्कुरवती मातेव मुक्तास्थली,
विश्रामस्थितिहेतवो न गणिता बन्धूपमाः पादपाः।
बालापत्तिवियोगकातरमुखी त्यक्त्वार्धमार्गं मृगी,
मृग्यन्तः पदवीं तथाप्यकरुणा व्याधा न मुञ्चन्ति माम्।। –भर्तृहरेः

1369. गिरयो मृगा विरहिकुलाः शवरवृताः वनसाधरो ग्रामाः।
मृगतास्त्येव पदं तव यस्मिन्न कुतोऽभया भवसि।। –अभिनन्दस्य

1370. जातैः किं बहुभिः करोति हरिणी पुत्रैरकार्यक्षमैः,
पर्णेनापि वनान्तरे विचलिता मेषार्धमुद्रक्ष्यति।
एकेनापि करीन्द्रकुम्भदलनव्यापारसक्तात्मना,
सिंही दीर्घपराक्रमेण बलिना पुत्रेण गर्वायते।।

1361. रज्वादिशः प्रविततता सलिलं विषेण पाशैर्महीहुतवहज्वलितावनान्तः।
व्याधाः पदान्यनुसरञ्च गृहीतचापाः कं देशमाश्रयति यूथपतिर्मृगाणाम्।।

1372. अविदितपुरुषविशेषो मणिसंवासेन यातविश्वासः।
भवति तपोवनहरिणः कस्य पल्लीगतो वध्यः।।

1373. इह निभृतनिपातमूकपादं वलयितकार्मुकरन्धयः किराताः।
भवदलसविलोकिता न भिज्ञा मृगगृहिणि प्रसरन्ति गच्छ दूरम्।।
-नन्दूकस्य

1374. व्योमार्धे वलितो रविः कवलितं दावानलैः काननं,
धूम्या भिन्नदिशः स्फुरन्ति परितः पन्थान उद्दन्तुराः।
इत्थं शोणितसंवृतो[1] ननु यथा प्राणी मृगो धावति
व्याधेनापि शरासने करुणया नारोपिताः पत्रिणः।। -उमापतेः

1375. आशां प्रसादयतु पुष्यतु वा चकोरान्,
कामं तनोतु कुमुदेषु सुधां सुधांशुः।
एकः स एव परमोत्कटराहुदन्त-
यन्त्रप्रवेशशमदुःखसुखप्रकाशः।। -धर्मयोगेश्वरस्य

1376. अपसर मृगनाभितो न त्वं चिरतरमधुसितो न त्वम्,
चिरतरमध्युषितो न त्वमिन्दोः।
परमिह भवतारणमिन्दुविषाणकणः कृतः कलङ्की।।[2]

1377. अयि कुरङ्ग तरङ्गमनोरमे क्षिप कदापि जलेन कलेवरम्।
रचयतीह चिराय दुराश्रया खर वद प्रकरा मकरावली।।
हरिणि भिन्नसमाजसमाकुलं त्यज सरोज किमद्य विलम्बसे।
विषमपातुमपीह तपोधनादियमभज्यपलाशपलापि गौः।। -उमापतेः

हस्तिः

1378. घासग्रासं गृहाण त्यज गजकलभ प्रेमबन्धं करिण्यां,
पाशग्रन्थिः धरिण्यामविरतविमनी देहि पङ्कानुलेपम्।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'सूकणि' ।
2. न ज्ञायते छन्दः ।

दूरीभूतास्तवैते शरणधिवधूविभ्रमोद्भ्रान्तदृष्टा
रेवातीरोपकण्ठच्युतकुसुमरजो धूसरा विन्ध्यपादाः॥

1379. शनैः शनैः सञ्चर कुञ्जराधिप प्रमाथयन्मर्मरपत्रसञ्चयम्।
इहास्ति सुप्तो गिरिराजकन्दरे प्रमोदनिद्रालसविभ्रमो हरिः॥

1380. यद्घन्ता हतिहेलयैव शतशः शीर्णा शिला भूभृतां
दानं दिग्गजगण्डभित्तिसु यतस्त्रासान्मुहुः शुष्यति।
सोऽप्यासादितबन्धनः कथमहो मुग्धः करी दृश्यते
मन्ये यत्र करोति विक्रममसौ तत्रास्ति वामो विधिः॥

–पुरुषोत्तमगजपतेः

1381. सिंहानां नखलेखनीविगलिता यस्योरुगण्डस्थले
मुक्तोद्धूतजयप्रसन्नरचना वर्णावली लक्ष्यते।
सोऽयं दैववशान्महानदनदीशोषाद्विशीर्णाननो
गन्धेभ्यः कलताद् भयेन सुचिरं शैलस्य संसर्पति॥

–कपिलेश्वरगजपतेः

1382. इह व्याऽव्यूहः स्यात् पटुघटितमत्र प्रहरणो
मृगेन्द्राणां वल्गत्प्रखरनखराणां कलमिदम्।
इहालङ्घ्याः शैला बहलभरपङ्का सरिदिह
प्रदीप्ताभिर्मध्ये बलमहह कष्टं करिपते॥

1383. करिन्मा गर्जोच्चैर्मृगपतिरिहास्तेऽतिनिकटे
न दृष्टस्त्वं साक्षादपसर सुदूरं द्रुतमितः।
न किं पश्यस्यग्रे घटनखरनिर्दारितकरि-
प्रवालास्थिश्रेणीधवलितमिदं शैलकटकम्॥

–सङ्ग्रामचक्रस्य

1384. अयं दूरभ्रान्तः पशुवरपिपासाकुलमना:
कपोलैस्तैर्मत्तद्विपनिपतितः षट्पदयुवा।
त्वमप्येतां पीतश्रवणदलदोलाव्यसनितां
विमुञ्च स्वच्छन्दादपनयतु तावद् भृशमिमाम्।। -सुरभेः

1385. क्वासौ वासो मृदितसरतो रम्यरेवातटस्थः
क्वेदानीं वा नगरकरिणी लोभतस्ते विपाकः।
सत्यं भ्रातः करिकलभक ज्ञायते नैव सम्यक्
शम्बूकान्तः कुहरकुटिला वेधसश्चित्तवृत्तिः।।

1386. नटितमनुचितं कः कालसंस्फारकालः
प्रचलितमति गात्रं गात्रनिर्मज्जनाय।।
कथमपि पतितस्त्वं दुस्तरेयं कराशौ
करिवर कुरु धैर्यं दुर्भया देवरीतिः।।

1387. आक्रान्तानि पदानि रज्जुनिगडैः स्पृष्टस्थली पामरैः
संस्पृष्टा मसृणोत्तरेण शृणिता शीर्णा शिरोमर्मभूः।
न ध्वाने कविकारदूरमनसः शुष्केऽपि दानाम्भसां
शङ्के मन्युमसीभिरेव किरणः श्यामा कपोलस्थली।।

1388. गले पाशस्तीव्रश्चरणयुगयुग्मे च निगडो
दृढः स्कन्धे वन्द्यः शिरसि दृढपातः खरतरः।
नरस्कन्धा रूढो वत मरणयोगेऽपि समये
न जानीमो मूढा द्विरद वद कस्मान्नवमदः।।

सिंहः

1389. यस्याबन्ध्यरुषः प्रतापवसतेर्नादेन हानात्मना
शुष्यन्ति स्म मदप्रवाहसरितः सद्योऽपि दिग्दन्तिनाम्।

दैवात्कष्टदशावशङ्गततया सिंहस्य तस्याधुना
कर्षत्येष करेण केसरजटाभारं जरत्कुञ्जरः।।

1390. उत्क्रान्तं गिरिकूटसङ्घनसहं ते वज्रसारा नखा-
स्तत्तेजश्च तदूर्जितं स च नखैर्माथी विनादो महान्।
आलस्यादविमुञ्चता गिरिगुहां सिंहेन निद्रालुना
सर्वं विश्वजयैकसाधनमिदं लब्धं न किञ्चित्कुतः।।

1391. हं हो सिंह किशोरक त्यजसि चेत्कोपञ्च दामंस्तदा
हत्वैतं करिणां सहस्रमखिलं किं लब्धमायुष्मता।
एवं कर्तुमहं समर्थ इति चेद् घिङ्मूर्ख किं सर्वतो
नालं प्लावमयं जगज्जलनिधेः पारं सदालम्बते।।

1392. आस्तां तावदसीमपौरुषयशः सम्भावितोऽत्यद्भुतः
प्रारब्धात्यधिकत्रयस्य स खलु प्राच्यप्रभावो हरेः।
तीर्णस्यापि च विन्ध्यकन्दरदरीद्वारावतारासमै-
रङ्गैरङ्गभृतो द्रवद्रव इतो गन्धेन गन्धद्विपा। -वल्लणस्य

1393. आजन्मप्रतिबद्धपौरुषरसं चेता विहायादरात्
साहित्यं यदि नाम सम्प्रति वृकैः सार्धं कुरङ्गैः कृतम्।
....
....[1]।।

1394. सोऽप्यासादितवन्धुरः कथमहो मुग्धः करी दृश्यते
मन्ये यत्र करोति विक्रममसौ...[2]।
तत्किं कुञ्जरकुम्भपीठलुठनव्यासक्तमुक्ताफल-
ज्योतिर्भास्वरकेशरस्य पुरतः सिंहस्य तैः क्षीयते।। -आज्ञाविलासस्य

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1395. यन्निद्रालसकण्ठनादकणिकाश्च द्वे हि दूरादितः
प्रत्येकं स हि मूर्च्छया निपतितो गन्धद्विपानां गणः।
तस्यैवाद्य मृगाधिपस्य पुरतः प्रोन्मुक्तचण्डस्वना
निष्कम्पं विचरन्ति दन्तुररसा पानोचिताः फैरवाः।। -गोवर्धनस्य

1396. कोधाद्वै विरतो हतश्रुतिपुटं नापि स्फुटत्केसरं
नैवोद्यत्ककवोपमाननखरं श्रेणीसमुल्लासनम्।
पञ्चास्येन तदा विघूर्णितदिशो सुप्तोत्थितेनेक्षितं
संशुष्कं करिणा यथा मदजलक्लिन्ना कपोलस्थली।। -शङ्कराचार्यस्य

1397. सानौ विन्ध्यगिरेर्यदेष करिणः सीत्कारनादो महान्
उड्डीनास्तत एव यत् क्वचिदपि भ्राम्यन्ति भृङ्गाङ्गणाः।
तन्नूनं कुलिशप्रचण्डनखरैः श्रेणीशिखादन्तुर-
क्रूरैः केसरिणां करैः करिपतिर्व्यापारितो मूर्धनि।।

1398. न करिमहिषव्याघ्राः श्रोतुं प्रतिक्षणमप्यलं
विजहन्ति गजा गन्धैर्नैव द्रुतं मदविक्रियाम्।
इति कररुहैः सिंहः साक्षाद्विविक्षुमनाः
प्रवरघननखकृतां शैलोत्सङ्गे विनोदयति क्रुधम्।।

1399. चरत वृषभाः शालाद्याः संयथेष्टमभीरवः
प्रविशत विशिनीकक्षे स्वस्थं पयो महिषा सुखम्।
कुरुत करिणः शोभायोगं मदेन कपोलयो-
रहह स तनयादूरीभूतो विधिरिह केशरी।। -शूलकालस्य

1400. मदं गन्धैनैव त्यजति गजराजः प्रतिरवान्,
अपि श्रोतुं नालङ्करिभिरभिमानः कररुहैः।
....[1]
तमो भिन्दन्मेघध्वनिकृतममर्षं विजयते।। -तस्यैव

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।

1401. असंज्ञाः खल्वेते जलशिखिमरुद्हेमनिचयाः,
प्रकृत्या गर्जन्ति त्वयि तु भुवनं निर्मदमिदम्।
प्रसीद प्रारम्भात् द्विरदविनयाभ क्रुधमिमं,
हरेर्जीमूतानां ध्वनिरयमुदीर्णो न करिणाम्।।

1402. व्याधिर्मा[1]भूत् समुचितफलं भारमञ्जं त्वनन्तं,
पाणी नाभिस्फुटकररुहाः कत्थिकण्डूयमानाः।
चक्षुः कोपाद् कुटिलमरुणा बिभ्रतः सिंहसारा-
दीनां चण्डस्तिमितजलदं व्योम निर्धारयन्ति।।

1403. सम्प्राप्तकेसरिकिशोरमरण्यमेत-
द्दूर्जद्भयं भ्रमति यूथमनेकपानाम्।
एषोऽप्यजातशतमंशतटं विधूय
तन्मां प्रगृह्य वसितोऽपि नखान् विमुक्ते।।

1404. गोमायवो यदि रटन्ति रटन्तु नाम,
क्षुद्रेषु किं मृगरिपोर्भवतीह कोपः।
आकर्ण्य पीवरगलन्मददन्तिनाभं,
सोढा भवेद्यदि हरे नियतं स शोच्यः।। -श्रीधरस्य

1405. इह किं लसन्ति करिणः कपोलमदपुष्टमधुलिहो विपिने।
हतवानसि मृगपोतं मृगेन्द्र तव विक्रमः किमयम्।। -शङ्करदेवस्य

शरभः

1406. उन्मुक्तक्लमहारिमेरुशिखराद् क्रामन्तमन्यो धरः,
को नु त्वां शरभं किशोर पतितं धौरेय कर्तुं क्षमः।
तस्माद् दुर्गमकेलिलङ्घनकलादुर्ललिता लूनवद्,
वज्रत्वादयमेव कीर्णकटकज्योत्स्ना गिरीणां पतिः।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'व्याघूयारं'।

1407. यस्यामूर्ध्वसुगन्धवाहकलिका तद् हार्तिनानादरी,
कोणोदञ्च विरौति हा गृहि[1]शिरः कुक्षाश्च हर्यङ्गनाः।
दृप्यद्दुर्जयगन्धसिन्धुरनखोत्खातेन कामं स्तुतेः,
स्मेरोऽयं शरभः परं कृतिमयः मायाविजातस्मयः।।

1408. बुद्धिर्नाविचलत् प्रकोष्ठकनकोक्षिप्तद्विपैः कर्परः,
क्रीडापाङ्गचपेटचूर्णहरिभिः कावीरवृत्तेः कथाः।
मेघः किं तव लङ्घिता ननु महाकाशं क्रमोपद्रवः,
को मूर्तिः प्रमुखैरपि क्व च शरद्धूतो लघूर्णेतरः।। -बल्लणस्य

महतां महिमा

1409. तद् ब्रह्माण्डमखण्डितं क्वचिदपि क्षोणी क्वचिन्नीरदा-
स्ते द्वीपान्तरशायिनो जनरवः क्वापि क्वचिद् भूभृतः।
आश्चर्यं गगनस्य कोऽपि महिमा सारैरमीभिः स्थितै-
र्दूरे पूरमनल्पशून्यमिति यत्तत्तेन नाच्छादितम्।।- केशटस्य

1410. विष्णुर्बभार भगवानखिलां धरित्रीं,
तं पन्नगस्तमपि तत्सहितं पयोधिम्।
कुम्भोद्गमस्तु तमपीयत हेलयैव
सत्यत्र कश्चिदवधिर्महतां महिम्नः।।

1411. आश्चर्यं बडवानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधेः,
यत्कर्मातिशयं विचिन्त्य हृदये कम्पः समुत्पद्यते।
एकस्याश्रयवत् स्मरस्य पिबतस्तृप्तिं न जाता जलै-
रन्यस्यापि महात्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि तोयव्ययः।। -तस्यैव

1412. निपीतोऽयं नायं तटमनुसरत्यस्य स मुनिर्-
ददात्यन्तर्दाहं स्रज इव नु वीचौ स दहनः।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठः 'त्वरोति गृहिणी'

तथाप्येष स्वार्थं बहु विमथितो येन जलधिः,
स्वपित्यङ्के श्रीमानहह महिमा कोऽपि जलधेः।। -धराधरस्य

1413. श्वासोन्मूलितमेरुमम्बरतलव्यापीति मज्जन् मुहु-
र्यत्रासौ शिशुमारविभ्रमकरः क्रीडावराहो हरिः।
सीमा सर्वमहाद्भुतेषु स तथा वारां पतिः पीयते,
पीतः सोऽपि न पूरितं च जठरं तस्मै नमोऽगस्तये।।-वाचस्पतेः

1414. उद्यन्तु नाम सुबहूनि महामहांसि,
चन्द्रोऽप्यलं भुवनमण्डलमण्डनाय।
सूर्यो नु तेन तदुदेति न चास्तमेति,
येनोदितेन दिनमस्तमितेन रात्रिः।।

1415. तत्तावदेव शशिनः स्फुरितं महीयो,
यावन्न तिग्मरुचिमण्डलमभ्युदेति।
अभ्युद्गते सकलधामनिधौ च तस्मिन्,
इन्दोः सिताभ्रपटलस्य च को विशेषः।।

1416. किं ब्रूमो हरिमस्य विश्वमुदरे किं वा फणाभोगिनः,
शेते यत्र हरिः स्वयं जलनिधेः सोऽप्येकदेशे स्थितः।।
आश्चर्यं कलशोद्भवस्य महिमा यस्यैकहस्तेऽम्बुधिं,
गण्डूषीयति पङ्कजीयति फणी भृङ्गीयति श्रीपतिः।।

ततोऽर्थान्तरन्यासव्रज्या

1417. कालिन्द्या दलितेन्दुनीलशकलश्यामाम्भसान्तर्जले
मग्नस्यां जनपुञ्जसञ्चयनिभस्यादेः कुतोऽन्वेषणः।
ताराभाः फणयो न यस्य नयति द्योतीति नो यो रवौ-
तैरेवोन्नतिमाप्नुवन्ति गुणिनस्तैरेव यान्त्यापदम्।।

1418. भग्नास्यस्य करण्डपिण्डिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा
कृत्वा पूर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः।
तृप्तं तत् पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथे,
स्वस्थास्तिष्ठत दैवमेव जगती वृद्धौ क्षये चाकुलम्।।

1419. सोढव्यं पुरुषेण दुःखमसहं कार्यार्थिना नित्यशः
किं रामेण घनागमस्तरुतले न प्रेरितो दुस्तरः।
व्यापारैर्विविधैर्विराट[1]भवने किं न स्थिताः पाण्डवाः
कष्टं पाण्डवरामयोर्यदि भवेदन्यस्य को विस्मयः।।

1420. एकोऽपि यः पुरुषकारविधौ समर्थः,
सत्त्वाधिको भवति किं बहुभिः प्रवीणैः।
चन्द्रः प्रसादयति दिग्वनितामुखानि,
तारागणः समुदितोऽप्यसमर्थ एव।।

1421. प्रायेण ये यत्र भवन्ति रिक्ता-
स्ते तत्र मुञ्चन्ति निवारिताश्च।
पतन्ति गण्डे करिणां द्विरेफाः,
पानाय कर्णैरपि ताड्यमानाः।।

1422. लक्ष्मीकौस्तुभपारिजाततुरगैर्दिव्याभचन्द्रामृतै-
स्तृप्तिर्नास्ति तथापि मन्दरविधौ देवासुराणामपि।
तावन्मन्थत एव दुग्धजलधिर्यावद्विषं नोत्थितं,
सर्वेषामभिलाषमुग्धमनसामर्थान्तरं जायते।।

---

1. मूलपाण्डुलिपौ 'विराट' इति सुविचारितः प्रयोगः। 'विराट्' इति कृते छन्दोभङ्गः।

1423. उपादाता यावद् भवति च भवादृग् गुणवतां,
तृणप्रायास्तावन् त्रिभुवनमहर्घा अपि गुणाः।
अपि प्राग् दैत्यारेर्हृदयवसतेः कौस्तुभमणेः
स किं नासीदश्रौ श्रुतिरपि किमस्य क्वचिदभूत्।।

1424. उद्घाताः कुसुमत्विषो विकसिताः कासारकानां प्रियः
संसक्ता अपि बान्धवा नु भवतो मित्रस्य यस्योदयात्।
तस्मिन् निर्वशतामुपेतसमुखं निर्लज्जसंकोचतः
सन्तः पङ्ककलङ्कभूषितहृदो रक्षन्ति सख्यं कुतः।।

1425. क्षित्वा पाशान् द्विरदपतिना रज्जवः खण्डखण्डं,
दत्वा धातोरयमपि कृतो दारुणस्तम्भभङ्गः।
किं नाभ्यस्तं किमिह न कृतं दर्शिता का च शक्तिः
सम्पद्यन्ते बलवति विधौ निष्फलाः सर्वयत्नाः।।

1426. आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं विद्याविहीनमकुलीनमसङ्गतं वा।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदालताश्च यः पार्श्वतो विशति तत् परिवेष्टयन्ति।।

1427. ख्यातिं यत्र गुणान् न यान्ति गुणिनस्तत्र श्रमः केवलं,
किं कुर्याद् बहुशिक्षितोऽपि पुरुषः पाषाणकल्पे जले।।
प्रेमासक्तविलासिनीमदकलव्यालुम्पमानाक्षरः
शीत्कारः सुमनोहराणि वधिरे किं नाम कुर्याम्मुखम्।।

1428. किं कुर्वन्ति गुणाः स्वभावमहता स्तोकेतरे शोभना
लोके दुर्जनमूकमूर्खसदृशे प्रख्याप्यमानाअपि।
....
....[1]।।

1429. आकर्ण्य स्थितलोललोचनचलद्भ्रूभङ्गिभङ्गोचितं,
जातान्धे वद..।
....
....[2]।।

1. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।
2. मूलपाण्डुलिपौ पाठो न लभ्यते।



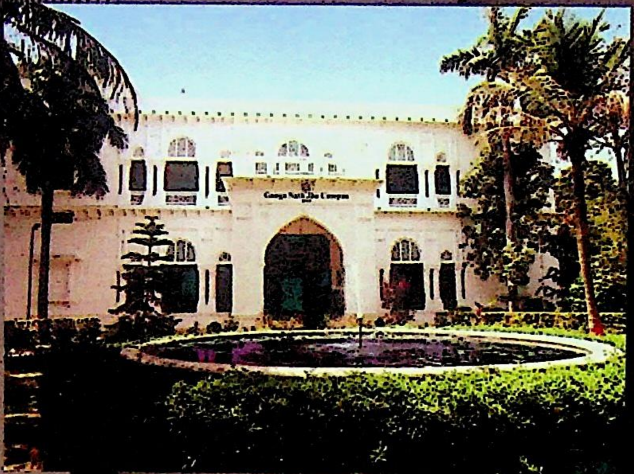
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्,

प्रयागः - 211002



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्,

प्रयागः - 211002